उपाध्याय श्री अमर चन्द जी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती के सुअवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ

राजस्थान स्थानकवासी जैन संघ

हाथी भाई वाड़ी के सामने, दिल्ली दरवाजा बाहर

अहमदाबाद—१

अध्यक्ष :

[illegible]
[illegible]

मन्त्री :

पीरदान पारख
लालचन्द मेहता

उपाध्याय अमरमुनि
दीक्षा स्वर्ण जयन्ती
के
उपलक्ष में

श्री अमर भारती

विशेषांक

वर्ष ७ : फरवरी-मार्च-१९७० अंक २-३

श्री अमर भारती
विचार क्रांति विशेषांक

- **प्रेरक**
  श्री अखिलेश मुनि
  मुनि श्री समदर्शी 'प्रभाकर'

- **दिशा निर्देशक**
  श्री विजय मुनि, शास्त्री

- **संपादक**
  श्रीचन्द सुराना 'सरस'
  कलाकुमार

- **व्यवस्थापक**
  रामधन शर्मा; बी० ए० साहित्यरत्न

- **प्रकाशक**
  सोनाराम जैन,
  मंत्री : सन्मति ज्ञानपीठ आगरा-२

विशेषांक के कलाकार :
श्री गोवर्धन वर्मा,
श्री जे० प्रसाद

मुद्रक :
प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस, आगरा
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा
राज प्रिंटर्स, आगरा
मोहन मुद्रणालय, आगरा

सदस्यता के सोपान :
आजीवन : एक सौ एक रुपया
वार्षिक : आठ रुपया
इस अंक का : दो रुपया
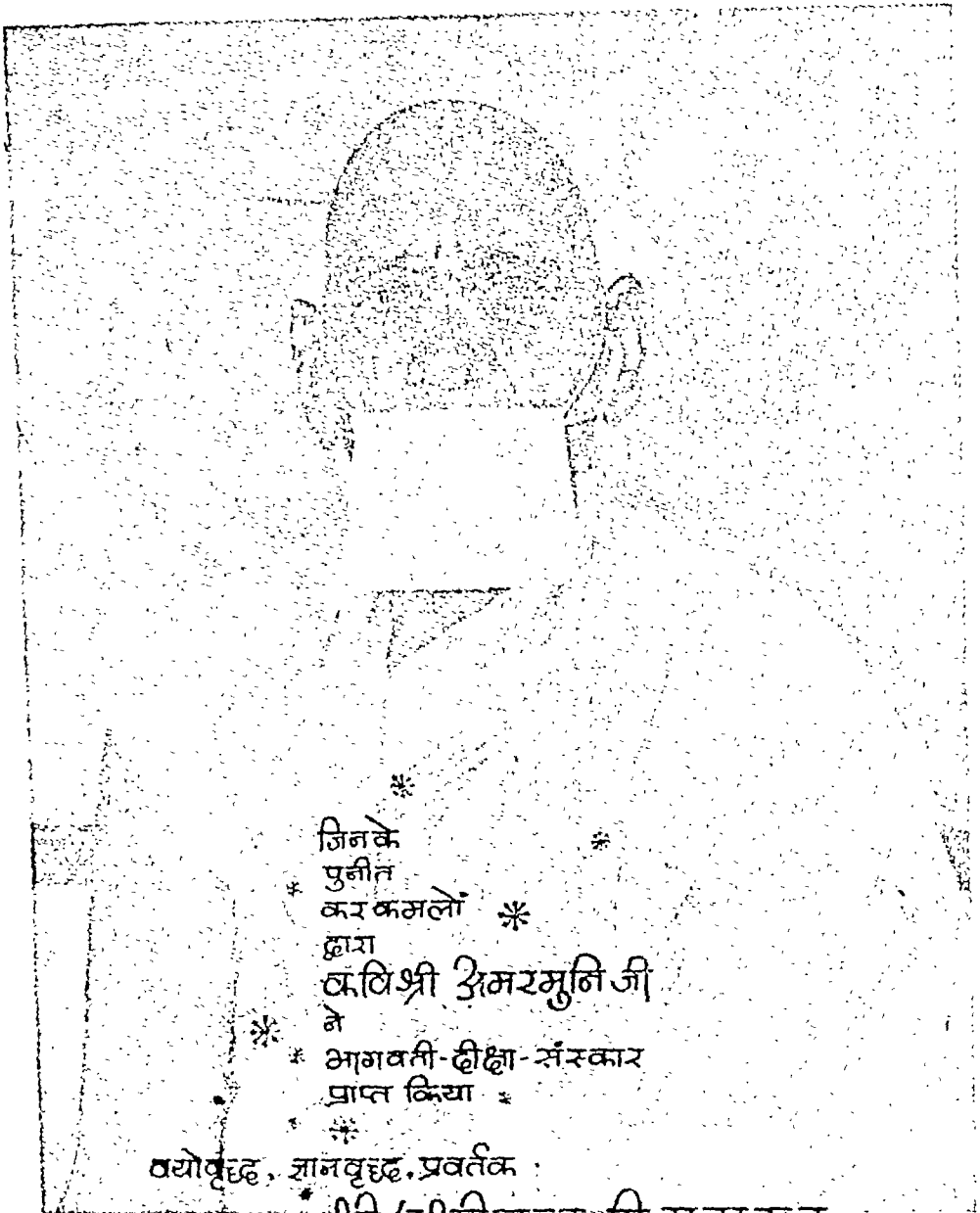
जिनके
पुनीत
करकमलों
द्वारा
कविश्री अमरमुनि जी
ने
भागवती-दीक्षा-संस्कार
प्राप्त किया

वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, प्रवर्तक :

श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज

जन्म-विक्रमी संवत् १९४१

दीक्षा-विक्रमी १९५७ फाल्गुन शुक्ल १५

जिनकी वाणी ने
हृदय और मस्तिष्क को समान रूप से प्रभावित किया
जिनकी लेखनी ने
जीवन की दिव्यता का अंकन किया
जिनके जीवन ने
जगत का असीम स्नेह एवं सौजन्य का दान किया
उन
प्रज्ञास्कन्ध, क्रान्तद्रष्टा

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी

को
भागवती दीक्षा के गौरव-मंडित पचास वर्ष की
सम्पूर्ति के अवसर पर

जन्म :
विक्रम संवत् १९६०, शरदपूर्णिमा
नारनौल

दीक्षा :
विक्रम संवत् १९७६, माघ सुदि १०
गंगेरू (कांधला)

सम्पादक की कलम से....

क्रांति का आह्वान

क्रांति शब्द बहुत मीठा है, किन्तु क्रांति की प्रक्रिया बहुत कड़वी। 'क्रांतिकारी' कहलाना फूलों के स्पर्श जैसा सुखद लगता है, किन्तु क्रांतिकारी बनना 'कांटों का ताज' पहनने से भी कठिन है। हमारे जीवन की यही विचित्र विसंगति है, विडम्बना है कि हम क्रांति के उन्मुक्त वायुमंडल की बातें करके भी रुढ़ियों, एवं अंधविश्वासों की बंद कारा में ही जीना पसन्द करते हैं। हमें घुट-घुट कर जीते रहने की आदत हो गई है, इसलिए खुली हवा में चलने का साहस नहीं होता। हम स्वच्छ और उन्मुक्त वायु की महत्ता तो अनुभव करते हैं, किन्तु जब खुली हवा का कोई एक झोंका आता है, तो अपनी खिड़की बंद करके भी ठिठुरने का अभिनय करने लगते हैं। अनन्त अतीत से सोए-सोए करवटें ले रहे हैं, किसी के उद्‌बोधन की इन्तजार में कान छटपटा रहे हैं, किन्तु जब कोई जागरण का सन्देश हमारे कानों से टकराता है, क्रांति का आह्वान हमारी तन्द्रा को तोड़ने लगता है, तो घिघियाते हुए मुंह ढंक कर पुनः सो जाने का नाटक रचने लगते हैं। यह आत्मघाती वृत्ति समाज, देश, धर्म एवं परम्परा के विकास को कुंठित करती है, तथा उनके जीवन-रस को सोख कर निःसत्व बना देने वाली है।

भारतीय संस्कृति में विकास की प्रक्रिया निरन्तर चालू रही है। क्रांति को आत्मसात् करने की असीम क्षमता उसमें है। कम से कम जैन संस्कृति एवं परम्परा के सम्बन्ध में तो यह बात अधिकार पूर्वक कही जा सकती है। भगवान महावीर ने जैन संस्कृति एवं श्रमण-परम्परा का जो नया संस्करण उस युग में प्रस्तुत किया वह बहुत बड़ी क्रांति का परिणाम था। विकारों के परिमार्जन एवं परम्पराओं के संशोधन के साथ महावीर ने अनेक नई परम्पराओं की स्थापना की। अन्य परम्पराओं ने ही नहीं, किन्तु चली आ रही प्राचीन श्रमण-परम्परा ने भी उसका विरोध किया, उस पर विस्तृत सार्वजनिक चर्चाएं की और आखिर समन्वय के साथ समग्र निर्ग्रन्थ परम्परा क्रांति के एक झंडे के नीचे मिल गई।

महावीर की क्रांति के निर्मल स्वच्छ जलाशय पर धीरे-धीरे रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों की शैवाल जम गई। अध्यात्म का स्वच्छ जल परम्परा एवं रूढ़ि की गाढ काई के नीचे फिर दब गया। हवा के तेज झोंके कभी-कभी उस शैवाल को कुछ हटा देते और स्वच्छ पेय जल कुछ अध्यात्म पिपासुओं को प्राप्त हो जाता।

महावीर से आज तक निर्ग्रन्थ परम्परा में क्रांति की अनेक लहरें उठी, विचारों एवं विश्वासों के जलाशय में कभी-कभी कुछ निर्मलता आती रही—पर क्रांति के दूरगामी एवं स्थायी परिणाम स्थिर नहीं रह सके। इसके अन्य कारणों में एक प्रमुख कारण यह भी था कि लोक-श्रद्धा (जिसमें अंध श्रद्धा का मिश्रण ही अधिक होता है) एवं प्रतिष्ठा (जिसका मानदंड पूंजीवाद के हाथों में रहता है) का सस्ता साधन हमेशा परंपरावादिओं के हाथ में रहा है। और वे क्रांति की लाश पर परम्परा का महल खड़ा करने के स्वप्न देखते आए हैं।

क्रांति के नाम का आकर्षण आज भी कम नहीं है, पर निकट जाकर उसके दर्शन करने का साहस विरलों में होता है। अखंड जीवट और अचल धैर्य से युक्त मानस ही क्रांति का संवाहक हो सकता है, प्रखर प्रतिभाशाली मस्तिष्क ही परंपराओं के चक्रव्यूह को भेद कर क्रांति युद्ध का संचालन कर सकता है।

वर्तमान जैन परंपरा में उपाध्याय श्री अमरमुनि ने क्रांति का उद्घोष किया है। ढाई हजार वर्ष के दीर्घ प्रवाह में विचार एवं आचार में आये मलिनांशों एवं विकारों के संशोधन का आह्वान किया है। बौद्धिक कुंठा एवं पूर्वग्रहों की जड़ता के आवरण को तोड़े विना हमारे चिन्तन की दिशाएं स्पष्ट नहीं हो सकती। ढाई हजार वर्ष पुरानी चिन्तन प्रणाली को आज उसी रूप में (जबकि वस्तुतः वह उस रूप में रही नहीं है) ग्रहण करने का आग्रह उपहासास्पद तो है ही, किन्तु खतरनाक भी! कवि श्री अमरमुनि जी का उद्घोष है— "विचार ही विचार एवं आचार का निर्माण करता है, अतः समाज में आचार क्रांति के पूर्व विचार क्रांति आनी चाहिए। यदि विचार की दिशा सही व स्पष्ट है तो आचार की गति अपने आप ठीक रहेगी।" श्री अमर भारती के पिछले अनेक अंकों में कवि श्री जी का विचार क्रांति मूलक चिन्तन, तर्कयुक्त समाधान एवं भविष्य का स्पष्ट दिशादर्शन पाठकों के समक्ष आता रहा है और हमें प्रसन्नता है कि उन विचारों की प्रतिध्वनियां पाठक वर्ग के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर रही है, दृष्टि की स्पष्टता भी दे रही है।

२२ फरवरी १६७० का कवि श्री जी की भागवती दीक्षा के पचास वर्ष संपन्न हो रहे हैं। उन्होंने अपने पचास वर्ष के सुदीर्घ चिन्तन-मनन से समाज, धर्म एवं राष्ट्र को जो महत्तत्त्व दिया है, उसका लेखा-जोखा करना कठिन है। उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व कृतित्व के अमृत से परिपूर्ण ऐसा लगता है—जैसा अमिय झरता हुआ निर्मल शारदीय चन्द्र !

कुछ समय पूर्व स्वर्ण-जयंती प्रसंग पर अनेक श्रद्धालु सद्गृहस्थों ने विराट् समारोह एवं अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने की योजना प्रस्तुत की थी। किन्तु कवि श्री जी जो, श्रद्धालुओं के प्रति कभी कठोर नहीं बनते, इस प्रसंग पर इतनी कठोरता से नकार कर गए कि योजना को आगे गति देना ही कठिन हो गया। योजना के अन्य रूपों पर भी विचार चर्चा करते-करते काफी समय बीत गया। आखिर यही मानकर संतोष किया कि 'जिस प्रकार सूर्य एवं चन्द्र के असीम कृतित्व के प्रति आभार प्रदर्शित करने की कोई अपेक्षा नहीं रहती, उसी प्रकार कविश्री जी का सार्वभौम व्यक्तित्व इस प्रकार के औपचारिक उपक्रमों से सर्वथा निरपेक्ष है।' यह समाधान सुन्दर था, पर कार्यकर्ताओं के मन को संतोष नहीं हुआ। उस मनस्तोष के लिए ही समझिए आखिर श्री अमर भारती का विचार क्रांति विशेषांक निकालने का निर्णय २८ दिसम्बर १६६६ को किया गया। समय बहुत ही कम था और विशेषांक की विशाल कल्पना हमारे समक्ष थी ! इस विशेषांक में शुभ कामनारूप विज्ञापन लेने का निश्चय भी किया गया। लेखकों व विज्ञापनदाताओं से संपर्क, संपादन, मुद्रण सम्बन्धी व्यवस्था आदि कार्यों के विस्तार का अनुभव कल्पना से अत्यधिक विस्तृत निकला, किन्तु आदरणीय लेखकों, सद्भावनाशील सद्गृहस्थों एवं स्नेही साथियों के सहकार से विशेषांक समय पर सुन्दर रूप में प्रस्तुत हो सका। विज्ञापन संग्रह में हमारे विशिष्ट प्रतिनिधि श्री प्रद्युम्न कुमार जी का उत्साहपूर्ण योग रहा। साथ ही जयपुर से श्री पारसमलजी डागा, श्री मोतीचन्द जी डागा एवं श्री कैलाशचन्द जी हिरावत, देहली से श्रीमती सितारादेवी जैन, श्री मदनलाल जी जैन (सदर) तथा मद्रास से श्रीमान भंवरलाल जी गोठी एवं श्री भंवरीमल जी चोरड़िया आदि का जो सद्भावपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ वह सरहानीय है।

श्री अमर भारती का यह विचार क्रांति विशेषांक विचार चेतना के अग्रणी युगद्रष्टा कवि श्री जी के चरणों में सविनय समर्पित करते हुए हमें असीम प्रसन्नता है।

पुरातनैर्या नियता व्यवस्थिति-
स्तथैव सा किं परिचिन्त्य सेत्स्यति ।
तथैति वक्तुं मृतरूढ - गौरवा-
दहं न जातः प्रथयन्तु विद्विषः ।

—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर

—प्राचीन आचार्यों ने जो व्यवस्था-परम्पराएं निश्चित की हैं वे विचार व विवेक की कसौटी पर क्या समीचीन सिद्ध होती हैं ? यदि समीचीन सिद्ध होती हैं तो हम उन्हें समीचीनता के नाम पर मान सकते हैं न कि प्राचीनता के नाम पर। यदि वे समीचीन सिद्ध नहीं होती हैं, तो मैं केवल मृत पुरुषों के झूठे गौरव के कारण 'हां-में-हां मिलाने के लिए पैदा नहीं हुआ हूं। मेरी इस सत्यवादिता के कारण यदि कोई विरोधी बनते हैं तो बनें, मुझको इसकी चिंता नहीं।'

●

अ नु क्र म

● सं दे श

कविश्री जी : व्यक्तित्व और विचार

चिंतन की दिशाएं

●

अभिनन्दन एवं शुभ कामनाएं

●

संदेश

गुरुदेव श्री अमरमुनि

व

उनकी अमृतमय अमर वाणी

चिरकाल तक जन-जीवन को आलोकित करती रहे

इसी शुभ कामना के साथ

जिसने रागद्वेष-कामादिक जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
ब्रह्म, बुद्ध, अल्लाह, गॉड, जिन या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ।।

विषयों की आशा नहीं जिनको साम्यभाव धन रखते हैं,
निज पर के हित-साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुःख-समूह को हरते हैं ।।

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन्हीं जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।

रतन कुमार जैन

बम्बई

सं दे श

●

जैनधर्म दिवाकर

आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज

का

शुभ-संदेश

उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज की अर्द्ध-शताब्दी—दीक्षा स्वर्ण जयन्ती मनाने की भावना सराहनीय है। संयमी जीवन सांसारिक प्राणियों के लिए एक प्रकार का प्रेरणा स्रोत है। आज के भौतिक युग में साधु-जीवन सच्चारित्र जप-तपरूप एक क्रांति है! उनकी प्रभावना संघ को गौरवान्वित करें, ऐसी विशुद्ध भावना के साथ दीर्घायुष्य की शुभ कामना है।

●

मुख्य मन्त्री राजस्थान

जयपुर

जनवरी ३, १९७०

यह हर्ष का विषय है कि श्री अमर भारती मासिक द्वारा जैन तपस्वी उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज की दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती के शुभ अवसर पर एक विशेषांक—विचार क्रांति विशेषांक नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। विशेषांक में भारतीय दर्शन, धर्म एवं संस्कृति के सम्बन्ध में गवेषणात्मक विचारपूर्ण लेखों का संकलन होगा। देश के बौद्धिक वर्ग के लिए यह विशेषांक निश्चय ही उपादेय सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

उपाध्याय श्री के दीक्षा जयन्ती समारोह तथा अमर भारती के लिए मैं अपनी शुभ कामनाएँ भेजता हूं।

मोहनलाल सुखाड़िया
(मुख्यमन्त्री, राजस्थान)

शिक्षा मन्त्री

हिमाचल-प्रदेश, सरकार

शिमला—१

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि महान् तपस्वी कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज अपनी दीक्षा के ५० वर्ष पूरे कर रहे हैं और इस उपलक्ष में मासिक पत्र—'श्री अमर भारती' का विचार क्रांति विशेषांक' प्रकाशित करने की योजना है।

आशा है, प्रस्तावित विशेषांक कविश्री जी के मौलिक स्वतन्त्र, तटस्थ एवं निष्ठापूर्ण चिन्तन को समुचित रूप से प्रकाश में लाएगा।

मैं विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

—रामलाल
शिक्षा मन्त्री, हिमाचल प्रदेश

उपराष्ट्रपति सचिव
नई दिल्ली
फरवरी १८, १९७०

उपराष्ट्रपतिजी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप 'श्री अमर भारती' का विचार क्रांति विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं। विशेषांक की सफलता के लिए वह हार्दिक शुभ-कामनाएं भेजते हैं।

आपका
—वि० फड़के
सचिव : उपराष्ट्रपति, भारत

●

खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास
तथा सहकारिता मन्त्री
भारत सरकार
नई दिल्ली, २० फरवरी, ७०

जैनाचार्य श्री अमर मुनि जी २२ फरवरी, १९७० को अपनी दीक्षा के ५० वर्ष पूरे करके ५१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं और इस अवसर पर सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा की मासिक पत्रिका 'श्री अमर भारती' का एक विशेषांक प्रकाशित हो रहा है, यह ज्ञात हुआ।

श्री अमर मुनि जी गत ५० वर्षों से वीतरागी होकर धर्म और समाज की सेवा में लगे हैं और जनता में धार्मिक अभिरुचि उत्पन्न करने एवं उनका नैतिक स्तर ऊंचा करने का प्रयास करते रहे हैं, यह जन कल्याणकारी कार्य है। आशा है, विशेषांक में मुनि जी के तपोमय जीवन, उनके सिद्धान्तों, आदर्शों और उपदेशों का विशद विवरण होगा।

विशेषांक उपयोगी सिद्ध हो।

—जगजीवन राम

●

महापौर कार्यालय
नगर निगम
टाउन हाल, दिल्ली
२३-२-७०

जैनाचार्य श्री अमरचन्द जी महाराज की दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती पर श्री अमर भारती का विचार क्रांति विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय निश्चित ही सराहनीय है।

भारतीय जीवन दर्शन की मान्यताओं के अनुरूप जैन मुनि ने धर्म, समाज, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी विचार

प्रस्तुत किये हैं जो नई संतति को सही दिशा प्रदान करते हैं। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त कर नवयुवकों को मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

इस शुभावसर पर जैन मुनि को मैं अपनी पुष्पांजलि अर्पित करता हूँ और उनकी दीर्घायु तथा स्वस्थ जीवन की मंगल-कामना करता हूँ।

—**हंसराज गुप्त**
महापौर,

●

संसद् सदस्य

२५ फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली, १६-२-७०

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आप 'श्री अमर भारती' का 'विचार क्रांति विशेषांक' प्रकाशित करने जा रहे हैं। आज देश को सबसे अधिक वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है। गत वीस वर्षों में देश को केवल थोथे नारे दिये गये हैं, और जनता को उन नारों का गुलाम बना दिया है, परंतु नारों से न किसी का पेट भरता है और न देश की रक्षा होती है। राष्ट्रीय-भावनाओं के अभाव में यह नारों की गुलामी और भी घातक बनती जा रही है।

आज देश की सबसे पहली आवश्यकता यह है कि जन-जन के मन में राष्ट्र को सर्वोपरि मानकर उसके प्रति आस्था का भाव जगाया जाय।

आशा है श्री अमर भारती का यह विशेषांक वैचारिक क्रांति लाने में सहायक होगा।

भवदीय
—**बलराज मधोक**

●

संसद् सदस्य

३३, फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली
२० फरवरी, ७०

श्री अमर मुनि जी के अभिनन्दन समारोह का निर्णय वस्तुतः प्रशंसनीय है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के उन्नयन में महत्वपूर्ण योग दिया है। हमारे यहां राजनीति के स्थान पर धर्म एवं संस्कृति की प्रतिष्ठा होनी चाहिए ऐसे समारोह इस परम्परा को अवश्य ही प्रोत्साहित करेंगे यही कामना है।

—(सेठ) गोविन्ददास

डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' — उप कुलपति

एम० ए० डी० लिट्० — विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन

७ जनवरी १९७०

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'श्री अमर भारती का फरवरी-मार्च का संयुक्तांक "विचार क्रांति विशेषांक" के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं। उसकी रूपरेखा देखकर स्पष्ट हो गया कि आज के किंकर्त्तव्य-मूढ युग में आप भगवान् महावीर के संदेश का सार प्रदान कर भूली हुई मानवता को सुगम पथ पर लाने का प्रयास कर रहे हैं।

मैं इस साधु प्रयास के प्रति हार्दिक मंगलकामनाएं प्रेषित करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप के इस अंक में वैचारिक क्रांति की कुछ ऐसी उपलब्धियां सुलभ हो सकेंगी जिससे भूली भटकी मानवता को अपना पथ खोजने में समुचित संबल सुलभ हो सके।

विनीत,
शिवमंगलसिंह 'सुमन'

●

साकेत,
इलाहाबाद—२
३-१-७०

श्री अमर भारती के 'विचार क्रांति विशेषांक' की सूचना प्राप्त हुई। महान् तपस्वी श्री अमरचन्दजी महाराज के श्री चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करें। उन्होंने मौलिक चिन्तन की जो विभूति ज्ञान के क्षेत्र में प्रदान की है, उससे भारतीय संस्कृति के प्रसार में अधिक सहायता मिलेगी।

देश की आध्यात्मिक परम्परा में यह दीक्षा स्वर्ण जयन्ती चिरस्मरणीय रहेगी।

भवदीय,
रामकुमार वर्मा

भारतीय विद्या मंदिर
अहमदावाद

विचार एवं बुद्धि के विना धर्म प्राणवान नहीं रह सकता। धर्म श्रद्धा में जब-जब जड़ता एवं विचार रूढ़ता आई है, तब-तब उसमें विकार आये हैं। इन विकारों का निर्भीक संशोधन ही विचार क्रांति है।

उपाध्याय श्री अमर मुनि के चिंतन में जितनी गम्भीरता है, उतनी ही तेजस्विता भी है। मैं उनकी विद्वत्ता तथा विचारशीलता का बहुत समादर करता हूँ। उनके कुछ प्रवचन-लेखों ने समाज की जड़ता को झकझोरा है, मैं इसे शुभ चिन्ह मानता हूँ। उनकी दीक्षा के पचास वर्ष पूर्ण होने पर श्री अमर भारती का विचार क्रांति विशेषांक प्रकाशित हो रहा है, प्रसन्नता ! जन-जन में विचार जागृति फैले—यही शुभ कामना है।

—सुखलाल संघवी
(डी० लिट्०)

●

भारतीय विद्या मंदिर — अहमदावाद
रिसर्च प्रोफेसर — २८-१-७०

उपाध्याय श्री अमरचन्द जी मुनिराज में प्रारम्भ से तर्क-कुशलता एवं विचार गम्भीरता रही है। उनकी सिद्धान्तप्रियता एवं निर्भयता सराहनीय है। हमारे समाज में भयंकर विचार-जड़ता छाई हुई है। चिंतन का द्वार अवरुद्ध प्रायः है। श्री कवि जी जैसे विरले ही विद्वान मुनि हैं जो चिन्तनशील एवं निर्भीक है और समाज की विचार जड़ता से जिनको पीड़ा है।

उनका स्वास्थ्य कुशल रहे, सुदीर्घ काल तक संयम साधना करते रहे और विचार क्रांति को निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ाते रहे यही मंगल कामना है।

अमर भारती ने कविश्री जी के विचारों के प्रसार में महत्व पूर्ण योग दान किया है। विचार क्रांति विशेषांक नई विचार चेतना लेकर आये—यह आशा है।

— बेचरदास दोशी

हाथरस
२२।१।१९७०

मुनि श्री अमरचन्द्रजी महाराज की दीक्षा-स्वर्ण जयन्ती के सुअवसर पर श्री अमर भारती का जो विशेषांक--'विचार क्रांति विशेषांक' के नाम से प्रकाशित होने जा रहा है, उसकी सफलता के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभ कामना प्रेषित करता हूं। —काका हाथरसी

●

१२२-बी, रवीन्द्रपुरी,
वाराणसी—५
४-२-७०

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि आप कविरत्न श्री अमरचन्दजी महाराज की दीक्षा-स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष में 'श्री अमर भारती' का विचार क्रांति विशेषांक निकालने जा रहे हैं। उपाध्यायश्री जी ने अपने मौलिक व स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा विचार जगत् में क्रांति की जो धारा प्रवाहित की है, उससे तटस्थ चिंतकों के लिए चिंतन का एक ऐसा पथ-प्रशस्त हुआ है, जो कोरी श्रद्धा तथा अन्ध विश्वास से भिन्न है। 'क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है?' इत्यादि लेख ऐसी ही विचार क्रांति के पथ प्रदर्शक हैं।

ऐसे महान् तपस्वी की दीक्षा के पचास वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के शुभ अवसर पर 'श्री अमर भारती' का 'विचार क्रांति विशेषांक' सोने में सुगन्ध की कहावत को चरितार्थ करेगा। 'विचार क्रांति विशेषांक' निश्चित ही ऐसी ठोस सामग्री प्रदान करेगा जिससे कविश्री जी के चिन्तन की धुरी–सत्य की निर्भीक अभिव्यक्ति तो होगी ही, साथ ही शाश्वत सत्य का दर्शन भी होगा। तथा चितकों की विचार चेतना में नूतन जागृति उत्पन्न होगी।

—उदयचन्द जैन एम० ए०, सर्वदर्शनाचार्य,
प्राध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

जानकी निवास
आगरा
१५-२-७०

आज के बौद्धिक युग में रहकर मात्र अन्धश्रद्धा के सहारे जीवन जीना मुश्किल है। विज्ञान ने हमारे परंपरागत जीवन में क्रांति ला दी है, अतः उससे हमें आंखें खोलकर जीने की आदत डालनी पड़ी है। अतः श्रद्धा, विवेक और भाव दोनों पर टिकी रहनी चाहिये—अन्धश्रद्धा तो सिर्फ भाव पर टिकी होती है। विज्ञान ने विवेक को प्रोत्साहन दिया है, फलतः वह पुष्ट हुआ है, अतः आज हम विचारणा और चिन्तना के बिना कुछ भी काम करना पसन्द नहीं करते, तब यह कैसे सम्भव है कि धर्म की पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं को बिना देखे—परखे और बिचारे यूँ ही स्वीकार कर लें। और फिर विचार की कसौटी पर कसने से तो कोई भी सत्य खरा ही सिद्ध होगा, तब भय कैसा ? प्रज्ञा के द्वारा तो सत्य के संधान में और उसके पोषण में सहायता ही मिलती है अतः प्रज्ञा के उपयोग से घबड़ाना नहीं चाहिये और आज के बौद्धिक युग में यह और भी जरूरी है।

'विचार क्रांति विशेषांक' द्वारा सदियों से चली आ रही मानव की ज्ञान पिपासा को पोष ही मिलेगा, और उसकी धर्म-वुद्धि सत्य-असत्य, ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म को परखने में और प्रखर वनेगी।

सभी उच्चकोटि के विचारकों, मनीषियों और महात्माओं ने सदैव से विचार-क्रांति का स्वागत किया है। क्योंकि इससे प्रगति के नये द्वार खुलते हैं, नई दिशाओं का उन्मेप होता है और प्राचीन के स्वस्थ सत्य से हमारा सम्वन्ध और मजवूत होता है, और इस तरह मानवता का मंगलमय भविष्य मुस्कराहट से भर कर उसे विजयिनी वनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा—ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है।

—विश्वम्भर 'अरुण'
प्राध्यापक : आगरा कालेज, आगरा

व्यक्तित्व

विचार

गुरुदेव कवि श्री अमरचन्द जी महाराज के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

पुनीत एवं मंगलमय दिवस पर

डागा परिवार की ओर से

हार्दिक अभिनन्दन

ग्राम : **PANNA**

सागरमल मोतीचन्द डागा

ज य पु र

कार्यालय :

चाकसू का चौक
जौहरी बाजार
जयपुर—३

फोन : 72644

निवास :

२५, जीवन सागर
तखतेसाही रोड रामबाग पैलेस के सामने
जयपुर-४

फोन : 75354

सत्य सत्य है, सदा सत्य है
उस में नया पुराना क्या ?
जब भी प्रकट सत्य की स्थिति हो,
स्वीकृति से कतराना क्या ?

★

सत्य सत्य है, जहाँ कहीं भी
मिले, उसे अपनाना है।
स्व-पर-पक्ष में मुक्त सत्य की
निर्भय ज्योति जगाना है।

युग पुरुष तुम्हें शत-शत वन्दन

•

तुम अभिनव युग के नव विधान,
रूढ़ बन्धनों के मुक्ति गान,
हे युग-पुरुष, हे युगाधार, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन !
ज्ञान-ज्योति की ज्वलित ज्वाला,
आत्म - साधना का उजाला;
हे मिथ्या-तिमिर अभिनाशक, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन !
तुम नव्य नभ के नव विहान,
नई चेतना के अभियान,
श्रमण-संस्कृति के अमर-गायक, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन !
अतीत युग के मधुर गायक,
अभिनव युग के हो अधिनायक,
नूतन-पुरातन युग श्रृङ्खला, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन !
तू पद-दलितों का क्रान्ति-घोष,
अबल-साधकों का शक्ति-कोष,
हे क्रान्ति-पथ के महापथिक, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन !

—विजय मुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

•

० मुनिश्रीसुशील कुमार जी
(विश्व-धर्म संघ के प्रेरक)

हिमालय से भी ऊँचा, सागर से भी गहरा
एक विराट व्यक्तित्व कविश्री जी

कवि श्री जी महाराज समाज की एक विशिष्ट निधि हैं। पिछले वर्षों में एकता के लिए किए गए प्रयत्नों की पूर्णता, यदि कहीं जाकर अपने परम उत्कर्ष को प्राप्त कर सकी है, तो वह एक कवि श्री जी का तेजस्वी एवं समन्वयकारी व्यक्तित्व है, जिसके कारण स्थानकवासी समाज की विविध सम्प्रदायों के अनेक साधुओं का एक श्रमण-संघ बन सका। इन सब बिखरे मोतियों की माला बनाने में सूत्रधार का काम जो कवि जी महाराज का व्यक्तित्व कर सका है, वह दूसरा कोई नहीं कर सका। अतः आज वे समाज की एकता के प्रतीक हैं।

सादड़ी सम्मेलन तो एकता को केवल अभिव्यक्ति था, किन्तु उसकी पृष्ठ-भूमि में विरोधी विचारों, विभिन्न स्वार्थी और पारस्परिक एवं सम्प्रदाय-गत पदवियों तथा अधिकारों के महाविलय का रूप कौन दे पाया ? किसने इस एकता के यज्ञ में ब्रह्मा का काम किया ? तो, इसके उत्तर में हमें ब्रह्मर्षि कवि श्री अमर चन्द्र जी महाराज का ही नाम लेना पड़ेगा।

सादड़ी सम्मेलन के पूर्व, पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज, पूज्य आनन्द ऋषि जी महाराज, पूज्य हस्तीमल जी महाराज और श्री पन्नालालजी महाराज आदि-आदि शक्तियों को एकमुखी बनाने में, जो अज्ञात प्रयास कवि जी की ओर से हुआ है, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि जी के व्यक्तित्व ने उन सब शक्तियों को अपने प्रभाव में बांधा, प्रेम में जोड़ा, और स्नेह-सूत्र में आबद्ध करके एकता में ला खड़ा किया—यह सब सूझ-बूझ कवि श्री जी की ही रही है।

सादड़ी, सोजत और भीनासर के साधु-सम्मेलनों में, अगर ज्ञान के क्षेत्र में सबसे अधिक अकाट्य तर्क, सबसे अधिक गहन शास्त्रीय चर्चा, सबसे अधिक विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति और सबसे अधिक प्रतिनिधियों के मन में रही हुई कुण्ठाओं का समाधान यदि हुआ है तो कवि श्री जी महाराज की उदात्त-वाणी से ही हुआ है। अतः वे ही एक मात्र सम्मेलनों के निर्माता, संयोजक और दिशा-दर्शक रहे हैं। क्योंकि स्थानकवासी समाज के श्रमण और श्रावक उन पर पूरी आस्था, निष्ठा और आशा रखते हैं। कवि श्री जी सदा विचार-क्रांति में अग्रणी रहे हैं। उनका चेतनाशील मानस कभी भी पूर्वग्रहों में आबद्ध नहीं हुआ। कविश्री जी का व्यक्तित्व हिमालय से भी ऊंचा, सागर से भी गहरा है। ●

० प्रो० कल्याणमल लोढा

(प्रा० कलकत्ता विश्व-विद्यालय)
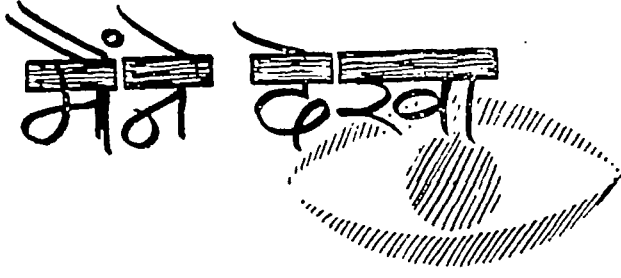
मैंने पहली बार जैन मुनि के प्रवचन में व्यक्ति की मर्यादाओं का समाज और लोकदर्शन के साथ समन्वय देखा।··· मैंने देखा —इस सच्चे साधु में एक महान् दार्शनिक को, क्रांतिकारी विचारक को···

—०—

व्यक्तित्व की महिमा और महत्ता आलोक के ही सदृश उज्ज्वल होती है, उसकी महानता सर्वव्यापी होते हुए भी लौकिक चक्षुओं से दृष्टिगोचर नहीं होती—वह तो प्रकाश और वायु के समान सर्वत्र व्याप्त होते हुए प्रत्येक स्थान को अंधकारहीन और प्राणमय बनाती रहती है। उसकी एक ही झलक प्रातःकालीन सूर्य की प्रथम तेजोमय रश्मि की भाँति नवीन सृष्टि और आलोक विकीर्ण कर देती है—ऐसे व्यक्तित्व में जीवन के आदर्श यथार्थ वन जाते हैं। उपाध्याय अमर मुनि के प्रथम दर्शन में ही मैंने उनमें ऐसे ही प्रभावशाली महान् व्यक्तित्व के दर्शन किए—उसकी उसी महिमा और महत्ता के! ऐसा लगा कि इस जैन मुनि में मुनित्व के समस्त प्रत्यक्ष और परोक्ष लक्षण, महानता के चतुर्दिक उपकरण समग्ररूप में विद्यमान हैं, और इनका जीवन एवं चिन्तन थोथी रूढ़ियों में, जर्जर सड़ी-गली परम्पराओं और संकीर्ण साम्प्रदायिकता से वहुत ऊपर उठकर मानवता के सच्चे कल्याण साधन में सन्निहित है।

उस दिन जन्माष्टमी का महान् पर्व था। भारतीय इतिहास और जीवन कि अनुपम घटना। कविजी जन्माष्टमी पर व्याख्यान दे रहे थे—मैंने पहली बार उनका प्रवचन सुना। उनमें महान् व्याख्याता के समस्त गुण वर्तमान हैं। भाषा का प्रवाह और शैली की प्रौढ़ता विशेष है! वह श्रीकृष्ण का उद्वोधन दुहरा रहे थे।

कवि जी कह रहे थे—"दुर्वलता कौन-सी? मोह-युक्त भावना, जो जोवन से इकरार नहीं इनकार कर रही थी, जो धर्म और कर्तव्यगत उल्लास और आनन्द

को वृथा पीड़ा समझकर जीवन को खोखला बना रही थी। श्रीकृष्ण ने उसी के लिए कहकर अर्जुन के तन-मन में बल फूँका, उसे आत्म-साधन और अवलम्बन का मन्त्र दिया। वे स्वयं केवल सारथी ही रहे—रथ हाँकते रहे। युद्ध और संग्राम अर्जुन ने ही किया, विजय भी उसी की हुई। श्रीकृष्ण ने सच्चे व्यक्ति-धर्म की घोषणा की—आज का त्यौहार हजारों वर्ष की यात्रा में हमें वर्तमान भारत के दयनीय भारतीयों को, हजारों-हजार मोहग्रस्त, कर्तव्यच्युत अर्जुनों से यही कह रहा है—व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से।"

मैंने पहली बार जैन मुनि के प्रवचन में व्यक्ति की मर्यादाओं का समाज और लोक-दर्शन के साथ समन्वय देखा। देखा भारतीय संस्कृति के विभिन्न धर्मों और दर्शनों की वाह्य विविधता के भीतर जो साम्य और एक-रूपता है, जो मानवीय मर्यादाएँ हैं, कवि जी उसे ही बता रहे हैं, निष्पक्ष और निःसंकोच भाव से। विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक का जिसने आज के वाह्य जीवन में धर्म की विशालता का ही नहीं, संकीर्णता का; प्रगति का नहीं, रूढ़ि का; समन्वय का नहीं, विग्रह का वैषम्य और विष देखा है यह सुनकर मन फूल उठा। उस भरे हुए जन-समूह के मध्य इस सच्चे साधु और दार्शनिक को मैंने नमस्कार किया—मत्थएण वंदामि।

उस दिन से मैंने कई वार अमर मुनि के प्रवचन सुने हैं। उनके दर्शनों का लाभ उठाया है—उनके अगाध ज्ञान और अध्ययन की थाह पाने की चेष्टा की है। हर वार खाली ही गया और भरा-पूरा लौटा। संतुलन और कल्प के वीच सरस्वती के दर्शन किए। ऐसा लगा कि जैनधर्म-गत समस्त मुनि लक्षणों के साथ शान्ति, स्निग्धता और दिव्य सौम्यता इनके व्यक्तित्व में चारों ओर से भरी-पूरी है। कालिदास द्वारा वर्णित महानता की सच्ची और साक्षात् मूर्ति हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी से कोरी अध्यात्मवादिता के विरुद्ध एक आन्दोलन चल पड़ा था। कारण, इस कोरे अध्यात्म के पीछे एक धार्मिक परम्परा अवश्य थी पर मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक जटिलताओं एवं उत्तरदायित्वों का हल नहीं था। केवल विरोध और त्याज्य का स्वर था। वाह्य आडम्वरों और परम्पराओं में केवल धार्मिक अनुष्ठान और क्रियाएँ ही शेष वची थीं—इसलिए वह अध्यात्म प्रत्यक्ष जीवन के प्रश्नों का हल नहीं कर सका—पीछे जो विचार-क्रान्ति राम-कृष्ण, दयानन्द एवं विवेकानन्द द्वारा आई, उसमें व्यक्ति, समाज और वस्तु—तीनों का एकीकरण, आध्यात्मीकरण हुआ। उपाध्याय अमर मुनि जी जैन-समाज के वर्तमान विवेकानन्द हैं। वे कोरे जड़हीन अध्यात्म और वन्धनों से रहित हैं। उनका व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र जीवन के एक सूत्र और स्वस्थ परम्परा में बँधा है। इसलिए उनके प्रवचनों में आज की समस्याओं का हल है। आज के प्रश्नों का उत्तर मनुष्य की व्यक्तिगत, सामाजिक और अध्यात्मिक मान्यताओं

का, उत्तरदायित्वों का एकीकरण है, विरोध और पार्थक्य नहीं। इन्होंने जैन धर्म और दर्शन के मूल तत्त्व को ग्रहण किया है। जीवन और समय की माँगों को निभाया है। वे क्रान्तिकारी प्रगतिशील विचारक हैं। उनमें समाज और राष्ट्र की माँगें भी विद्यमान हैं और व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का साधन भी। धर्म की मूल मर्यादाओं के पालन का भी आग्रह है, केवल बाह्य क्रियाओं का नहीं। वहुधा धर्म का सौभाग्य काल-प्रवाह में अन्धे अनुयायियों के हाथों पड़कर प्रत्यक्ष जीवन का दुर्भाग्य बन जाता है—उसका भी बँटवारा होता रहता है और उसकी मूल शक्ति नष्ट हो जाती है। महावीर की एक वाणी के पहले दो रूप हुए और फिर अनेक। विरोध, विविधता इतनी बढ़ी की जैन-धर्म का दिव्यत्व जैनेतर विद्वानों के समक्ष आया ही नहीं। अपरिग्रह-प्रधान धर्म के अनुयायी परिग्रह में पड़ बंटवारे और अधिकारों के लिए झगड़ने लगे।

मैंने देखा कि इन साम्प्रदायिक तूफानों के बीच श्रावकों और मुनियों के मध्य अमर मुनि जो जिब्राल्टर की दृढ़ चट्टानों की भाँति स्थिर हैं और उन्हीं के भगीरथ प्रयत्नों का परिणाम हुआ कि स्थानकवासी श्वेताम्बर एक संघ में सम्मिलित होकर एक आचार्य ही मानने लगे। ऐक्य की इस स्थापना को स्थायी रखने में वे आज भी अस्वस्थ शरीर और पीड़ित हृदय लेकर भी कटिबद्ध हैं। कवि जी एक सिद्ध-हस्त लेखक भी हैं, उनके ग्रन्थों में जैन-धर्म के विवेचन के साथ एक गहन दार्शनिक योजना के दर्शन होते हैं, जो नितान्त मौलिक है। उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं। उनका शरीर अस्वस्थ और रुग्ण है, पर शक्ति और उत्साह अदम्य है। जिस आन्तरिक उल्लास और आनन्द का वे अपने प्रवचनों में उद्बोधन देते रहते हैं—वह शतशः रूप में उनमें विद्यमान है। उनकी मुस्कान के भीतर आत्मा की विजय स्पष्ट है और उनके अस्वस्थ शरीर में अत्यन्त स्वस्थ और महान् आत्मा! आचार्य मानतुङ्ग ने कहा है—

सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र लोके!

तुम्हारी महिमा सूर्य से बढ़कर है—अनन्त गुणाधिक, पर अन्य उपमा कहाँ खोजें। वर्तमान हतभागी पीड़ित समाज उन्हें सुनकर, पढ़कर और उनके दर्शन कर वास्तविक आध्यात्मिक आनन्द और उल्लास का अनुभव करता है—आज की भौतिक पीड़ाओं के लिए उनका जीवन और दर्शन सच्चा आध्यात्मिक हल है।

यह है, उपाध्याय अमर मुनि के व्यक्तित्व की झाँकी। आज आडम्बर और प्रचार का युग है। वड़े-वड़े धर्माचार्य और पीठाधीश भी इससे अछूते नहीं—पर इस महान् मुनि में न किसी आडम्बर की प्रस्तावना है, न प्रचार की भूमिका है और न आत्म-श्लाघा का प्राक्कथन। किसी समाचार-पत्र की दो पंक्तियाँ इन्हें गद्-गद् नहीं बनातीं, न किसी नेता की प्रशस्ति इनका "साइन वोर्ड" है। न इनका ज्ञान ह्युयेनत्सांग द्वारा वर्णित उस बौद्ध भिक्षु का है, जो ताड़ पत्रों से कटि-बद्ध होकर चलता था, जिससे उसका अपरिमेय ज्ञान फट न जाए।

को वृथा पीड़ा समझकर जीवन को खोखला बना रही थी। श्रीकृष्ण ने उसी के लिए कहकर अर्जुन के तन-मन में बल फूंका, उसे आत्म-साधन और अवलम्बन का मन्त्र दिया। वे स्वयं केवल सारथी ही रहे—रथ हांकते रहे। युद्ध और संग्राम अर्जुन ने ही किया, विजय भी उसी को हुई। श्रीकृष्ण ने सच्चे व्यक्ति-धर्म की घोषणा की—आज का त्योहार हजारों वर्ष की यात्रा में हमें वर्तमान भारत के दयनीय भारतीयों को, हजारों-हजार मोहग्रस्त, कर्तव्यच्युत अर्जुनों से यही कह रहा है—व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से।"

मैंने पहली बार जैन मुनि के प्रवचन में व्यक्ति की मर्यादाओं का समाज और लोक-दर्शन के साथ समन्वय देखा। देखा भारतीय संस्कृति के विभिन्न धर्मों और दर्शनों की बाह्य विविधता के भीतर जो साम्य और एक-रूपता है, जो मानवीय मर्यादाएँ हैं, कवि जी उसे ही बता रहे हैं, निष्पक्ष और निःसंकोच भाव से। विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक का जिसने आज के बाह्य जीवन में धर्म की विशालता का ही नहीं, संकीर्णता का; प्रगति का नहीं, रूढ़ि का; समन्वय का नहीं, विग्रह का वैषम्य और विष देखा है यह सुनकर मन फूल उठा। उस भरे हुए जन-समूह के मध्य इस सच्चे साधु और दार्शनिक को मैंने नमस्कार किया—मत्थएण वंदामि।

उस दिन से मैंने कई बार अमर मुनि के प्रवचन सुने हैं। उनके दर्शनों का लाभ उठाया है—उनके अगाध ज्ञान और अध्ययन की थाह पाने की चेष्टा की है। हर बार खाली ही गया और भरा-पूरा लौटा। संतुलन और कल्प के बीच सरस्वती के दर्शन किए। ऐसा लगा कि जैनधर्म-गत समस्त मुनि लक्षणों के साथ शान्ति, स्निग्धता और दिव्य सौम्यता इनके व्यक्तित्व में चारों ओर से भरी-पूरी है। कालिदास द्वारा वर्णित महानता की सच्ची और साक्षात् मूर्ति हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी से कोरी अध्यात्मवादिता के विरुद्ध एक आन्दोलन चल पड़ा था। कारण, इस कोरे अध्यात्म के पीछे एक धार्मिक परम्परा अवश्य थी पर मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक जटिलताओं एवं उत्तरदायित्वों का हल नहीं था। केवल विरोध और त्याज्य का स्वर था। बाह्य आडम्बरों और परम्पराओं में केवल धार्मिक अनुष्ठान और क्रियाएँ ही शेष बची थीं—इसलिए वह अध्यात्म प्रत्यक्ष जीवन के प्रश्नों का हल नहीं कर सका—पीछे जो विचार-क्रान्ति राम-कृष्ण, दयानन्द एवं विवेकानन्द द्वारा आई, उसमें व्यक्ति, समाज और वस्तु—तीनों का एकीकरण, आध्यात्मीकरण हुआ। उपाध्याय अमर मुनि जी जैन-समाज के वर्तमान विवेकानन्द हैं। वे कोरे जड़हीन अध्यात्म और बन्धनों से रहित हैं। उनका व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र जीवन के एक सूत्र और स्वस्थ परम्परा में बँधा है। इसलिए उनके प्रवचनों में आज की समस्याओं का हल है। आज के प्रश्नों का उत्तर मनुष्य की व्यक्तिगत, सामाजिक और अध्यात्मिक मान्यताओं

का, उत्तरदायित्वों का एकीकरण है, विरोध और पार्थक्य नहीं। इन्होंने जैन धर्म और दर्शन के मूल तत्त्व को ग्रहण किया है। जीवन और समय की माँगों को निभाया है। वे क्रान्तिकारी प्रगतिशील विचारक हैं। उनमें समाज और राष्ट्र की माँगें भी विद्यमान हैं और व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का साधन भी। धर्म की मूल मर्यादाओं के पालन का भी आग्रह है, केवल बाह्य क्रियाओं का नहीं। बहुधा धर्म का सौभाग्य काल-प्रवाह में अन्धे अनुयायियों के हाथों पड़कर प्रत्यक्ष जीवन का दुर्भाग्य बन जाता है—उसका भी बँटवारा होता रहता है और उसकी मूल शक्ति नष्ट हो जाती है। महावीर की एक वाणी के पहले दो रूप हुए और फिर अनेक। विरोध, विविधता इतनी बढ़ी की जैन-धर्म का दिव्यत्व जैनेतर विद्वानों के समक्ष आया ही नहीं। अपरिग्रह-प्रधान धर्म के अनुयायी परिग्रह में पड़ बंटवारे और अधिकारों के लिए झगड़ने लगे।

मैंने देखा कि इन साम्प्रदायिक तूफानों के बीच श्रावकों और मुनियों के मध्य अमर मुनि जो जिब्राल्टर की दृढ़ चट्टानों की भाँति स्थिर हैं और उन्हीं के भगीरथ प्रयत्नों का परिणाम हुआ कि स्थानकवासी श्वेताम्बर एक संघ में सम्मिलित होकर एक आचार्य ही मानने लगे। ऐक्य की इस स्थापना को स्थायी रखने में वे आज भी अस्वस्थ शरीर और पीड़ित हृदय लेकर भी कटिबद्ध हैं। कवि जी एक सिद्ध-हस्त लेखक भी हैं, उनके ग्रन्थों में जैन-धर्म के विवेचन के साथ एक गहन दार्शनिक योजना के दर्शन होते हैं, जो नितान्त मौलिक है। उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं। उनका शरीर अस्वस्थ और रुग्ण है, पर शक्ति और उत्साह अदम्य है। जिस आन्तरिक उल्लास और आनन्द का वे अपने प्रवचनों में उद्‌वोधन देते रहते हैं—वह शतशः रूप में उनमें विद्यमान है। उनकी मुस्कान के भीतर आत्मा की विजय स्पष्ट है और उनके अस्वस्थ शरीर में अत्यन्त स्वस्थ और महान् आत्मा! आचार्य मानतुङ्ग ने कहा है—

सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र लोके!

तुम्हारी महिमा सूर्य से बढ़कर है—अनन्त गुणाधिक, पर अन्य उपमा कहाँ खोजें। वर्तमान हतभागी पीड़ित समाज उन्हें सुनकर, पढ़कर और उनके दर्शन कर वास्तविक आध्यात्मिक आनन्द और उल्लास का अनुभव करता है—आज की भौतिक पीड़ाओं के लिए उनका जीवन और दर्शन सच्चा आध्यात्मिक हल है।

यह है, उपाध्याय अमर मुनि के व्यक्तित्व की झाँकी। आज आडम्बर और प्रचार का युग है। बड़े-बड़े धर्माचार्य और पीठाधीश भी इससे अछूते नहीं—पर इस महान् मुनि में न किसी आडम्बर की प्रस्तावना है, न प्रचार की भूमिका है और न आत्म-श्लाघा का प्राक्कथन। किसी समाचार-पत्र की दो पंक्तियाँ इन्हें गद्-गद् नहीं बनातीं, न किसी नेता की प्रशस्ति इनका "साइन बोर्ड" है। न इनका ज्ञान ह्युयेनत्सांग द्वारा वर्णित उस बौद्ध भिक्षु का है, जो ताड़ पत्रों से कटि-बद्ध होकर चलता था, जिससे उसका अपरिमेय ज्ञान फट न जाए।

संयम में स्थिर, आन्तरिक और बाह्य परिग्रहों से मुक्त—छह काया के रक्षक, पंच महाव्रतधारी इस दिव्य जैन मुनि में मनुस्मृति के समस्त लक्षण, बौद्ध धर्म की समस्त पारमिताएँ और ईसा के समस्त आदेश दृश्यमान हैं। उनका प्रभाव जैन और जैनेतर समाज में स्पष्ट है। लोक-कल्याण की भूमिका में जो जीवन और चरित्र रहा करते हैं, व्यक्ति के आध्यात्मिक जागरण के भीतर जो जीवन-दर्शन पीठिका के रूप में स्थिर रहता है—वही व्यक्तित्व, जीवन-चरित्र और दर्शन कवि जी महाराज—अमर मुनि जी का है।

कवि अमरचन्द जी महाराज सन्त हैं, कवि हैं और आलोचक भी हैं। केवल शाब्दिक रचना के नहीं, किन्तु समाज और धर्म के भी। उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जिन सत्यों का साक्षात्कार किया, वे उनके साहित्य में सन्निहित हैं। ●

सामूहिक साधना

●

जैन-धर्म की मूल परम्परा में व्यक्ति साधना के क्षेत्र में स्वतन्त्र होकर अकेला भी चलता है और समूह या संघ के साथ भी। एक ओर जिनकल्पी मुनि संघ से निरपेक्ष होकर व्यक्तिगत साधना के पथ पर बढ़ते हैं दूसरी ओर विराट् समूह, हजारों साधु-साध्वियों का संघ सामूहिक जीवन के साथ साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ता है। जैन धर्म और जैन परम्परा ने व्यक्तिगत धर्म साधना की अपेक्षा सामूहिक साधना को अधिक महत्व दिया है। सामूहिक चेतना और समूहभाव उसके नियमों के साथ अधिक जुड़ा हुआ है। अहिंसा और सत्य की वैयक्तिक साधना भी संघीय रूप में सामूहिक-साधना की भूमिका पर विकसित हुई है। अपरिग्रह, दया तथा करुणा और मैत्री की साधना भी संघीय धरातल पर ही पल्लवित पुष्पित हुई है। जैन परम्परा का साधक अकेला नहीं चला है, वल्कि समूह के रूप में साधना का विकास करता चला है। व्यक्तिगत हितों से भी सर्वोपरि संघ के हितों का महत्व मानकर चला है। जिनकल्पी जैसा साधक कुछ दूर अकेला चलकर भी अन्ततोगत्वा संघीय जीवन में ही अन्तिम समाधान कर पाया।

—**श्री अमर भारती, जनवरी १९६८**

० श्रीचन्द सुराना 'सरस'

सत्य की अटल आस्था लिए
एक युग प्रवर्तक व्यक्तित्व

> ....इस व्यक्तित्व में एक विलक्षणता है। एक ओर सत्य के लिए संघर्ष करने की वृत्ति, परिस्थितियों से जूझने का अटल साहस और साथ ही सत्य की प्रतीति होने पर उसे विनम्रता पूर्वक स्वीकार करने की उदार बुद्धि...।

"ये लोग हमारे धर्म का नाश करने को तुले हैं, हमारी संप्रदाय के प्रति जनता में भ्रामक प्रचार कर रहे हैं। अतः इनकी पोल खोलो, खण्डन करने वाली एक ऐसी शानदार पुस्तक लिखो कि बस जो पढ़े वह दंग रह जाए, इनसे मुंह फेरले।" एक वरिष्ठ मुनि की जोरदार प्रेरणा मिली, और युवक अमर मुनि ने उक्त संप्रदाय के सिद्धान्तों की समालोचना पर पुस्तक के कुछ पृष्ठ लिखे।

पुस्तक में प्रश्नोत्तर क्रम से विपक्ष के सिद्धान्तों की समीक्षा की गई थी। विपक्ष के आचार्य को उन्होंने स्थान-स्थान पर 'आचार्य श्री' का आदर सूचक सम्बोधन किया था।

"हैं, यह क्या ? भला, यह कोई खण्डन है ? खण्डन क्या कर रहे हो, तुम तो उन्हें 'आचार्य श्री' लिख रहे हो।"

"क्यों 'आचार्य श्री' लिखने में क्या हर्ज है ?"

"किसके आचार्य हैं ?"

"उनकी अपनी सम्प्रदाय के।"

"नहीं, उन्हें दंडी लिखो ! पाखंडी लिखो !"

"—नहीं, यह नहीं हो सकता !"

"तुम कैसे नौजवान हो ? तुम्हारी नसों में धर्म का जोश भी नहीं !"

"जोश तो है, लेकिन उन्माद नहीं है। जब आप एक सिक्ख सरदारको सरदार कह सकते हैं, जब आप एक वैष्णव महंत को महंत कह सकते हैं तो एक जैन-सम्प्रदाय के आचार्य को आचार्य क्यों नहीं कह सकते? अमर मुनि की कलम सिद्धान्तों का विरोध कर सकती है, लेकिन वह अशिष्ट नहीं हो सकती, किसी के प्रति असभ्य भाषा का प्रयोग नहीं कर सकती!"

यह घटना है आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व की। जब युवक अमर मुनि की लेखनी का जादू समाज के सर चढ़कर बोल रहा था। और उन्हीं दिनों मूर्तिपूजक संप्रदाय के आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी पंजाब में बड़ी तेजी के साथ अपने सिद्धान्तों के प्रचार में संलग्न थे। तभी समाज के वरिष्ठ मुनियों ने अमर मुनि को उनके विरोध में पुस्तक लिखने को कहा और उसी संदर्भ में अमर मुनि ने यह दो टूक उत्तर दिया। उन दिनों पुस्तक लिखना एक बड़ी बात थी, और उसका छप जाना तो व्यक्तित्व के लिए अपने में एक खास उपलब्धि थी। जिस पुस्तक में सांप्रदायिक उन्माद भरा होता, और विरोधी पर असभ्य एवं अश्लील भाषा के छींटे उछाले गए होते तो वह पुस्तक एक झटके में ही धार्मिक जनता के सर आँखों पर चढ़ जाती।

किन्तु अमर मुनि की लेखनी ने कभी भी सस्ती ख्याति और गलत नीतियों के साथ सौदा या समझौता नहीं किया। वह आज सत्य के प्रति जितनी कठोर है, अपनी गति के प्रारम्भ में भी उतनी ही कठोर थी। उनकी आस्था के चरण सत्य की ओर जिस शक्ति से आज बढ़ रहे हैं, प्रारम्भ में भी उतने ही सुदृढ़ एवं शक्तियुक्त थे।

उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसी विलक्षणता एवं अद्‌भुतता रही हुई कि दर्शक को एकदम निरालापन लगेगा। एक ओर सत्य के लिए संघर्ष करने की वृत्ति, परिस्थितियों से जूझने का अटल साहस, और साथ ही सत्य की प्रतीति होने पर उसे विनम्रता पूर्वक स्वीकार करने की उदार बुद्धि!

उनकी ज्ञान चेतना में अद्‌भुत ग्रहणशीलता है। और प्रतिभा में आश्चर्यकारी प्रसरणशीलता। प्रारम्भिक अध्ययन उनका कोई व्यवस्थित नहीं हुआ। अपने अध्ययन के लिए स्वयं उन्हें कठोर श्रम करना पड़ता था। अपने अन्तर की प्रेरणा से ही उन्होंने अध्ययन को आगे बढ़ाया। जब मैंने अध्ययन की प्रारम्भिक स्थिति के सम्बन्ध में श्री अमरमुनि जी से पूछा, तो वे हंसकर बोले—"जहां भी जो मिला, वह ले लिया, जैसे भी साधन मिले उन्हें अपने अनुकूल बनाकर उपयोग करता गया। साधनों का रोना कभी नहीं रोया। परिस्थितियां तो लगभग ऐसी थी कि अपना स्वयं उत्साह नहीं होता तो न संस्कृत-प्राकृत पढ़ सकते और न वर्तमान साहित्य एवं चिन्तन का स्पर्श पा सकते। वह युग था, जब गांव से बाहर संस्कृत पाठशालाएं थी, जिनमें

आस-पास के ब्राह्मण विद्यार्थी सदाव्रत पर पढ़ते थे। एक जैन मुनि, जिसके वेष की विशिष्ट प्रतिष्ठा थी, सामान्य जनता से कुछ विलक्षणता उसमें प्रदर्शित की जाती थी, वह पाठशालाओं में ब्राह्मण विद्यार्थियों के साथ बैठकर संस्कृत पढ़े, और वह भी अपने स्थान से भोजनोपरान्त दुपहर को डेढ़-दो मील जाए और सायं डेढ़-दो मील वापस आए। साधु जीवन के लिए बड़ी विचित्र-सी बात थी, और फिर जैन साधु के लिए। पर हमने यह सब कुछ प्रसन्नता के साथ किया। नारनौल (हरियाणा) और सिंघाणा (राजस्थान) की पाठशाला में रोज जाना-आना हमारे बहुत से श्रावकों को अखरा भी, पर, हमें यह भारहीन शुद्ध अध्ययन अच्छा लगता था, और इसलिए हमने सब कुछ सहकर चालू रखा।"

नई उद्भावनाएं

अमर मुनि जी में ज्ञान की बुभुक्षा प्रारम्भ से ही बड़ी प्रबल थी। संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी की जो भी पुस्तक सामने आ जाती उसे आद्योपांत पढ़ डालते। एक बार तो विहार यात्रा में एक सज्जन से सात-सौ पृष्ठ की लम्बी-चौड़ी भारी-भरकम पुस्तक मिली, और वह एक ही दिन में पढ़ ली गई। यही कारण था कि अवरोधक परिस्थितियों में भी उनका बौद्धिक विकास निरन्तर आगे बढ़ता रहा। उनकी प्रतिभा की स्फुरणा इतनी प्रखर होती गई कि आगम व इतिहास ग्रन्थों के संकेत-सूत्रों पर अनेक नई उद्भावनाएं एवं व्याख्याएं उपस्थित करने लगे जो तत्कालीन वर्तमान में काफी चौंका देने वाली थी, पर आगे चलकर वे ही उल्लेखनीय महत्वपूर्ण घटनाएं बन गईं।

अम्बाला में एकबार महावीर जयंती का उत्सव मनाया जा रहा था। आचार्य आत्माराम जी महाराज ने, जो उस समय उपाध्याय पद पर थे, अमर मुनि जी से कहा—'भगवान महावीर के जीवन पर एक पुस्तक लिखिए जो उत्सव पर प्रचारित की जा सके।' पुस्तक लिखी गई, काफी सुन्दर लिखी गई। और ठीक समय पर प्रकाशित एवं प्रचारित हो गई। पुस्तक ने एक ओर आदर पाया तो दूसरी ओर विरोध का एक बवंडर भी खड़ा हो गया।

बात यह थी कि पुस्तक में भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित कुछ ऐसी विलक्षण घटनाओं की उद्भावना की गई थी, जो साम्प्रदायिक परम्परा से सम्बन्धित अबतक के महावीर जीवन चरित्रों में कहीं प्रचारित नहीं थी। यद्यपि प्राचीन आगम व ग्रन्थों में उन घटनाओं के संकेत-सूत्र इतने स्पष्ट थे कि उन पर कोई विवाद नहीं होना चाहिए था, पर उन संकेतों को प्रेरणाप्रद घटना के रूप में विकसित करने का चमत्कार अमर मुनिजी की प्रतिभा ने ही सर्व-प्रथम दिखलाया था। घटनाओं में मुख्य थी, भगवान महावीर द्वारा ब्राह्मण को वस्त्रदान की घटना, अजातशत्रु कोणिक का भगवान महावीर से संवाद-वार्ता, अपराधी संगम पर करुणार्द्र महावीर के नेत्र सजल हो जाना। इन सबकी

कि अमर मुनि जी ने इन संकेतों पर इतनी बड़ी घटनाएं क्यों गढ डालो? अस्तु, सुखद आश्चर्य तो इस बात का होना चाहिए कि वे विकसित हुए कथा-सूत्र आज महावीर चरित्र की उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण घटना के रूप में सर्वमान्य हो गए हैं।

ऐसा लगता है, अमर मुनिजी का साहित्यकार प्रारम्भ से ही सचेतन रहा है। उन्होंने निर्भयता पूर्वक जैन साहित्य को नई उद्भावनाओं, एवं नई विधाओं से समृद्ध बनाया है। जैन साहित्य के अनेक सूक्ष्म संकेतों पर उन्होंने नई-नई व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। अनेक कथा सूत्रों को विकसित किया है और अनेक रूढ़ परिभाषाओं को नया संस्कार दिया है। उनकी लेखनी ने स्थानकवासी समाज में साहित्य सर्जना का नया द्वार खोला है, नई शैली, नई कल्पना एवं नई प्रतिभा को जन्म दिया और कहना चाहिए साहित्यिक दिशा में एक नये युग का प्रवर्तन किया।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में आये हुए कल्प वृक्षों के वर्णन पर यह धारणा थी और कहीं कहीं पर अब भी है, कि कल्पवृक्ष देवाधिष्टित होते थे, उनसे कोई भी मनोवांछित वस्तु प्राप्त की जा सकती थी। श्री अमर मुनि जी ने इस धारणा पर बौद्धिक संशोधन प्रस्तुत किया कि– युगलियों का जीवन कल्पवृक्षों के सहारे चलने का अर्थ यह नहीं है कि मन चाही हर इच्छा कल्पवृक्ष पूरी कर दें। फिर तो कल्पवृक्षों से विविध मिष्टान्न व्यंजन मिल जाने चाहिए। और उस स्थिति में युगलियों को—'कंदाहारा, मूलाहारा, फलाहारा' क्यों बताया गया? मिष्ठान्नाहारा क्यों नहीं कहा गया। कंद, मूल, फल तो वनस्पति रूप वृक्ष से प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु मिष्ठान्न वृक्ष से प्राप्त हों, ऐसा वर्णन कहीं नहीं है। 'मद्यंगा' कल्पवृक्ष का यह अर्थ नहीं कि वह मद्य का प्याला भर कर सामने रख दे, और न 'गेहागारा' का ही यह अर्थ है कि वह पलभर में भव्य भवन बनाकर तैयार कर दे। उनका बुद्धि गम्य, एवं तर्क सिद्ध अर्थ ग्रहण करना चाहिए और वह यही हो सकता है, कि मद्यंगा अर्थात्—मद्य के समान मादक-नशीले फल वाला वृक्ष, और गेहागारा अर्थात्—घर के समान छायादार गहराया हुआ वृक्ष! उस युग में इन परिभाषाओं पर बड़ी टिप्पणियां हुई, पर आज अपने को थोड़ा सा बुद्धिवादी मानने वाला हर जैन विचारक इस अर्थ को स्वीकार कर रहा है।

हमारी प्रचलित परंपरा में ब्राह्मण को 'नीच गोत्री' कहा गया है। ब्राह्मण से क्षत्रिय ऊंचा है। जैन आचार्य इस बात पर बहुत जोर देते आये थे। अमर मुनि जी ने प्रारम्भ से ही इस बात पर टीका की। उन्होंने कहा—यह तो ब्राह्मणों पर क्षत्रियों की श्रेष्ठता का एक जातीय दावा है, इस बात में नीच गोत्र एवं उच्चगोत्र की तात्विक परिभाषा का कोई आधार नहीं है, एक युग था, जब इस प्रकार के सांप्रदायिक आग्रह एवं अभिनिवेश जन मानस को उद्वेलित कर

रहे थे, सत्य की यथार्थ स्थिति से दूर भटका रहे थे। जो धर्म कदम कदम पर जातीयता के अहं को ठुकराता रहा, वह स्वयं कैसे इस प्रश्न पर ठोकर खा सकता था। इस वात पर कुछ मुनियों ने अमर मुनि को नास्तिक भी कहा। मिथ्यात्वी कहा, और तव अमर मुनि ने मधुर मुस्कान के साथ उनको उत्तर दिया—"अगर यह मिथ्यात्व है, तो आपके सम्यक्त्व से अच्छा है।"

राष्ट्रीय चेतना

०

श्री अमर मुनि जी में जिस प्रौढ वैचारिक तेजस्विता का तपनशील रूप आज व्यक्त हो रहा है, उसका अंकुर अतीत में वहुत गहरा है। किशोर जीवन, जिसे वे अपना विद्यार्थी काल कहते हैं, धार्मिक चेतना के साथ राष्ट्रीय चेतना का भी एक महान् जागरण काल था। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के उद्घोषों ने उनके युवारक्त में जो ज्वार पैदा किया, वह धार्मिक तेजस्विता से किसी प्रकार कम नहीं था। महावीर का सच्चा अनुयायी होने के नाते उनमें अहिंसक समाज, राष्ट्र प्रेम तथा गणतंत्रीय लोकशासन के प्रति सहज आकर्षण था और उसकी प्रतिध्वनि उनकी तत्कालीन कविताओं में मुखर हुई। 'अमर पुष्पाञ्जलि' नामक उनका कविता संग्रह सन् १६४२ में प्रकाशित हुआ था, जिसमें राष्ट्र पुरुष को उद्‌बोधन देने वाली अनेक जोशीली कविताएं थी, इस कारण तत्कालीन पटियाला रियासत ने उसे जब्त करने का आदेश निकाल दिया। प्रस्तुत इतिहास में शायद यह पहला अवसर था, जब किसी जैन संत ने राष्ट्रीय चेतना का संगीत इतनी तन्मयता के साथ मुखर किया हो। तभी से श्री अमर मुनि 'अमर कवि' के नाम से पहचाने गये, और आज तो 'कविजी—यह तीन अक्षरों का छोटा-सा शब्द उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का बोधक वन गया है। कविश्री जी की तद्‌युगीन वे कविताएं इतनी अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुईं कि साधारण जनता के सिवाय वड़े-वड़े मुनि व समाज नेता भी उन्हें गुन-गुनाते रहते। ज्योतिर्धर आचार्य पूज्य जवाहरलालजी महाराज तो इन कविताओं पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने अपने प्रवचनों में प्रसंगानुसार वार-वार उन काव्य पंक्तियों को दुहराया है, जो आज भी उनके प्रवचन संग्रहों में यत्र तत्र विखरी हुई मिलती हैं।

जीवित जिज्ञासा

०

जिज्ञासा ज्ञान का सोपान है। श्री अमर मुनिजी से जव मैंने पूछा कि—'उस युग में ज्ञान के नवीन साधन-स्रोत अत्यन्त सीमित तथा अल्प होते हुए भी आप ने किस प्रकार अपने विकास स्तर को आगे वढ़ाया ?' तो वे आत्म-विश्लेषण की भाषा में वोले—"मुझ में जिज्ञासा प्रारम्भ से ही अत्यन्त प्रवल थी ! किसी भी विषय में तर्क प्रतितर्क करके उसका समाधान खोजता, विना किसी भेदभाव

हर किसी विद्वान मनीषी से संपर्क साधता, और जब कहीं से भी समाधान की प्रतिध्वनि नहीं मिलती तो उस विषय के अध्ययन को आगे बढ़ाकर स्वयं ही उसका समाधान पाने का प्रयत्न करता।'

क्या इस प्रकार आपको समाधान मिल जाता? स्वयं ही शिष्य, एवं स्वयं ही गुरु का यह तरीका सफल रहा?—मैंने पूछा।

हां, सफल ही कहना चाहिए। बहुत सी जिज्ञासाएं, जो अपूर्ण अध्ययन की दशा में उत्पन्न होतीं वे तो समाहित हो ही जातीं। अनेक जिज्ञासाएं, जिनके लिए इधर-उधर कोई उत्तर नहीं था, उनके बारे में भी कम से कम अधिकृत जानकारी तो प्राप्त कर ही सका। और इस प्रकार नित नव स्फूर्त होने वाली जिज्ञासाओं ने मेरे अध्ययन को व्यापक रूप दिया। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों की भी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सका।"

ज्ञान ही ज्ञान का का उद्भावक है। विचार ही विचार को जन्म देता है, विचार ही विचार का परिष्कार करता है, और विचार ही विचार को काटता-छांटता है।

"अन्य दर्शनों का अध्ययन आपने किस दृष्टि से किया?" मैंने पूछा, तो कवि श्री जी एक शांत हंसी के साथ बोले—"प्रारम्भ में तो दृष्टि कुछ और थी। परंपरागत खंडन मंडन के संस्कार अभी तक मस्तिष्क में बद्धमूल थे, अतः उसी दृष्टि से अनेक खंडनात्मक नोट्स भी लिए गये। लेकिन अध्ययन करते करते ज्यों-ज्यों दृष्टि स्पष्ट होती गई, त्यों-त्यों एक तटस्थता एवं अनाग्रहता का भाव आता गया और तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि के प्रकाश में पुनः उन्हीं ग्रन्थों का दुबारा अवलोकन किया, तो एक नया चिन्तन, नई दृष्टि मिली। सत्य पर से अपने पराये के आवरण दूर होते गए, फलतः चिन्तन धारा शुद्ध सत्य की ओर प्रवाहित होने लगी।"

"क्या यह ठीक है, कि जैसी कि समाज की परिपाटी रही है, विद्यार्थी मुनियों की मुक्त जिज्ञासा एवं प्रश्नों पर अंकुश लगाए जाते थे, आपके साथ भी ऐसा कुछ हुआ?"

"नहीं, ऐसा कोई खास प्रसंग नहीं आया। प्रारम्भ से ही हमारे दादा गुरु पूज्य मोतीलाल जी महाराज कुछ उदार एवं विचार सहिष्णु सन्त थे। अतः किसी उल्लेखनीय कठिनाई का सामना मुझे नहीं करना पड़ा। ऐसे सांप्रदायिक वातावरण में थोड़ा बहुत यथा-प्रसंग कुछ होता तो रहता ही है। हां, यह अवश्य है कि विकास के यदि कुछ अधिक अनुकूल अवसर उपलब्ध होते तो संभवतः कुछ और भी प्राप्त कर सका होता। एक बार पूज्य जवाहर लालजी महाराज जब

दादरी में हमारे दादा गुरु मोतीलालजी म० से मिले थे तो मैंने उनके समक्ष जैन भूगोल सम्बन्धी अपनी जिज्ञासाएं रखीं। उन्होंने हंस कर कहा—"तुमने तो मुझसे पूछ लिया, लेकिन मैं किससे पूछूं ?"

"क्या इसका मतलब यह नहीं कि उनके समक्ष भी वे प्रश्न पहले से ही खड़े थे, जिनका समाधान आप उनके पास खोज रहे थे।"

"हां, ऐसा ही तो कुछ है। और आज भी उन प्रश्नों का किसके पास क्या समाधान है ? फिर भी उस समय उनके साथ मेरी अच्छी विचारचर्चा रही। आचार्य श्री अपने युग के एक महान चिन्तक थे। धर्म और समाज के उलझे हुए प्रश्नों पर उनका गहरा चिन्तन था। उनसे मुझे बहुत कुछ जानने को मिला। आचार्य श्री मुझ पर काफी प्रसन्न थे, एक बार तो उन्होंने हमारे गुरु जी से कहा भी कि अमर मुनि को पांच वर्ष के लिए मुझे दे दो, मैं अपने जैसा बना दूंगा।"

परम्पराओं में परिष्कार

०

"वैसे तो स्थानकवासी परंपरा का जन्म क्रांति के जयघोष के साथ ही हुआ है, किंतु आज वह भी अनेक रूढ़ परंपराओं से घिर गई है। वैचारिक जड़ता और परंपरा का विवेक मुक्त आग्रह, इस समाज की तेजस्विता को निगल रहा है। निकट भविष्य में क्या आप कोई निर्णायक परिवर्तन या क्रांति की कल्पना करते हैं ?"—मैंने श्री अमर मुनि जी से पूछा।

'क्रांति' की बात के साथ ही जैसे वातावरण में उष्मा तरंगित हो उठी, श्री अमर मुनि जी ने अपने गर्म उत्तरीय को कंधे से नीचे उतारते हुए कहा—"क्रांति किसी घोषणा के साथ नहीं आती, वह धीरे-धीरे अलक्षित गति से बढ़ती चली आती है, आप देखते हैं, पहले से आज समाज की अनेक परंपराओं में परिष्कार हुआ है, अनेक रूढ़ियां टूटी हैं। एक बार हल्ला होता है, फिर धीरे धीरे समाज उसे पचा लेता है, क्रांति का विरोध करने वाले स्वयं उसका आचरण करने लगते हैं !" बात को अनुभव की कड़ी से जोड़ते हुए उन्होंने वताया "पहले हरिजन व मुसलमान के यहां कोई साधु भिक्षा के लिए नहीं जाता था। देहली में एक मुसलमान भाई थे जमील साहव। बहुत वर्षों से वे जैन धर्म की परंपरा के अनुसार शुद्ध आचार विचार रखते आ रहे थे। पर कोई साधु उनके यहां इसलिए भिक्षा नहीं ले रहा था, चूंकि वे जन्म से मुसलमान थे। वि० सं० २००४ में मैं जव देहली में था तो मैंने इस परंपरा को तोड़ा। उनके यहां भिक्षा ली। समाज में कुछ हल्ला हुआ, विरोध की आवाज उठीं, मैंने उनका तर्क संगत समाधान किया, और अपने विचारों पर डटा रहा। आखिर, कुछ दूर जाकर इसका परिणाम यह हुआ कि पूज्य श्री गणेशीलाल जी म० और व्याख्यान-

वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज आदि ने भी जमील भाई के घर भिक्षा ग्रहण की और यह परंपरा धीरे-धीरे आगे बढ़ चली।"

"परंपरा को बदलने और सुधारने में भी बहुत बड़े आत्मबल की अपेक्षा रहती है। यह ठीक है कि आप का आत्मबल प्रखर है, परिस्थितियों को नया मोड़ देने का साहस भी आप में है, पर समाज के वरिष्ठ मुनियों द्वारा समय-समय पर इस क्रांति को दबाने का प्रयत्न भी हुआ होगा ?"

"हां, यह तो मानव प्रकृति का एक तरह का नियम ही है। संस्कार एकदम टूट नहीं सकते। उन पर जब कोई झटका लगता है तो हलचल होती है। सन् अड़तालीस में जब गांधीजी का बलिदान हुआ, तो मेरे मन में एक संकल्प जगा—जातीयता एवं सांप्रदायिकता के घृणित आधार पर विश्व के एक महापुरुष को गोली मार दी गई। जातीयता के विष को दूर करने का प्रयत्न यदि अब भी नहीं हुआ तो फिर कब होगा। और मैंने एक संकल्प लिया "जहां शुद्ध भिक्षा मिलती हो, वहां जातीयता के आधार पर भिक्षा लेने के लिए कभी इन्कार नहीं करूंगा।" उसके बाद हमने कई जगह हरिजनों के यहाँ भिक्षा ग्रहण की। सादड़ी सम्मेलन में मुझ पर बहुत दबाव डाला गया कि, हरिजनों का आहार न लें। मैंने कहा—जब जैन धर्म जाति में विश्वास नहीं करता, तो फिर जातीयता के आधार पर भिक्षा का निषेध क्यों ? मैंने बहुत से प्रमाण दिए। आखिर यह कहा गया कि कम से कम अलवर से इधर जब आयें तब तो मत लिया करें।" मुझे बड़ी हँसी आई, मैंने कहा—आप कुछ भी कहें या करें हिन्दुस्तान-पाकिस्तान जैसा यह बंटवारा कम से कम मैं तो अपने सिद्धान्तों के साथ नहीं कर सकता। चूंकि मैंने कभी दो तरह से जीना नहीं सीखा, दो तरह की बात बोलनी नहीं सीखी।"

मैंने देखा—अमर मुनिजी की भाव प्रवण भाषा अद्वैत की परम व्याख्या बन रही है।—**जहा अन्तो तहा बाहिं**—की उक्ति उनमें चरितार्थ हो रही है। उनके जीवन में इतनी स्पष्टता है, इसीलिए निर्भयता है। वे जिस बात को उचित समझते हैं, उसे करने में सकुचाते नहीं, और जो कुछ करते हैं, उसे कभी छिपाने का प्रयत्न नहीं करते। अपनी इस अद्वैत-वृत्ति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया— देहली में श्री विजयेन्द्र सूरि के साथ हमारा अच्छा संपर्क रहा। वे जब-कभी हमारे स्थान पर आते तो हम उन्हें सादर अपने आसन पर बिठलाते, एक ही पाट पर हम लोग बैठकर बातचीत करते। सादड़ी सम्मेलन में भी जब कभी आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजय जी हमारे पास आते तो सभी वरिष्ठ मुनियों के सामने हम उन्हें अपने आसन पर बिठलाया करते थे। कुछ साथी मुनियों ने कहा भी—"यहां तो कम से कम रहने दो !" मैंने उनसे कहा—बस, यही नीति तो मेरे पास नहीं है। जो वहां है, वही यहां है—जो यहां है, वही वहां है। जो एकान्त में है वही प्रकट में है !"

"आपकी यह वृत्ति साधुता की दृष्टि से तो ठीक है, किन्तु सब जगह एक जैसा व्यवहार करना व्यवहार कुशलता तो नहीं कही जा सकती !"

बात यह है, कि आपकी यह कथित व्यवहार कुशलता ही तो मुझ में नहीं है। दर असल मैं इसे कुशलता नहीं, धूर्तता मानता हूँ, यह संतनीति नहीं, राजनीति है। मुझे जो बात उचित प्रतीत हुई और सिद्धान्ततः सही लगी उसे अनेक विरोधों के बावजूद मैं करता रहा हूं। देहली की एक सभा में जब मुझे ध्वनिवर्धक की अत्यंत उपयोगिता प्रतीत हुई तो मैंने उस पर चिन्तन किया, और अपने निर्णय के बाद मैंने सर्वप्रथम उसका प्रयोग भी किया। तब अनेक साथियों ने इसका विरोध किया, पर आज स्थिति क्या है, आप के समक्ष है। इसी प्रकार बीकानेर सम्मेलन में जाते हुए हम लोग जयपुर से पहले खंडेला पहुँचे। वहां पर खटीक जाति के अनेक परिवारों को हमने जैन धर्म में दीक्षित किया, उनके यहां भिक्षा ली। शुरू-शुरू में इस बात का भी हल्ला हुआ, परन्तु

प्रज्ञा की परख

भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रतिनिधि श्रमण केशीकुमार ने जब गणधर गौतम से पूछा—कि पार्श्वनाथ और महावीर के आचार की विभिन्नता क्यों है ? इस भिन्नता का सत्य तथ्य क्या है ? इस विरोधाभास में मूल सत्य का निर्णय कैसे करें ? तो गौतम ने सीधा-सा उत्तर दिया—**"पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छयं"** तत्व का विनिश्चिय प्रज्ञा से करना चाहिए। साधक की अपनी प्रज्ञा ही धर्म और सत्य की वास्तविक परख कर सकती है।

गौतम छद्मस्थ थे, किन्तु वे महावीर के प्रतिनिधि बनकर जब श्रमण केशी कुमार से 'प्रज्ञा' की परख की बात कहते हैं तो यह एक बहुत बड़ी बात है। शब्द-रूप में चली आ रही पार्श्वनाथ की श्रुत-परम्परा में अर्थ की नई उद्भावना का यह संकेत एक बहुत बड़ी क्रान्ति का संकेत है।

—श्री अमर भारती मार्च १९६९

मैंने अपना संकल्प नहीं छोड़ा। सम्मेलन में भी मैंने अनेक युवक मुनियों को खटीक जाति में जैन धर्म के प्रचार की प्रेरणा दी, विरोध से नहीं घबराने का साहस बंधाया, धीरे-धीरे परिणाम यह हुआ कि सैंकड़ो खटीक परिवारों के संस्कार बदल गये, वे जैन धर्म में दीक्षित हो गये। इसलिए मेरा विश्वास बन गया है, जो बात सिद्धान्ततः सही है, उसका अंतिम परिणाम सुन्दर ही आयेगा। विरोधों से डर कर उस स्थिति को छुपाने या अस्वीकारने का प्रयत्न करना निरी कायरता है। दो तरह का व्यवहार करना—मैं व्यवहार कुशलता नहीं मानता। साधु को भय क्या है ? जो यहां कुछ, वहां कुछ ! बाहर कुछ, भीतर कुछ ! यह तो दुहरा जीवन है, खंडित व्यक्तित्व है।"

"आपके निकट आने से यह अनुभव होता है कि सत्य की एक अटल आस्था बोल रही है, अपने निर्णय पर चल पड़ने का अद्‌भुत आत्मबल आपके भीतर रहा है। और इसीलिए—"एकला चलो' का संदेश आपके जीवन में चरितार्थ हुआ है। आपकी साहित्यिक नवीन उद्‌भावनाएं, विचार दृष्टि एवं रूढ़ परंपराओं में किए गये परिष्कार समाज को नया मोड़ देने वाले हैं, समाज के जीवन में नये युग का प्रवर्तन भी निश्चित हुआ है, पर क्या आपको लगता है कि आनेवाला युग इन विचारों एवं परिष्कारों का सम्पूर्ण प्रतिविम्ब ग्रहण कर सकेगा? परिवर्तन की गति कुछ तेज हो जायेगी? ऐसा भी हो सकता है, वह पीछे ही हट जाए?"

"मैं हमेशा आशावादी रहा हूं। विचार जागृति एवं परंपराओं के परिष्कार के सम्बन्ध में मुझे बहुत संघर्ष झेलने पड़े हैं, बहुत आलोचनाएं, निन्दा एवं गालियां भी सुननी पड़ी हैं, किन्तु फिर भी मैं कभी निराश नहीं हुआ, और न अपने लक्ष्य से कभी विचलित ही हुआ। मैं मानव सत्ता के विकास में विश्वास रखता हूं। समय कभी पीछे लौटता नहीं। वह आगे से आगे बढ़ता रहा है, परंपराएं हमेशा बदलती रही हैं। युगानुसार नया-नया रूप ग्रहण करती आई हैं। यह बात और है कि सुधार की प्रक्रिया कभी तेज हो जाती है, कभी कुछ मंद पड़ जाती है। साधु वर्ग में आज जो परिवर्तन आए हैं, उनके कुछ व्यवहार जिस तेजी से बदले हैं—इसका अनुमान आप पिछले दो दशक की उनकी पुरानी तस्वीर को आज की नई तस्वीर के सामने रखकर लगा सकते हैं। बड़े-बड़े परिवर्तन आये हैं, हां उन परिवर्तनों की स्पष्ट स्वीकृति देने का साहस अभी कम है। मैं यही चाहता हूं कि परिवर्तन को स्वीकार करने का साहस उनमें जग सके। बीसवीं शताब्दी में रहकर वे अठारहवीं शताब्दी में जीने का नाटक न करें। वस्तुस्थिति को झुठलाया नहीं जा सकता। जो झुठलाने का प्रयत्न करते हैं, वे स्वयं को, और स्वयं के अनुगामी वर्ग को अंधकार में ढकेलने का प्रयत्न करते हैं। जैन-दर्शन की मूल चिरन्तन आत्मा को सुरक्षित रखिए, और बाहर का चोला जब जितना बदलना आवश्यक हो उसे साहस के साथ बदलिए। वृक्ष के पुराने फूल ही नहीं, नये फूल भी महकते हैं।"

"कभी-कभी कुछ लोग दबी जबान से यह कहते हैं कि—कवि जी का चिंतन तो उच्चकोटि का है, उनका आत्मसाहस भी अपराजेय है, पर कभी-कभी क्रांति के नाम पर वे दुस्साहसिक कदम भी उठा लेते हैं, जिसे समाज पचा नहीं सकता।"—इस संदर्भ में आपने कभी कुछ कहा है?"—मैंने पूछा,

गंभीर मुद्रा में बैठे श्री अमर मुनिजी मेरी बात सुनकर सहसा मुस्करा उठे, और उपनेत्र को हाथ में लेकर बोले—हां, ठीक ही तो है, जो भोजन गरिष्ठ

होता है, लोग उसे दुष्पाच्य कहते हैं, जिन क्रांतिकारी कदमों का परंपराओं से जीर्ण मानस अनुगमन नहीं कर सकता, उसके लिए वे दुस्साहिक कदम हो सकते हैं। पर वैसे मैंने क्रांति के नाम पर कभी भी अपने विवेक को पीछे नहीं जाने दिया। मेरे समक्ष जब भी कभी कुछ नवीन करने का प्रसंग आया, पहले मैंने अपने विवेक से उसका निर्णय किया है, परिस्थिति को भी समझा है। चिंतन की भूमिका स्पष्ट होने के बाद ही मैंने कुछ कदम उठाया है, और मुझे प्रसन्नता है कि वर्तमान ने जहां मेरे कुछ क्रांतिकारी-कदमों का विरोध किया, भविष्य ने उनका भारी स्वागत किया है। एक छोटी-सी घटना है मेरे विद्यार्थी-जीवन की। जब हम लोग नारनौल में थे। वहां का सनातन धर्मावलंबी मित्तल परिवार उस समय भी एक अच्छा शिक्षित एवं सम्पन्न परिवार था। आज तो वह हरियाने का एक सुप्रद्धि परिवार है ही। उस परिवार के एक सदस्य युवक पन्नालाल जी मित्तल संस्कृत का अध्ययन करने को बहुत उत्सुक थे। परन्तु पंडितों ने उन्हें पढ़ाने से कुछ आनाकानी की चूंकि वे अग्रवाल वैश्य थे। उनकी प्रबल जिज्ञासा देखकर मैंने उन्हें संस्कृत पढ़ाना शुरु किया। अन्य अनेक ब्राह्मण विद्यार्थी भी मेरे पास आते। वैसे गृहस्थ को व्याकरण आदि पढ़ाना वर्जित था। पर मैं इस विषय में प्रारम्भ से ही यह मानता आया हूं कि साधुओं को 'ज्ञान दान' करना चाहिए। संस्कृत-प्राकृत तो हमारी संस्कृति का प्रवेश द्वार है, जब हम हीं, जो संस्कृति के ठेकेदार हैं, इस द्वार को उन्मुक्त नहीं करेंगे तो फिर संस्कृति की रक्षा का नारा लगाना व्यर्थ ही होगा। मैंने पन्नालाल जी मित्तल व कुछ अन्य विद्यार्थियों को संस्कृत पढ़ाई। इसका परिणाम यह आया कि वहां का सम्पन्न व शिक्षित मित्तल परिवार व अन्य अनेक शिक्षित व्यक्ति जैन-धर्म के अनुरागी बन गये। आज भी उस परिवार के अनेक व्यक्ति उच्च पदों पर हैं और वे जैन-धर्म के प्रति हार्दिक अनुराग रखते हैं। जैन-धर्म के कार्य-क्रमों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। उस समय के साधारण ब्राह्मण विद्यार्थी, और आज के ब्राह्मण विद्वान्, जिनको मैंने शास्त्री आदि परीक्षाओं का अध्ययन कराया, आज जैन-धर्म के प्रति हार्दिक आदर भाव रखते हैं। आपस की कटुता यों ही दूर नहीं होती। उसके लिए समय पर कुछ करना होता है।"

श्री अमर मुनि जी अपनी स्मृतियों के वैभव को जैसे बिखेर रहे थे, आगे बोले—"वैसा ही प्रसंग निशीथ भाष्य के संपादन के समय भी आया।"

—"हां, प्रारम्भ में उसकी भी काफी चर्चा हुई थी। कुछ तथा-कथित संस्कृतिरक्षकों ने तो उसे 'संस्कृति नाशक' ही करार दे दिया था। उसके संपादन एवं प्रकाशन का संकल्प आपके मन में कैसे जगा ?"—मैंने पूछा।

आगमों की टीकाएं व भाष्य आदि पढ़ते समय अनेक स्थलों पर निशीथ चूर्णि, व निशीथ भाष्य के अवतरण एवं संदर्भ आदि देखने को मिलते थे, पर वह मूल ग्रंथ कहीं देखने को उपलब्ध नहीं हुआ। जब हमने श्रमण संघ के अनेक

वरिष्ठ मुनियों के साथ जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास किया, तो उससे पूर्व जालोर गये थे। वहां सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुनि श्री कल्याण विजय जी से परिचय हुआ, बहुत ही मधुर, स्नेहसिक्त। उनके भण्डार में सभाष्य निशीथ चूर्णि थी। मुझे वह ग्रंथ देखने की बड़ी उत्सुकता थी। जितने दिन हम जालोर रहे, निरन्तर उसी का अनुशीलन होता रहा, सैकड़ों नोट्स भी उसके लिए। चातुर्मास में जब आचार-विचार आदि विषयों पर चर्चाएं चली, तो मैने उस ग्रंथ के अनेक महत्वपूर्ण उद्धरण वहां प्रस्तुत किए। तब तत्रस्थ आगमविज्ञ मुनियों में यह जिज्ञासा जगी कि—यह ग्रंथ कहां है, कैसे उपलब्ध हो सकता है? आखिर जालौर से वह ग्रन्थ मंगाया गया, और उसके आधार से अनेक महत्वपूर्ण निर्णय किए गए। तभी से मेरे मन में यह संकल्प उठा, जिस महाग्रंथ में इतनी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सामग्री भरी है, वह संपादित होकर प्रकाश में आये तो संभव है इस दिशा में नये चिन्तन का द्वार खुले। संपादन बड़ा ही श्रम-साध्य था, फिर भी संपादन किया गया और वह सन्मति ज्ञान पीठ से प्रकाशित हुआ।

प्रारम्भ में कुछ प्रतिबद्ध मानस बौखलाए भी, अनेक प्रकार की आलोचनाएं की गईं, पर आपको मालूम ही है विद्वज्जगत् में उस ग्रंथ का कितना सन्मान हुआ है। अनेक शोध विद्यार्थी उस ग्रंथ के आधार पर भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा पर शोध कर रहे हैं। जर्मन एवं अमेरिका के विश्व-विद्यालयों में उसकी कितनी तीव्र मांग है—यह भी आप के यहां आये हुए पत्रों से स्पष्ट है, वाराणसी में सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा० वासुदेव शरण अग्रवाल से हमारी चर्चा हुई, तो उन्होंने कहा—"आपका यह कार्य साहित्यिक क्षेत्र में बहुत ही उच्चकोटि का है। इस ग्रन्थ के आधार पर मैं सैकड़ों विद्यार्थियों को शोध कार्य करा सकता हूं!"

"हां, निशीथ भाष्य के प्रकाशन से जैन संस्कृति एवं साहित्य के अनुसंधान में निश्चय ही एक नये युग का प्रवर्तन हुआ है। इस युग प्रवर्तन में आपके गंभीर श्रुतबल के साथ-साथ आत्मबल का निर्मल प्रतिबिम्ब भी सदा झलकता रहेगा। आपकी इन जीवन-घटनाओं को सुनकर मेरा तो विश्वास और भी दृढ़-दृढ़तर हो गया है कि आपने अपने जीवन में जो भी सत्संकल्प लिए उन्हें पूर्ण करने में किसी भी प्रतिरोधक शक्ति से हार नहीं खाई। क्या ऐसा भी हुआ है कि आपके संकल्प महत्वपूर्ण होते हुए भी उन्हें पूर्ण करने में कभी-कभी आप अकेले ही पड़ गए हैं?"

"ऐसा तो होता ही रहा है।"—श्री अमर मुनिजी ने बेफिक्री के लहजे में कहा, और फिर अपने उत्तरीय को कंधे पर रखते हुए बोले—"संगठन एवं एकता की दिशा में भी मेरे प्रयत्न कुछ कम नहीं रहे हैं। इस पथ पर प्रारम्भ में तो बहुत बार अकेला ही चलता रहा। फिर कुछ साथी मिले, सहयोग मिला और सहयात्रा शुरू हुई। सहयात्रा में कितनी ही बार अकेले पड़ जाने के प्रसंग आए। जाने दीजिए पुरानी बातें। कुछ बातों में तो आज भी मैं अकेला ही हूं।

"कैसे ? जिज्ञासा ने भीतर से एक उछाल लगाई, और मैं कुछ अधिक निकट आकर अपनी कलम संभालकर बैठ गया।"

वहुत वर्षों पहले की बात है। आगरा में उन दिनों बड़ी सांप्रदायिक खींचातानी चल रही थी। श्वेताम्बरों का दिगम्बरों से तो जैसे कोई सबन्ध ही नहीं था, पर मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी भी परस्पर कटे-कटे एकदम अलग से थे। किसी के सांस्कृतिक समारोहों में कोई परंपरावाला जाता नहीं था। संघर्ष इतना प्रबल था कि एकबार यहां श्री विजयेन्द्र सूरि आये। हमारा उनका साहित्यिक संपर्क था। उनके यहां दीक्षा थी और उसमें सम्मिलित होने का हमें निमन्त्रण मिला। समाज का कोई व्यक्ति जाने को तैयार नहीं था, यहां तक कि हमारे साथ विराजमान शतावधानी रत्नचन्द्रजी महाराज भी समाज का मानस देखकर, जाने से इन्कार हो गए। मैं देख रहा था, संप्रदायों की खींचातानी और द्वन्द्व को मिटाने के ऐसे ही कुछ प्रसंग आते हैं, जिन पर मधुरता का वातावरण बनाया जा सकता है, यदि इनका उपयोग नहीं किया गया तो यह खींचातानी कभी मिटने की नहीं, और महावीर के अनुयायी हिन्दू-मुसलिम की भांति अलग-अलग बटे रहेंगे। मैंने घोषणा की "मैं उनके समारोह में सम्मिलित होऊंगा, जिसे चलना हो चलें !" आखिर प्रसंग ऐसा आया कि मैं और मेरे साथी अमोलकचन्दजी दो ही हम वहां गए, कोई श्रावक भी हमारे साथ उस दिन नहीं हुआ। पर उस साहस का मधुर परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे पारस्परिक वैमनस्य का विष धुल गया, आज एक दूसरे के समारोहों में सम्मिलित होने के निमंत्रण आते हैं और लोग जाते भी हैं।"

श्रमण संघ के संगठन को सुदृढ़ करने के लिए भी मैंने कई ऐसे विचार रखे, जिन पर यदि अमल किया जाता तो संगठन का नक्शा आज कुछ और होता। जो विखराव और वैमनस्य की वृत्ति आज बढ़ रही है वह कब की समाप्त होकर संगठन में एकसूत्रता आ जाती। उन आदर्शों पर चलने का मैंने स्वयं संकल्प किया था, और मैं चल भी रहा हूं, पर मैं देखता हूं कुछ संकल्पों में मैं आज भी अकेला हूं। सादड़ी सम्मेलन और पश्चात् भीनासर सम्मेलन में संगठन को प्राणवान वनाने के लिए मैंने एक प्रस्ताव रखा था कि पूरे स्थानकवासी समाज में एक आचार्य की शिष्य परंपरा होनी चाहिए। कोई भी मुनिराज अपना अलग-अलग शिष्य न वनाएं, जो भी शिष्य वनें वे सव आचार्य के नाम से वनें।" इस प्रस्ताव पर वहुत चर्चाएं हुई, किन्तु आखिर रेवड़ी का नाम गुल सप्पा। शिष्य मोह का त्याग करने कोई भी तैयार नहीं हुआ। आखिर मैंने विचार किया कि—"अपने प्रस्ताव पर मैं तो कुछ आचरण करूं, और इसके फल स्वरूप मैंने तव संकल्प किया—अव से मैं अपना कोई भी शिष्य नहीं वनाऊंगा।" मुझे लगता है इस संकल्प पथ पर आज भी मैं अकेला हूं, यदि साथियों ने साथ दिया होता तो श्रमण संघ के संगठन में नया जीवन आ जाता।"

"यह तो समाज का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि ऐसा तेजस्वी नेतृत्व

एवं कुशल मार्ग दर्शन मिलते हुए भी उसकी जड़ता नहीं टूटी, उसके चरणों में गति नहीं आई, वर्ना श्रमण संघ के संगठन को प्राणवान बनाने के लिए आपने जो समय; एवं शक्ति का बलिदान किया है, उतना साहित्य निर्माण एवं आगम संपादन आदि दिशाओं में किया होता तो""?"

'परिणाम कुछ भी नहीं आया, ऐसा तो मैं नहीं मानता। पर हां यह शक्ति अन्य निर्माण कार्यों में लगती तो कुछ अच्छे परिणाम आते""। वैसे इन दिशाओं में भी मेरा प्रयत्न सतत चालू रहा है। जैन-संप्रदायों तथा उनके मान्य विद्वानों के साथ मैंने बराबर सम्पर्क रखा है, और प्रयत्न भी किया है कि आगम साहित्य के अनुसंधान, अनुशीलन, संपादन आदि में समस्त जैन आम्नायों की एक-रूपता आये। आपको स्मरण होगा जब सन् ७६ में आचार्य तुलसी जी एवं मुनि नथमल जी आदि आगरा आये थे तो लोहामंडी स्थानक में ही हमारा प्रथम मिलन इतना मधुर एवं ऐतिहासिक रहा कि उसकी मधुरता आज भी दोनों ओर के व्यवहारों में झलक रही है। स्थानक में ही उन्होंने आहार पानी किया, एक साथ बैठे, खुलकर विचार चर्चा हुई और फिर अचल भवन में साथ ही प्रवचन हुआ। आचार्य श्री जी ने अपने प्रवचन में कहा कि तेरापंथ के दो सौ वर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर है जब हम दो परंपराओं के प्रतिनिधि इतने आत्मीय भाव से मिले हैं, निकट बैठे हैं। हां तो, उस प्रसंग पर आगम-साहित्य-संपादन के सम्बन्ध में काफी विस्तृत चर्चाएं चली। वैचारिक एकता की दृष्टि से मैंने यह सुझाया था—'कम से कम श्वेताम्बर संप्रदायों के आगमों का एक सर्व-मान्य संस्करण तैयार होना चाहिए। पाठों में एकवाक्यता रहे, और जहां अर्थ भेद हो, वहां तीनों संप्रदायों की दृष्टि का उल्लेख कर दिया जाए।' आचार्यश्री जी इस पर सहमत हो गए, कहा—आप जब भी कहेंगे हमारा प्रतिनिधि आ जायेगा। मैंने हंसकर कहा– आप तो अपनी दो सौ वर्ष की एकता का लाभ ले लेते हैं, पर यहां तो समस्या है। आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजय जी भी मेरी इस योजना पर बहुत पहले से ही सहमत थे और उन्होंने अहमदाबाद आने का आग्रह भी किया। पर विकट समस्या तो यह है कि स्थानकवासी संप्रदाय के अधिकांश परं-परावादी मुनिजन इस पर एकमत होना तो दूर, इन विचारों का मूलोच्छेद करने पर ही तुल जाते हैं।"

"क्या आप का विश्वास है कि यह योजना निकट भविष्य में कुछ मूर्तरूप ले सकेगी ?" मैंने पूछा !

"अभी तो आसार कम हैं"—श्री अमर मुनि जी चिंतन में गहरे उतरते गये।—"हां, वातावरण में परिवर्तन तो आ रहा है, संप्रदायों की मानसिक दूरी कम हुई है, वैचारिक आग्रह भी घटते जा रहे हैं, पर श्रमण वर्ग में अभी तक वह चेतना नहीं आई है, कि कल आने वाले युग चरणों की आहट आज ही सुनकर जागृत हो जाये। जब तक परंपरा का अन्ध मोह एवं वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं टूटती, आगमों के संबन्ध में बंधी बंधाई धारणाएं नहीं बदलतीं, तब तक कुछ 'नया निर्माण' हो सके, ऐसा विश्वास नहीं होता !"

"आगमों के सम्वन्ध में आपने जो नया दृष्टि कोण दिया है, जिस विचार क्रांति का उद्घोष किया है, उसकी उपलब्धियों से आपके इस विश्वास में दृढ़ता आई है या कुछ कमी ?"—श्री अमर भारती में प्रकाशित विचार प्रतिध्वनियों को सामने रखते हुए मैंने प्रश्न किया।

"आप अतीत से वर्तमान में आगए हैं, मैं भी जरा अपने को समेट लूं—" एक मधुर हास्य श्री अमर मुनि जी की तेजस्वी आंखों में चमक रहा था 'हां, आगमों के सम्वन्ध में मेरा दृष्टि कोण नया तो नहीं है। बहुत वर्षों से यह मंथन चल रहा है, मैंने आपको बताया कि पूज्य जवाहर लाल जी महाराज से भी मैंने एतद्विषयक अनेक जिज्ञासाएं की थीं—तव तो मैं विद्यार्थी था। समय-समय पर अनेक आगमज्ञ विद्वानों से भी इस विषय पर चर्चाएं होती रहीं हैं। जोधपुर संयुक्त वर्षावास में तो आगमों के कुछ तथाकथित वर्णनों पर काफी विस्तृत चर्चाएं हुई थी, और तब उपाचार्य गणेशीलाल जी महाराज, बहुश्रुत समर्थमल जी महाराज आदि अनेक मुनिवर इस विषय पर सहमत हुए थे कि आगमों के कुछ तथाकथित वर्णन भगवद् वाणी नहीं हैं। जैसे—चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र का मांसाहार प्रसंग। अंगों के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों को परतः प्रमाण मान लिया था, जिसका स्पष्ट अर्थ है चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि भगवद् भाषित नहीं, आचार्य-रचित है। फिर मेरा दृष्टि कोण नया तो नहीं कहा जा सकता। हां तव वे विचार जनता के समक्ष नहीं आये थे, और आज मैंने अपने विचार खुलकर नये परिवेश में व्यक्त कर दिए हैं! यह स्पष्टता वुरी है ?" और श्री अमर मुनि जी मुक्तहास के साथ मेरी ओर देखने लगे।

विषय को आगे स्पर्श करते हुए उन्होंने कहा—"इन विचारों को क्रांति के रूप में आगे वढ़ाने का मेरा कोई संकल्प नहीं था, और नहीं है। न कोई मैं इसे आन्दोलन का रूप देना चाहता हूं। यह तो लहर है, जिसको छू जायेगी, और जिसमें चैतन्य होगा वह जग पड़ेगा। लेकिन यह आवश्यक है कि वैचारिक चेतना आनी चाहिए। जवतक अतीत की शब्दरचना के प्रति श्रद्धा का व्यामोह नहीं टूटता, तव तक शास्त्र के नाम पर जनता को चाहे जिस ओर मोड़ा जा सकता है, और जो चाहे करवाया जा सकता है। इससे समाज की शक्ति का गलत उपयोग हो रहा है। इसलिए आवश्यक यह है कि समाज में विवेक जागृत हो, चिन्तन करने की आदत वने। भगवान की कही वात पर तर्क करना ही मिथ्यात्व है—जहां यह विश्वास घर किए वैठा है, वहां सत्यासत्य, उचित अनुचित का निर्णय कौन करेगा ? मैं सिर्फ यही चाहता हूं कि हमारे अन्दर निर्णायक वुद्धि जगे, हम शास्त्र एवं गुरु के नाम पर अन्धभाव से नहीं चलें किंतु औचित्य के आधार पर सोचें। और यह तभी हो सकता है जव शास्त्रों के प्रति हमारी रूढ़ धारणाएं

टूटेंगी। मुझे प्रसन्नता है मेरे इन विचारों का प्रबुद्ध वर्ग ने स्वागत किया! जो प्रतिध्वनियां आई हैं, उससे एक बात और स्पष्ट होती है कि अब विचार क्रांति का सूत्रधार श्रमण वर्ग नहीं, किंतु श्रावक वर्ग होगा, और इतिहास एक बार फिर दुहराया जायेगा। श्रमण वर्ग अपने सांप्रदायिक व्यामोह, परंपरा के अहंकार एवं जन श्रद्धा के प्रलोभन से आक्रांत हो रहा है, इसलिए कुछ वैचारिक चेतना व्यक्त होते हुए भी दब जाती है, या दबा दी जाती है। किंतु श्रावक वर्ग में प्रबुद्धता आ रही है, और उस पर मुझे तो विश्वास है, उसमें छुपे स्फुलिंगों में मुझे नई ज्योति के दर्शन हो रहे हैं।" श्री अमर मुनि जी ने अपने उज्ज्वल अतीत को वर्तमान के रास्ते भविष्य के स्वर्णिम द्वार तक पहुंचाते हुए मेरे लिखे गए नोट्स की ओर देखा और मुक्त हंसी के साथ बोले—"क्रांति को सिर्फ पत्रों में रखने में मेरा विश्वास नहीं है, वह तो जीवन में आनी चाहिए और उसके लिए हर बलिदान के लिए तैयार रहना चाहिए।"

मैंने अनुभव किया—उनके भीतर सत्य की आस्था जितनी प्रबल है, कर्म निष्ठा उतनी ही स्फूर्त एवं तेजोमय है। उनकी समर्थ बहुमुखी प्रतिभा ने नये चिन्तन का द्वार खोला है, संस्कृति एवं साहित्य की नई विधाओं की सर्जना की है, और परंपराओं के परिष्कार के साथ एक नये युग का प्रवर्तन किया है। हृदय की असीम श्रद्धा उनके प्रति उमड़ पड़ी और मैंने उस युग प्रवर्तक व्यक्तित्व को सादर नमस्काराञ्जलि अर्पित की। ●

●●

श्रेष्ठता का मापदण्ड

भगवान महावीर से एक बार प्रश्न पूछा गया—"गृहस्थ जीवन श्रेष्ठ है या साधु-जीवन?" भगवान ने कहा—"यह जीवन का क्षेत्र है, यहां श्रेष्ठता और निम्नता का नाप-तौल आत्म-परिणति पर आधारित है। किसी-किसी गृहस्थ का जीवन सन्त जीवन से भी श्रेष्ठ होता है, यदि वह अपने कर्त्तव्य के पथ पर पूरी ईमानदारी के साथ चल रहा है। जीवन की धारा जब प्रवहमान होती है, तो उसे कौन रोक सकता है। कौन छोटा है और कौन बड़ा? इसकी नाप-तौल साधु और गृहस्थ के भेद-भाव से नहीं की जा सकती। साधु और श्रावक, जो भी अपने दायित्वों को भली प्रकार से निभा रहा है, जिन्दगी के मोर्चे पर सावधानी के साथ खड़ा हुआ है, वही श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है।" यह अनेकान्त दृष्टि है। यहां वेष को महत्ता नहीं दी जाती, बाह्य-जीवन को नहीं देखा जाता, किन्तु अन्तरात्मा के विचारों को टटोला जाता है।

—श्री अमर भारती, मई १९६५

●●

० दिनेशनंदिनी, डालमिया

भारतीय परंपरा का प्रतिनिधि संत

वर्षों से सुनी हुई प्रशंसा साकार हो गई, जब मैंने १९५२ के ग्रीष्म में कुतुब की ओर स्थित जैनियों के किसी एकान्त स्थान में कविजी महाराज से साक्षात्कार किया। प्राचीन ऋषि-मुनियों के तपःपूत शरीर-सी उनकी खुरदरी गाढ़ रोमों से भरी हुई देह, साखू के पेड़-सा लम्बा कद, वृषभ-से स्कन्ध, विशाल वक्षस्थल, प्रशस्त भाल पर खचित त्रिपुण्ड-सी तीन गदरी रेखाएँ और तपस्वी वाल्मिकी से निःशेष प्रकाश से परिपूर्ण चमकीले दो नयन, जो देखने से अधिक बोलने लगे थे। साथ गई सखि ने मेरा सांकेतिक परिचय दिया, वे तुरन्त समझ गए, और निस्पन्द अङ्गोंवाली पार्श्वनाथ-सी प्रस्तर प्रतिमा की तरह काष्ठ-पीठ पर सीधे बैठे हुए ही उन्होंने हाथ उठाकर हमारी वन्दना के उत्तर में आशीर्वाद दिया।

> ....मैंने अपनी सहेली से कहा—यह संत उस भारतीय दार्शनिक की परंपरा में है, जिसने विश्व-विजेता, सिकंदर से कुछ याचना करने के वजाय दूर हट जाने के लिए कहा था....

चिरपरिचित की तरह विना किसी पूर्व भूमिका के ही उन्होंने मुझसे बोलना शुरू किया। मेरी लेखन-प्रगति के बारे में पूछा। जीवन की प्रवृत्तियाँ जानने की जिज्ञासा की, और अन्त में जैनदर्शन को मैंने कुछ क्या समझा है? इसके बारे में सीधा-सा प्रश्न किया। मैंने कहा कि "जैन धर्म में दीक्षित आचार्यों और साध्वियों की तपोनिष्ठा और बाईस परीषहों ने मुझे सदा ही आकर्षित किया है। किन्तु सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पाँच स्थूल और मुख्य तत्त्वों के अतिरिक्त मुझे आज तक कुछ भी समझ में नहीं आया है, और सच तो यह है कि इस पथ को मैंने सिद्धान्तों से अधिक रूढ़ियों से ग्रस्त पाया है। आज के युग में जब मानव समय के साथ दौड़ की प्रतियोगिता में अपने आप को समर्थ बना रहा है, तब आप कछुए की चाल से चलकर मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक कब तक बन सकेंगे?" बड़े ध्यान से स्थित-प्रज्ञ की तरह सुदृढ़, विना

किसी भाव को मुख-मण्डल पर व्यक्त किए, वह मेरी बात को सुनते रहे और फिर एक सधी हुई अनासक्त-वाणी में उन्होंने कहा—

"आपने साधुओं के कठोर जीवन को देखकर जो अनुमान लगाया है, वह सत्य के समीप होते हुए भी रहस्य से दूर है। जब आप जैन धर्म की गुह्यता और बारीकियों में प्रवेश करेंगी, तो आपको अनुभव होगा कि सब महान् धर्मों की तरह यह धर्म भी अपने अनुयायियों को बांधने से अधिक मुक्त ही करता है।"

मैं जानती थी कि कवि जी ने षट्दर्शनों का ही नहीं, किन्तु विश्व के समस्त शास्त्रों का समन्वय की दृष्टि से साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है, और सच्चे जिज्ञासुओं, समीक्षकों, और थोथे तर्क-वादियों को सटीक समझा देने को उनकी शक्ति पर्याप्त है। अतः मैंने सविनय निवेदन किया कि–धर्म की अन्तरङ्ग शिराओं को पहिचान लेने की मेरी रुचि है, और मैं जब भी अवसर मिलेगा, तब आपसे कुछ अपनी शंकाओं का समाधान करना चाहूँगी। वह मुस्कुराते हुए और मधुर-स्वर में कहने लगे—

"मेरी योग्यता के अनुसार मैं अवश्य आपको धर्म के इस उदात्त मार्ग की थोड़ी-सी जानकारी दूँगा।"

उनके कथानानुसार जैन धर्म उतना ही प्राचीन है, जितना मानव। उसके तत्त्व गूढ़ होते हुए भी स्पष्ट हैं और उसकी आधार-शिला सत्य पर है। जैनधर्म किसी भी धर्म की प्रतियोगिता में पीछे नहीं रह सकता। इसके मानने वालों की संख्या कम होने का कारण धर्म नहीं, किन्तु महावीर के बाद होने वाले आचार्यों और उनकी फिरके बन्दियाँ रही हैं। उनकी उलझनों को सुलटाने और सुलझाने में ही उनकी समग्र शक्ति लगी रही। दूसरा कारण आप्त-वाक्यों के गलत अर्थ लगाना, जिसने अनेक संघर्षों को जन्म दिया। अधिक गहराई से कुरेदने का समय नहीं था। क्योंकि लम्बी-लम्बी फैलती छायाएँ संध्या के शीघ्र आगमन की सूचना दे रही थीं और मुनिश्री को आहार के लिए उठना आवश्यक था, जो कि शिष्टतावश उन्होंने हमें इसका कोई संकेत नहीं दिया था। एक संत के चहरे पर उस व्यग्रता के भाव परिलक्षित हो रहे थे। मुझे भी अपने सत्संग का प्रलोभन था। मैंने ढलती धूप को देखा था और कुछ देर बैठी ही रही—पर बातचीत का सिलसिला टूट चुका था। मैंने देखा, कि महाराज जितनी दिलचस्पी दार्शनिक बातों में लेते हैं, उतनी ही अपने भक्तों की छोटी-मोटी नैतिक समस्याओं को सुलझाने में भी लेते हैं। वे आकाश में विचरण करते हैं, किन्तु धरती की ओर से बेखबर नहीं रहते। स्वाध्याय और तप की शोभा से दीपित जैन शिरोमणि उपाध्याय श्री की इस विशेषता से मैं बहुत प्रभावित हुई। उनके जीवन का प्रत्येक तंतु प्रेम से बना था, फिर भी वे अनासक्ति-योग के गिरि-शिखर पर स्थित थे। उन्होंने उठकर हमें मंगल-पाठ सुनाया—दीप्तमुख पर मुस्कान थी, रोम-रोम से मंगल ध्वनि फूट रही थी, जो समाप्त होने पर भी हमारे कर्णों में गूंजती रही

और हमने अनिर्वचनीय एवं स्वर्गीय शान्ति का भूतल पर अनुभव किया। तब उन्होंने वही सधा हुआ हाथ उठाया।

हमने वन्दना में मस्तक झुकाए और उनके कदम अन्दर जाने को मुड़े। मैं देखती ही रही, किन्तु उन्होंने मुड़कर नहीं देखा। जैसे किसी से कोई वास्ता ही न हो। मूर्तिमंत अनासक्ति का ऐसा योग मैंने बहुत कम देखा था। उनका दया-शील हृदय भूत मात्र के प्रति स्नेह से ओत-प्रोत था। किन्तु समस्त संसारिक रोगों को उन्होंने अनासक्ति के अहिंसात्मक शस्त्र से काट दिया है, क्योंकि वे सच्चे अर्थ में एक सच्चे साधक हैं—अपनी ज्ञान-साधना में संलीन और एकाग्र।

लौटते हुए मैंने अपनी सहेली से कहा, यह संत उस भारतीय दार्शनिक की परम्परा में हैं, जिसने विश्व-विजेता सिकन्दर से कुछ याचना करने के बजाय दूर हट जाने के लिए कहा था। क्योंकि वह उस पर पड़ने वाली धूप को रोक कर खड़ा था। कविश्री जी महाराज अपने सिद्धान्तों और विचारों में एक दम अडोल और अचल हैं और आत्म-संतुलित भी। वस्तुतः इस प्रकार के मुनि-पुंगवों पर ही भारतीय संस्कृति, दर्शन और धर्म आधारित हैं। ऐसे अनासक्त योगी के चरणों में उनके ५० वें पावन दीक्षा-पर्व पर मेरा सादर अभिवन्दन और अभिनन्दन है। ●

सत्ता तुम्हारे हाथ में है

भारत का कोई भी अध्यात्मवादी दर्शन यह नहीं मानता कि कर्म या माया, प्रकृति या अविद्या तुम्हारे से अधिक बलवान है। सभी दर्शनों ने आत्मा, चेतन या पुरुष को ही बलवान माना है। जैन दर्शन को भी ऊपरी तौर पर देखने वाले भले ही यह कह दें कि जैन-दर्शन के अनुसार कर्म बलवान हैं, आत्मा कर्मों के हाथ का खिलौना मात्र है। परन्तु आगमों की गहराई में जाने पर यह स्पष्ट पता चल जाता है कि कर्मों को बलवान बताते-बताते आखिर में उनकी चोटी आत्मा के ही हाथ में सौंप दी गई है। कर्म का कर्तृत्व, भोक्तृत्व और हर्तृत्व तीनों ही आत्मा के अधीन हैं। बन्ध भी वही करता है तो मोक्ष भी वही करता है।

—श्री अमर भारती, अक्टूबर १९६९

★ वं

★ द

★ ना

★ ना अभिवंदना

० श्री शारदाचरण दीक्षित
(आचार्य, कवि गणपति, तर्क मीमांसक)

अरिहन्तारमपारं पारम्पर्यसमृद्धसिद्धसंसारम् ।
जिन साधु केवलिनं वलिनं वन्दे शुभस्य कर्त्तारम् ॥१॥

निर्ग्रन्थोऽपि सग्रन्थग्रन्थग्रन्थिगुहाशयप्रवक्ता च ।
निस्तन्द्रोऽमरचन्द्रः जयतु कवीन्द्रमुनीन्द्रसाधुसिद्धीन्द्रः ॥२॥

आस्याद्यस्य प्रकृतिसरसा सद्गुणा साधुहृद्या ।
सालङ्कार - ध्वनिपदगता कामिनीव प्रसन्ना ॥
दैवीवाणी श्रवणमनसो स्तर्पणीलब्धजन्मा ।
तुल्यं तोषं परिषदि विदां विस्मयञ्च प्रतेने ॥३॥

तत्वं सूत्रप्रतिपदमदा - द्योनिषीथाख्यभाष्ये ।
तोये स्वच्छे प्रसरति यथा तैलबिन्दुः प्रकीर्णः ॥
लेभे स्वान्ते प्रकृतिविमले विस्तृतिं तद्धि तद्वत् ।
आधारस्योत्तमगुणवशाद्वस्तुवृद्धि वृणीते ॥४॥

तस्य ज्योत्स्नावलिधवलया सर्वतः कीर्णकीर्त्या ।
दूत्याहूता इव वहुदिशामन्तरेभ्यः सुशिष्याः ॥
नानादेश्याः प्रतिदिनमुपेत्यास्यपादोपकण्ठे ।
भृङ्गाः पुष्पासवमिवनवं तत्वमभ्येत्य हृष्टाः ॥५॥

विद्योत्कर्षे जिनमतिजगद्ज्ञापने ग्रन्थबन्धे ।
व्याख्याकृत्ये ललितकविता सन्निबन्धेऽतिवन्द्ये ॥
स्याद्वादानां वचनवचने तुल्यरूपास्य शक्तिः ।
सिद्धालोकान्तर - विजयिनी पप्रथेकाप्यपूर्वा ॥६॥

तर्केऽप्यर्कप्रतिभखर धी — रेषविद्यावदातो ।
नानाग्रन्थानमल सरल — व्याख्यया व्याचचक्षे ॥
अन्यग्रन्थानपि स विदधे तर्कमूलान् स्वतन्त्रान् ।
यत्रामुष्य प्रकटमभवत्तर्कविद्या — प्रभुत्वम् ॥७॥

सद्भ्रातृत्वं भजति भुवने योऽखिलेशोमुनीशः ।
शास्त्रार्थानां मननसमये सोऽपि सर्वस्वविज्ञः ॥
शान्तोदान्तः सरससरलः शीलशैलः समन्तात् ।
साक्षान्मान्योऽपर विजयतेऽत्राखिलेशो जिनेशः ॥८॥

येनाधीतं कृतिवरगुरोः पृथ्विचन्द्रोपकण्ठे ।
बाल्ये श्रद्धामहितमनसा जैन शास्त्रीयतत्वम् ॥
दीपाद्दीपान्तरमिव ततः सोऽपिजज्ञे प्रभावान् ।
गाढ़ध्वान्त — प्रहरणविधिज्ञोऽखिलेशोमुनीशः ॥९॥

पृथ्वीचन्द्रः प्रकृतिसुकृती सद्गुरुर्नित्यमित्थम् ।
यावज्जैनायतनशरणो वैधकृत्येषु लग्नः ॥
प्रातः सायं शुचिसमुचितव्यापृतौ पुत्ररीत्या ।
श्रित्वा नित्यं जिनपदसमाराधनामेव वव्रे ॥१०॥

लोकातीताऽप्यमरकविता साधुविद्यानवद्या ।
प्रीत्याधानं नृषु विदधती यस्यनित्यं प्रवृत्ता ॥
तर्कोत्कर्षं न लघुमकरोद् दिव्यशक्तान्वितस्य ।
सानन्दर्षेः श्रमणसमिताचार्यवर्यप्रकर्षः ॥११॥

ये ये जैनाः प्रगतिपथगाः साधवः सन्ति लोके ।
यस्योत्कर्षः किलसमभवत्तेषु सर्वेष्वदभ्रः ॥
चन्द्रज्ञप्तिप्रकटितमवघं विधूयान्तरङ्गात् ।
प्राचीनानां स्मृतिमजनयत् शास्त्रभाजां मुनीनाम् ॥१२॥

कवि श्री जी के तपः पूत मानस से निःसृत विचार-वीथिकाओं में मधुर मकरन्द से मण्डित जिस माधुरी वाणी से हृदय आप्यायित होता है—जिसमें चिन्तन की उज्ज्वल रेखाएँ नयनाभिराम वासन्ती से कलित कामनाओं को क्षेम-श्री को विभूषित करती हैं—जन-मन में आनन्द और सुषमा दोनों को ही भरती लक्षित होती हैं। उनके उदार व्यक्तित्व में जहाँ आत्म-चिन्तन की गंभीरता है, वहीं सहज प्रकृति में हास्य एवं विनोद की मधुर छटा उल्लसित है।

○ **डॉ० देवेन्द्र कुमार**
एम० ए० पी-एच० डी०.

दार्शनिक कवि उपाध्याय श्री अमरमुनि

प्रायः देखा जाता है कि साहित्यकार का व्यक्तित्व दुहरा होता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह जिस काम और भोग की संतृष्णा में अतृप्त रहता है, उसे राग-विराग के कूल-उपकूलों पर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। किन्तु कवि श्री का व्यक्तित्व निराला है। उनमें जहाँ एक ओर जीवन की अनुपम संयम-साधना है, वहीं भावनाओं की रेखाओं में सहज उल्लसित आत्म-चिन्तन की गंभीरता समन्वित है। वे एक रस हैं। इसलिए राग उन्हें जीवन के आकर्षण-विकर्षणों में आकर्षित नहीं कर पाया है। और यही कारण है कि उनकी रचनाओं में हमें जीवन की वास्तविकता,उपदेशों में नहीं, व्यावहारिक एवं निश्चयात्मक आदर्शों में विखरी मिलती है। संक्षेप में, कवि श्री मूल में कवि एवं साहित्यिक हैं, पर चिन्तना में उनकी वाणी का अजस्र-प्रवाह सरलता से उनके दार्शनिक रूप को प्रकट कर देता है।

कवि श्री वास्तव में दार्शनिक हैं। उनकी दार्शनिकता विचारों की उस उड़ान में नहीं है, जो क्षितिज के किसी रंगीन छोर पर उन्मुक्त विचरण करती हो, वरन् जीवन की इकाई की वास्तविकता और मूलभूत प्रश्नों का विचार कर उसके तथ्य एवं सत्य का आकलन करती है। कठोर धरती के वास्तविक सत्य को वे सरल से सरल बना कर इसी प्रकार प्रकट करते हैं, मानो चिरन्तन सत्य सहजता के साथ जागृत हो गया हो। उनके विचारों में "धर्म जीवन के समस्त मूलभूत प्रश्नों से सम्बन्ध रखता है। जीवन से अलग धर्म को कोई स्थान नहीं

है—"धर्म और आदर्श वही है, जो जीवन की व्यावहारिक कसौटी पर अपनी सत्यता प्रमाणित कर सके। वे जीवन की समरसता के लिए जहाँ अहिंसा को आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी मानते हैं, वहीं सच्चे प्रेम से विश्व एकता की भावना पर बल देते हैं।

इस प्रकार कवि श्री की दार्शनिकता चिन्तन की जटिलताओं में सीमित न होकर निःसीम मुक्ति-वोध के लिए है, जिसमें लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा जीव-जगत आदि मूलभूत सिद्धान्तों का व्यवहार की वास्तविक धरती पर विचार किया गया है। उनके ही शब्दों में—"हम तो धरती के प्राणी हैं। धरती पर रहते हैं। इसलिए धरती के धर्म और धरती के आदर्शों को ही स्वीकार करते हैं। कभी-कभी कुछ लोग कह बैठते हैं कि यह सारा संसार मिथ्या है, स्वप्न है, असत्य है। किन्तु जव वे चार पाँच दिनों के भूखे हों, और उनके सामने मिठाइयों का थाल आ जाए, तब वे उन मिठाइयों को स्वप्न और मिथ्या मानते हैं या वास्तविक ?" जीवन की इन विभिन्न गुत्थियों को उन्होंने जिस सरलता, सहजता और सचाई से खोली हैं, उनको समझने पर कवि श्री की दार्शनिकता का रहस्य अपने आप प्रगट हो जाता है।

कवि श्री ने चिन्तन से साहित्यिक और दार्शनिक जगत् को जो सूक्ष्म एवं मुक्त तथा व्यावहारिक भाव-स्थली प्रदान की है, वास्तव में वह इस देश की जनता के लिए अत्यन्त उपादेय एवं आचरणीय है। ●
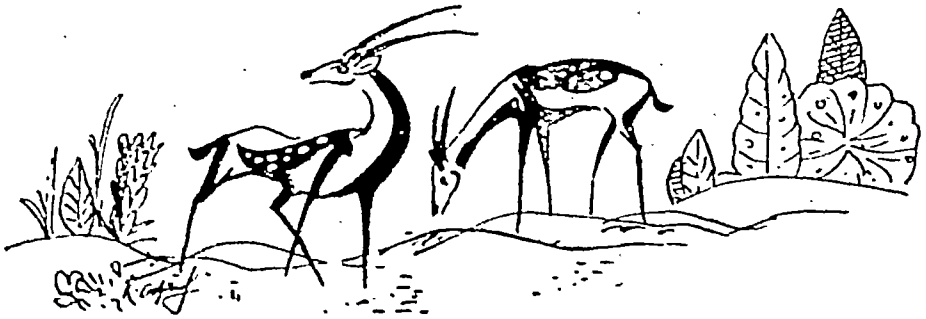
० डॉ० इन्द्रचन्द्र, शास्त्री
एम० ए०, पी-एच० डी०.

॥कविश्री अमरमुनि: वाणी और वाङ्मय॥

कवि अमरचन्द जी महाराज सन्त हैं, कवि हैं और आलोचक भी हैं। केवल शाब्दिक रचना के नहीं, किन्तु समाज और धर्म के भी। उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जिन सत्यों का साक्षात्कार किया, वे उनके साहित्य में सन्निहित हैं।

वे कहते हैं—"मनुष्य के सामने एक ही प्रश्न है, अपने जीवन को 'सत्यं, शिवं और सुन्दरं' कैसे बनाए।" उद्दाम लालसाओं की तृप्ति के लिए पागल बना हुआ मनुष्य क्या इस प्रश्न को समझने का प्रयत्न करेगा ? जिस दिन यह प्रयत्न प्रारम्भ होगा, वह विश्वमंगल का प्रथम प्रभात होगा।

प्राचीन काल से समस्त विश्व शान्ति के दो उपाय बरतता आ रहा है। जो बलवान है उसे धन, सम्पत्ति या भोग-विलास के प्रलोभन देकर शान्त करता रहा है और जो निर्बल है उसे तलवार दिखाकर। किन्तु इससे शान्ति कभी हुई नहीं। शान्ति का असली उपाय है—अपनी आवश्यकताएँ घटाकर दूसरे के अभाव की पूर्ति करना। यदि टीला अपनी उभरी हुई मिट्टी से पास के खड्डे को अपने आप भर दे, तो उसे आँधी और तूफानों का कोई भय न रहेगा। शान्ति का सच्चा मार्ग भी यही है।

मनुष्य ने समुद्र के गम्भीर अन्तस्तल का पता लगाया, हिमालय के उच्चतम शिखर पर चढ़कर देखा, आकाश और पाताल की सन्धियों को नाप लिया, परमाणु को चीर कर देखा, किन्तु वह अपने आप को नहीं देख सका, अपने पड़ौसी को नहीं देख सका। दूरबीन लगाकर नए-नए नक्षत्रों को देखने वाला पड़ोसी की ढहती हुई झोंपडी को नहीं देख सका। चन्द्रलोक की सैर करने वाला अपने प्रासाद के पीछे छिपी हुई अंधेरी गली की ओर कदम न बढ़ा सका इसको विकास कहा जाए या ह्रास ? कवि जी मानव से इस प्रश्न का उत्तर चाहते हैं।

"आज का मन्दिर ईश्वर का पूजा-स्थान नहीं, किंतु उसका कारावास है। आज की मस्जिद अल्लाह का इबादतखाना नहीं, उसकी कैद है। इन कैदखानों की दीवारों को गिरा दो। ईश्वर और खुदा को खुली साँस लेने दो। उन्हें दिल के आसन पर बैठा कर पूजो।" सम्प्रदायवाद पर कितना मार्मिक प्रहार है।

कवि जी की वाणी जहाँ वैज्ञानिकों को कोसती है, वहाँ तर्क की शुष्क समस्याओं में उलझे हुए दार्शनिकों को भी नहीं छोड़ती।

—"दार्शनिको! भूख, गरीबी और अभाव के अध्यायों से भरी हुई इस भूखी जनता की पुस्तक को भी पढ़ो। ईश्वर और जगत् की पहेलियाँ सुलझाने से पहले इस पुस्तक की पहेलियों को सुलझाओ।"

विश्वमंगल का मार्ग बताते हुए अमर मुनिजी एक नई घोषणा का आविष्कार करते हैं—"भारत के प्रत्येक नर-नारी को प्रतिदिन प्रातः और सायं यह गम्भीर घोषणा करनी चाहिए कि मानव-मानव के बीच कोई भेद नहीं। मानव मात्र को जीवन विकास के क्षेत्र में सर्वत्र समान अधिकार है।" "मैं" को समाप्त करके "हम" को इतना विशाल बना दो कि सारा विश्व उसमें समा जाए। इसी के लिए वे कहते हैं—'बूँद नहीं, सागर बनो।' बूँद का जीवन अत्यन्त क्षुद्र है, किन्तु समुद्र में मिलने पर वही अमर बन जाती है। अनादि काल से सूर्य की किरणें उसे सुखाने का प्रयत्न कर रही हैं, किन्तु वह उतना ही पूर्ण है, जितना पहले था।"

जैन-साधना का मूल मन्त्र सामायिक अर्थात् समता की आराधना है। उसकी विभिन्न व्याख्याओं द्वारा मुनि श्री ने जीवन-विकास के सभी अंगों का निष्कर्ष बता दिया है। अन्तरंग और बहिरंग जीवन में समता धर्म का सर्वस्व है, अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन सफलता का मूल-मन्त्र है, शत्रु और मित्र पर समबुद्धि रखते हुए लक्ष्य को सामने रखकर बढ़ते जाना कर्त्तव्य का मूलमन्त्र है, जो भगवान् कृष्ण द्वारा गीता में विस्तार पूर्वक बताया गया है। दुःख की अपेक्षा भी सुख में समभाव रखना अधिक कठिन है। जो व्यक्ति त्याग और तपस्या के द्वारा बल प्राप्त करता है, तेज का संचय करता है, वही अधिकारारूढ़ होने पर किस प्रकार समता को खो देता है और परिणाम-स्वरूप निस्तेज एवं निर्वीर्य हो जाता है, प्रतिदिन का इतिहास इसका उदाहरण है। रावण से लेकर कांग्रेस का वर्तमान पतन तक इसी सत्य को प्रगट करता है। मुनि श्री स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—"हमारा सुन्दर भविष्य आपसी भाई-चारे पर निर्भर है। इस विशाल पृथ्वी पर एक कोने से दूसरे कोने तक बसे हुए मानव-समूह में जितनी अधिक भ्रातृ-भावना विकसित होगी, उतनी ही शान्ति और कल्याण की अभिवृद्धि होगी।"

भारत की परम्परा यथार्थवादी है। वहाँ सत्य केवल आदर्शवाद की बात नहीं है, अपितु एक वास्तविकता है। और वह शुभ भी है और अशुभ भी। पुण्य

भी सत्य है और पाप भी सत्य है। दैवी सम्पदाएँ भी सत्य हैं और आसुरी भी। अतः सत्य मात्र उपादेय नहीं हो सकता। इसलिए मुनिश्री सत्य को तभी उपादेय बताते हैं, जब उसके साथ शिव भी हो।

अहिंसा का स्वरूप बताते हुए आप लिखते हैं—"अहिंसा साधना-शरीर का हृदय भाग है। वह यदि जीवित है, तो साधना जीवित है, अन्यथा मृत है।" उनकी अहिंसा निष्क्रिय नहीं, किन्तु सक्रिय है। वे कहते हैं—"तलवार मनुष्य के शरीर को झुका सकती है, मन को नहीं। मन को झुकाना हो, तो प्रेम के अस्त्र का प्रयोग करो।"

जो तलवार से ऊँचे उठेंगे, वे तलवार से ही नष्ट हो जायँगे।" ईसा के इस वाक्य को उद्धृत करके मुनि श्री ने ईसाई तथा जैन—दोनों धर्मों के मर्म को एक ही शब्द में प्रगट कर दिया है।

जीवन की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं—"चलना ही जीवन है।" चाहे व्यक्ति हो या सामज, धर्म हो या राष्ट्र, जो चल रहा है, समय के साथ कदम बढ़ाए जा रहा है, वह जीवित है। जहाँ अटका, वही मृत्यु है। यदि जीवन में सफलता प्राप्त करनी है, तो विश्वास, प्रेम और बुद्धि को साथ लेकर चलो। फिर प्रत्येक कार्य में आनन्द आएगा। समस्त जगत रसमय हो जाएगा। कठिनाइयों से जूझने में भी आनन्द आएगा। फिर असफलता का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। यही सफलता का मूल-मन्त्र है।"

मानव सिद्धि से पहले प्रसिद्धि की कामना करता है—यही उसकी भूल है। प्रसिद्धि तो सिद्धि का आनुषाङ्गिक फल है, जैसे गेहूँ के साथ भूसा। गेहूँ उगेगा तो भूसा अपने आप मिल जायेगा। अकेला भूसा प्राप्त करना चाहोगे, तो सारा प्रयत्न निष्फल हो जायगा।

मनुष्य जीवन की विषमताओं और द्वन्द्वों से परिभूत होकर कष्टों का अनुभव करता है। यदि उन सबमें समरसता का अनुभव करना है, तो ऊँचे उठ कर देखने की आदत डालनी चाहिए। कुतुब-मीनार पर चढ़कर मुनि श्री ने यही अनुभव किया, अर्थात् अभेदानभूति का मूल मन्त्र है—दूर रहकर तटस्थ वृत्ति से देखना।

घास को आग का डर हमेशा बना रहता है, किन्तु सोने को कोई डर नहीं होता। वह तो आग में पड़कर और निखरता है। चोटें खाकर और गल कर नया सुन्दरतर रूप ले लेता है। मानव-जीवन के लिए कितना मार्मिक सन्देश है।

प्रतिज्ञा जीवन-विकास का अनिवार्य अङ्ग है। किन्तु वह तभी, जब उसे पूरी तरह निभाया जाय। प्रतिज्ञा लेकर तनिक-सी प्रतिकूलता आने पर तोड़ देना जीवन के खोखलेपन को सूचित करता है। "आन लो और उस पर अड़े रहो"—यही जीवन का तत्व है।

जैन जगत के महान मनीषी

धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

आर्हती दीक्षा के पचास वर्ष की सम्पूर्ति

के

पावन प्रसंग पर हार्दिक अभिनन्दन !
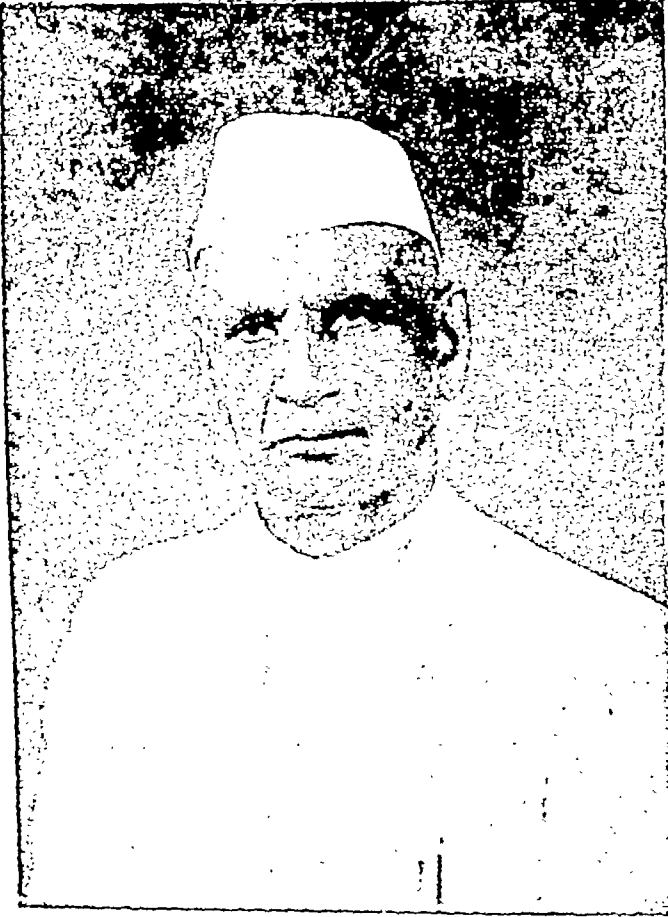
चन्द्रभान रूपचन्द डाकलिया

श्रीरामपुर (अहमदनगर)

चन्द्ररूप इन्डस्ट्रीज

आनन्द महल, बाबुलनाथ रोड, बम्बई

स्व. लाला कुंजलाल जी कविश्री जी के भक्तों में सच्चे जैन एवं सच्चे श्रावक थे। उनका जीवन धर्म, समाज एवं राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित था। जैन समाज में शिक्षा प्रचार के लिए वे प्रारम्भ से प्रयत्नशील रहे। वे श्रीमहावीर जैन हाईस्कूल, नई सड़क देहली के २० वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे। सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा की कार्यकारिणी के सदस्य रहकर साहित्य प्रचार में सदा प्रेरणा देते रहे।

व्यापारिक क्षेत्र में भी उनका बहुत अच्छा सम्मान था। सदर बाजार व्यापार एसोसिएशन के मंत्री तथा थ्रेडबॉल मेन्युफेक्चरिंग ऐसोशिएशन के पहले मन्त्री फिर अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने व्यापार में ईमानदारी एवं सच्चाई की प्रतिष्ठा की।

स्व. लाला कुंजलाल जी ओसवाल

जैन समाज के विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए सहयोग, गरीब भाइयों को रोजगार एवं पीड़ितों की चिकित्सा आदि उनकी सेवा के मुख्य कार्य थे।

जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने अपने पूज्य माता पिता की स्मृति में 'श्री बासीराम लीलादेवी जैन चैरिटेबिल ट्रस्ट' की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य है शिक्षा, चिकित्सा एवं साधर्मि भाइयों की सेवा के लिए सहयोग करना। ट्रस्ट की सम्पत्ति वर्तमान में लगभग ८ लाख के मूल्य की है।

स्व. लाला कुंजलालजी के उच्च आदर्श एवं सुन्दर संस्कार आज उनके सुपुत्रों-श्री शीतलप्रसाद जी एवं श्री देवेन्द्र कुमार जी तथा सुपुत्रियों श्रीमती शांतिदेवी एवं श्रीमती कमला देवी के जीवन में भी साक्षात देखे जाते हैं।

श्रद्धेय कविश्री जी के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा एवं भक्ति थी। अमर साहित्य के प्रचार-प्रसार में वे सदा अग्रणी रहे। आज कविश्री जी म० की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर उनकी पुनीत स्मृति हमें अपने कर्तव्यों की प्रेरणा दे रही है।

श्री बासीराम लीलादेवी जैन चैरिटेबिल ट्रस्ट
देहली

कवि श्री जी की अमर साहित्य साधना में [illegible]
सेवा एवं प्रेरणा के प्रतीक श्री अखिलेश मुनि जी [illegible] श्री जी के पार्श्व में खड़े हैं

जीवन-व्यवहार आदान-प्रदान पर चलता है। प्रदान बिना का आदान शोषण है, आदान बिना का प्रदान देवत्व है। मानवता में दोनों का सन्तुलन होता है। गाय की सेवा करके दूध प्राप्त करना—व्यवहार है। बिना कुछ दिए लेना—अपहरण या अत्याचार है।

जीवन-संगीत के दो स्वर हैं—कठोरता और मृदुता। जो व्यक्ति इन दोनों का ठीक प्रयोग करना जानता है, वही मधुर ध्वनि निकाल सकता है।

"हृदय के अन्तस्तल से वे पुकार कर कहते हैं—'यदि किसी को हँसा नहीं सकते, तो किसी को रुलाओ मत। किसी को आशीर्वाद नहीं दे सकते, तो किसी को शाप तो न दो!"

संसार को विष समझ कर भागने वालों से वे कहते हैं—"भागना जीवन की कला नहीं, कायरता है। कला तो विष को अमृत बना देने में है। सोमल का जहर मर जाए, तो वही संजीवनी बन जाता है।"

मुनि श्री की परिभाषा में जीवन का अर्थ—साँस लेना मात्र नहीं है। जीवन का अर्थ है—दूसरों को अपने अस्तित्व का अनुभव कराना। यह अनुभव ईंट-पत्थरों के ढेर खड़े करके या शोषण करके नहीं कराया जा सकता। इसका उपाय है—हम दूसरों के लिए साँस लेना सीख लें। अपने लिए सभी साँस लेते हैं, किन्तु जीवित वह है—जो दूसरों के लिए साँस लेता है।

"जो विकारों का दास है, वह पशु है; जो उन्हें जीत रहा है, वह मनुष्य है; जो अधिकांश जीत चुका है, वह देव है; और जो सदा के लिए जीत चुका है, वह देवाधिदेव है।" जीवन-विकास का उपरोक्त क्रम कितना स्पष्ट और प्रेरक है।

मानव को सम्बोधित करके वे कहते हैं—"मानव! तेरा अधिकार कर्त्तव्य करने तक है, फल तक नहीं। तू जितनी चिन्ता फल की रखता है, उतनी कर्त्तव्य की क्यों नहीं रखता?" मानव जिस दिन उपरोक्त सन्देश को समझ लेगा, कष्टों से छुटकारा पा जायगा।

मानव जीवन का ध्येय बताते हुए वे चिरन्तन सत्य को नगारे की चोट के साथ दोहराते हैं—"मानव जीवन का ध्येय त्याग है, भोग नहीं; श्रेय है, प्रेय नहीं। भोग-लिप्सा का आदर्श मनुष्य के लिए घातक, सदैव घातक है और रहेगा।" उपदेश पुराना है, किन्तु मानव ने अभी तक सुना कहाँ है?

मुनि श्री को पूर्ण विश्वास है—जिस प्रकार धरती के नीचे सागर वह रहे हैं। पहाड़ की चट्टान के नीचे मीठे झरने हैं. उसी प्रकार स्वार्थी मन के नीचे मानवता का अमर स्रोत वह रहा है। आवश्यकता है, थोड़ा-सा खोद कर देखने की।

एक बूंद ने यदि किसी प्यासे-रजकण की प्यास बुझा दी, तो वह सफल हो गई, वह धन्य हो गई। सफलता का रहस्य अधिग्रह में नहीं, किन्तु उत्सर्ग में है। उत्सर्ग कोई छोटा या बड़ा नहीं होता।

अवमानव और महामानव में क्या भेद है? इसका उत्तर देते हुए श्री अमर मुनि एक कसौटी बताते हैं। अवमानव उक्ति-प्रधान होता है, उसके पास बातें अधिक होती हैं और काम कम। महामानव क्रिया-प्रधान होता है, उसके पास काम अधिक होता है, बातें कम।

महामानव-महानता की पगडंडी बताते हुए कवि जी कहते हैं—'महानता की पगडण्डी फल-फूलों से लदे उद्यानों में से होकर नहीं जाती। वह तो जाती है—कांटों में से, झाड़-झंखाड़ों में से, चट्टानों और तूफानों में से। यह वह पगडण्डी है, जहां मृत्यु, अपयश और भयङ्कर यातनाएँ क्षण-क्षण पर आह्वान करती रहती हैं। और जब आप अपने लक्ष्य पर पहुँच जाए, हो सकता है, तब भी काँटें ही मिलें। एक तत्ववेत्ता ने कहा है—

"प्रत्येक महापुरुष पत्थर मारे जाने के लिए है। उसके भाग्य में यही बदा होता है।"

साधारण पुरुष वातावरण से बनते हैं। परन्तु महापुरुष वातावरण को बनाते हैं। समय और परिस्थितियां उनका निर्माण नहीं करती, परन्तु वे समय और परिस्थिति का निर्माण करते हैं। महापुरुष की परिभाषा है—"युग-निर्माता।"

जैन परम्परा में महामानव ऊपर से नहीं उतरते। मानव ही परिश्रम और साधना द्वारा महामानव बनता है। आत्मा ही अपने स्वरूप को प्रकट करके परमात्मा बन जाता है। उसी को प्रकट करते हुए आप लिखते हैं—"मनुष्यता के स्वस्थ विकास की पूर्णकोटि ही भगवान् का परमपद है।"

आपकी महामानव की परिभाषा कितनी तलस्पर्शी है—"महामानव वह है—निष्काम जन-सेवा ही जिसके जीवन का प्राण है। जनता जनार्दन ही जिसका आराध्य देव है। सेवक बनकर रहना ही जिसके जीवन की आधार-शिला है। अहिंसा और सत्य की पवित्र साधना ही जिसके जीवन का प्रकाशमान इतिहास है। महामानव सत्य का वह प्रकाशमान स्तम्भ है, जो अपनी मृत्यु के बाद भी हजारों वर्षों तक अन्धेरे में भटकती हुई मानवता को प्रकाश देता रहता है। वह जनता का सर्वश्रेष्ठ कलाकार होता है।"

अब जरा महादेव का आदर्श सुनिए—"सब लोग अमृत पीने की चिन्ता में हैं, किन्तु मैं विष की घूंट पीकर अजर-अमर हो जाना चाहता हूं। मुझे फूलों की शैय्या नहीं, कांटों का पथ चाहिए।"

व्यक्ति तथा समाज के विकास में बाधक वे लोग होते हैं, जिनमें दूसरों को अपने पीछे चलाने की शक्ति नहीं है और स्वयं दूसरों के पीछे चलना नहीं

चाहते। आपका उनके लिए सन्देश है—"या तो स्वयं दूसरे के पीछे चलो अथवा दूसरों को अपने पीछे ले लो। दोनों में से एक बात करनी होगी।"

अवसर व्यक्ति को महान् नहीं बनाता, किन्तु व्यक्ति अवसर को महान् बनाता है। पानी की बूंद को मोती बनाना सीप का काम है। दूसरे स्थान में पड़ी हुई वही बूंद क्षुद्र बिन्दु के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिस क्षण को किसी तेजस्वी पुरुष ने पकड़कर अपने जीवन का उन्मीलन मुहूर्त बना लिया, वही क्षण महान् हो जाता है, अन्यथा वह काल की अनन्त धारा का क्षुद्रतम अंश ही है। अवसर की प्रतीक्षा में बैठे रहने वाले अकर्मण्यों के सामने उपरोक्त तत्व का मर्म रखते हुए वे लिखते हैं—

"साधारण मनुष्य अवसर की खोज में रहते हैं—कभी ऐसा अवसर मिले कि हम भी कुछ करके दिखाएं। इस प्रकार प्रतीक्षा में सारा जीवन गुजर जाता है, परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता।"

परन्तु महापुरुषों के पास अवसर स्वयं आते हैं; आते क्या हैं, वे छोटे से छोटे नगण्य अवसर को भी अपने काम में लाकर बड़ा बना देते हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण है, यदि उसका किसी महत्वपूर्ण कार्य में विनियोग किया जाए।"

लोग यौवन और बुढ़ापे का सम्बन्ध शरीर से मानते हैं। किन्तु वास्तव में देखा जाए, तो उनकी यह धारणा गलत है। मन की क्षीणता शरीर की क्षीणता की अपेक्षा अधिक भयंकर होती है। नित्य नव तरंगित रहने वाला उल्लास ही तो यौवन है और वह होता है—मन में, शरीर में नहीं।

पुरुषार्थी को प्रेरणा देते हुए वे कहते हैं—"यदि तू अपने अन्दर की शक्तियों को जागृत करे, तो सारा भूमण्डल तेरे एक कदम की सीमा में है। तू चाहे तो घृणा को प्रेम में, द्वेष को अनुराग में, अन्धकार को प्रकाश में, मृत्यु को जीवन में, किं बहुना, नरक को स्वर्ग में बदल सकता है।"

साधक को ठीक मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं—"परमात्मपद पाना तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। संसार की कोई भी शक्ति ऐसी नहीं, जो तुम्हें अपने इस पवित्र अधिकार से वंचित कर सके।"

श्रद्धा के बिना साधना निष्प्राण है। जितना शिव और शव में अन्तर है, उतना ही अन्तर श्रद्धा-सहित और श्रद्धा-रहित साधना में है। पहली शिव है और दूसरी शव। जैन-परम्परा में साधना का प्रारम्भ सम्यक् श्रद्धा से होता है।

जिस प्रकार शरीर का जीवन सांस पर अवलम्बित है, सांस चल रहा है तो जीवन है और बंद हो गया तो मृत्यु है। इसी प्रकार साधना-जीवन विश्वास पर अवलम्बित है। विश्वास जीवन है और अविश्वास मृत्यु। विश्वास मानव जीवन में सबसे बड़ी शक्ति है। विश्वासी कभी हारता नहीं, थकता नहीं, गिरता नहीं, मरता नहीं। विश्वास अपने आप में अमर औषधि है।

अपने आप में विश्वास करना ही ईश्वर में विश्वास रखना है। जो अपने आप में अविश्वस्त है, दुर्बल है, कायर है, साहस-हीन है, वह कहीं आश्रय नहीं पा सकता। स्वर्ग के असंख्य देवता भी मन के लंगड़े को अपने पैरों पर खड़ा नहीं कर सकते।

आदर्श की परिभाषा करते हुए आप लिखते हैं—"आदर्श वह है, जो जीवन की गहराई में उतर कर व्यवहार में आचरण का वज्ररूप ग्रहण कर ले।" जो आदर्श केवल सिद्धान्त बना रहता है, जीवन-व्यवहार में नहीं उतरता उसका होना, न होना बराबर है।"

अश्रद्धा की चर्चा करते हुए आप कहते हैं—"श्रद्धाहीन अविश्वासी का मन वह अन्धकूप है—जहां सांप, बिच्छू और न मालूम कितने जहरीले कीड़े-मकोड़े पैदा होते रहते हैं।" वास्तव में श्रद्धा वह दीपक है, जो इन सब जहरीले जन्तुओं को भगा देता है। वे सब अश्रद्धा में ही पनपते हैं।

श्रद्धा का प्रतिपादन करते समय मुनि श्री तर्क को भूलते नहीं। आप कहते हैं—"तर्कहीन श्रद्धा अज्ञानता के अन्ध-कूप में डाल देती है और श्रद्धा-हीन तर्क अन्ततः सारहीन विकल्प तथा प्रतिविकल्पों की मरुभूमि में भटका देता है। अतः श्रद्धा की सीमा तर्क पर, और तर्क की सीमा श्रद्धा पर होनी चाहिए।

भक्ति का रहस्य—दासता या गुलामी नहीं है। सच्ची भक्ति वह है, जहाँ भक्त भगवान् के साथ एकता स्थापित कर लेता है। अपना अस्तित्व भूल कर उसी के अस्तित्व में मिल जाता है।

स्वाध्याय का अर्थ—पुस्तकों का कोरा अध्ययन नहीं है। उसका सच्चा अर्थ है—अपने आपको पढ़ना। पुस्तकें छोड़कर मनुष्य को चाहिए कि स्वयं को समझने का प्रयत्न करे। वर्तमान विज्ञानवादियों के लिए वे कहते हैं—"सच्चा ज्ञान प्रकृति के रहस्यों को खोलने में नहीं है, अपितु अपने रहस्यों के विश्लेषण में है, उनकी जाँच करने में हैं।

श्रमण-संस्कृति :

o

सभी देश, धर्म और समाज अपनी-अपनी संस्कृति के गीत गाने में लगे हैं। किन्तु ढोल बजाकर अपनी आस्तिकता का गीत गाने वाले सभ्य कहे जाएँ या असभ्य, उन्हें संस्कृत कहना चाहिए या असंस्कृत, यह विचारणीय है। संस्कृति का मूल आधार—"बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय" है। अधिक से अधिक लोगों के सुख एवं हित का साधन ही संस्कृति है। यदि यह भावना नहीं है, तो ढोल बजाने का कोई अर्थ नहीं है। संस्कृति का अमर आदर्श है—लेने की अपेक्षा देने में अधिक आनन्द का अनुभव करना।

श्रमण-संस्कृति किसी का विनाश नहीं चाहती। वह तो दानव को मानव और मानव को देवता बनाना चाहती है। इसी को जैन-साधना में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा कहा गया है।

जैन परम्परा एवं धर्म का रहस्य मुनि श्री ने "जैनत्व और श्रमण" संस्कृति में समझाया है। जैन-धर्म जातिवाद को नहीं मानता। यहाँ विकास का द्वार प्रत्येक मनुष्य के लिए खुला है। इतना ही नहीं, पशु के लिए भी खुला है। इसने सम्प्रदायवाद को कभी महत्त्व नहीं दिया। वासना, कषाय, राग-द्वेष आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जैन है। वह किसी वेष में हो, किसी नाम से पुकारा जाता हो, कोई क्रिया-कांड करता हो, किसी को हाथ जोड़ता हो।

जैन-धर्म की मुख्य प्रेरणा है "आत्म-देव" होने में। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बल से सम्पन्न है। वही परमात्मा है। प्रत्येक व्यक्ति को उसी आत्मदेवता की पूजा करनी चाहिए। उसे पहचान लिया, उसके ऊपर जमे हुए मैल को हटाकर असली स्वरूप प्रकट कर लिया, तो सब कुछ मिल गया। फिर कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है।

कर्मवाद का अटल नियम बताते हुए आप कहते हैं—"आग लगाने वालों के भाग्य में आग है और तलवार चलाने वालों के भाग्य में तलवार है। जो दूसरों की राह में काँटे बिछाते हैं, उन्हें फूलों की सेज कैसे मिलेगी? क्या अणुबम और उद्जनबम तैयार करने वाला राजनीतिज्ञ इस नीति को सीख सकेगा।"

प्राणिमात्र का कल्याण करने के लिए पृथ्वी पर धर्म संस्था का जन्म हुआ। किन्तु उसी का नाम लेकर मनुष्य ने पशुओं का रक्त बहाया और मनुष्यों का भी रक्त बहाया। इतना ही नहीं, जघन्यतम नर-संहार को धर्म-युद्ध कहकर खून की नदियाँ बहाईं। धर्म-संस्था के आदर्श उदात्त भावनाओं से भरे हैं, किन्तु इतिहास रक्तरंजित है और उस इतिहास के नए पृष्ठ अब भी लिखे जा रहे हैं। मुनि श्री कह रहे हैं—"अखिल विश्व के प्राणियों में आत्मानुभूति करना ही सबसे बड़ा धर्म है।" क्या विश्व के सभी धर्माचार्य इस परिभाषा को मानने के लिए तैयार होंगे? केवल आदर्श और उपदेशों द्वारा नहीं, किन्तु व्यवहार द्वारा।

धर्म-साधना क्या है? मनुष्य के मन में रही हुई पशुता को दूर कर मानव का रूप देने की साधना। वे घोषणा करते हैं—"तलवार के सहारे पलने वाला धर्म—धर्म नहीं हो सकता। और वह धर्म भी धर्म नहीं हो सकता, जो सोना-चाँदी के चमकते प्रलोभनों की चकाचौंध में पनपता हो। सच्चा धर्म वह है, जो

भय और प्रलोभनों के सहारे से ऊपर उभर सकना और त्याग के, मैत्री और करुणा के निर्मल भावना शिखरों का सर्वाङ्गीण स्पर्श कर सके।" महावीर के अनुयायी जैन भी, धर्म को सोने-चाँदी की चकाचौंध में पनपाने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या वे ऊपर की पुकार सुनेंगे ?

धर्म का एक-मात्र नारा है—"हम आग बुझाने आए हैं, हम आग लगाना क्या जाने।" जिस धर्म का यह नारा नहीं है, वह धर्म—धर्म नहीं है।

धर्म का अर्थ समझाते हुए वे मनुष्य से पूछते हैं—"मनुष्य ! तेरा धर्म तुझे क्या सिखाता है ? क्या वह भूले-भटकों को राह दिखाना सिखाता है ? सबके साथ समानता का, भ्रातृभाव का, प्रेम का व्यवहार करना सिखाता है। दीन-दुखियों की सेवा-सत्कार में लगना सिखाता है ? घृणा और द्वेष की आग को बुझाना सिखाता है ? यदि ऐसा है, तो तू ऐसे धर्म को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान कर, पूजा कर, अर्चा कर। इसी प्रकार का धर्म विश्व का कल्याण कर सकता है। ऐसे धर्म के प्रचार में यदि तुझे अपना जीवन भी देना पड़े, तो दे डाल; हँस-हँस कर दे डाल।"

"पाप आने से पहले चेतावनी देता है। मन में एक प्रकार का भय तथा लज्जा का अनुभव होता है। यदि हम उस चेतावनी को सुनना सीख लें, तो बहुत अंशों तक पाप से बच सकते हैं।"

सामाजिक संघर्षों का मूल कारण बताते हुए आप कहते हैं—'आज के दुखों, कष्टों और संघर्षों का मूल कारण यह है कि मनुष्य अपना बोझ खुद न उठाकर दूसरों पर डालना चाहता है।"

समाज-सूत्र का रहस्य आप इस प्रकार प्रकट करते हैं—"समस्त मानव-जीवन एक ही नाव पर सवार है। यहाँ सबके हित और अहित बराबर हैं। यदि पार होंगे तो सब पार होंगे और यदि डूबेंगे तो सब डूबेंगे।......यदि मानव जाति व्यक्तिगत स्वार्थों के आगे झुक गई तो बर्बाद हो जाएगी। व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठे बिना कहीं भी गुजारा नहीं है।" इस समय परिस्थिति यह है, कि नाव के एक कोने में बैठा हुआ व्यक्ति चाहता है, कि दूसरे कोने वाला डूब जाए और इसके लिए दूसरे कोने में छेद करने का प्रयत्न कर रहा है। उसे समझना चाहिए कि छेद कहीं हो, सारी नौका डूबेगी, एक कोना नहीं। समस्त मानव-समाज एक शरीर है। रोग किसी अंग में प्रकट हो, कष्ट का अनुभव सारे शरीर को करना होगा।

जौहरियों से वे कहते हैं—"जौहरियो ! इन पत्थरों को रत्न समझ कर बहुत भटक लिए, पागल हो लिए। अब जरा इन जीते-जागते मानव देहधारी हीरों की परख करो। दुख है, कि तुम कंकर-पत्थर परखते रहे और न जाने कितने अनमोल रत्न धूल में मिल गए।"

विज्ञान के वर्तमान विकास की ओर लक्ष्य करके उन्होंने कहा है—"विज्ञान की तेज छुरी से प्रकृति की छाती को चीर क्या निकाला ? विष, विष और विष ! वह चला था अमृत की तलाश में परन्तु ले आया विष !"

भारत की नारी को लक्ष्य करके मुनि श्री का कथन कितना मार्मिक है—"भारत की नारी तप और त्याग की मोहक मूर्ति है, शान्ति और संयम की जीवित प्रतिमा है। वह अन्धकार से घिरे संसार में मानवता की जगमगाती तारिका है। वह मन के कण-कण में क्षमा, दया, करुणा सहन-शीलता और प्रेम का ठाठे मारता समुद्र लिए घूम रही है। काँटों के बदले फूल बिछा रही है।" ●

क्रांति का इतिहास

'तीर्थंकर' शब्द ही जैन परम्परा की विधायक चेतना का स्पष्ट प्रमाण है। तीर्थंकर का अर्थ है—तीर्थ के कर्ता। संघ-संघटक, समाजविधायक, और नेतृत्व की अर्हता संपन्न व्यक्तित्व !

समाज का नेतृत्व उन्हीं हाथों में विकसित हो सकता है, जिनमें सर्जन और विसर्जन की उभयमुखी निष्ठा होती है। केवल क्रांति विध्वंस की सूचक है, उसके साथ शांति का संगम ही निर्माण की पृष्ठ-भूमि बन सकता है। महावीर क्रांतदर्शी भी थे, और शांतदर्शी भी। उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों और अन्ध-विश्वासों का खुलकर विरोध किया, यज्ञवाद एवं जातिवाद आदि के रूढ़ विश्वासों में उनकी क्रांति ने हलचल मचादी। उनकी क्रांति वैदिक परम्परा के विरोध में नहीं, पुरानी जैन परम्परा के विरोध में भी थी। क्रांति की सफलता का आधार यही होता है कि वह सत्य पर आश्रित रहे। अपनी और पराई परम्परा के व्यामोह में न उलझे। महावीर ने रूढ़ियों के प्रति क्रांति की, चाहे वे रूढ़ियां तत्कालीन वैदिक परम्परा में पनप रही थीं, या श्रमण परम्परा में। यही कारण है कि महावीर की पहली धर्म देशना को इतिहास-कार आचार्यों ने निष्फल बताया है। वस्तुत: उस युग की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि को देखने वाला पाठक यह नहीं मानेगा कि वह देशना इसलिए निष्फल रही कि उसमें कोई मानव उपस्थित नहीं था। किंतु इसका कारण यह था कि महावीर की क्रांतवाणी से रूढ़िचुस्त जनता के विश्वास डगमगा उठे। जनता ने नया और बिलकुल नया स्वर पहली बार सुना तो वह किसी भी निर्णायक स्थिति में नहीं पहुंच सकी। क्रांति का इतिहास ही यह रहा है कि प्राय: क्रांतिकारी की पहली वाणी निष्फल ही होती है।

—श्री अमर भारती 'अप्रैल-मई' १९६७

० प्रो० माधव रणदिवे, एम० ए०

"विचार और चिंतन मेरा शास्त्र है, उसकी भाषा है आचार। उसे पढ़ने वाला और उसके अनुसार आचरण करने वाला मेरा अनुयायी है।' 'धर्म प्रचार से नहीं, आचार से प्रसारित होता है, संस्कार से स्थिर होता है और विचार से शुद्ध होता है।' 'आकाश की निर्मलता, गंगा की पवित्रता और चन्द्रमा की शीतलता यदि किसी एक ही बिन्दु में समाहित हो सकती है, तो वह है मनुष्य के हृदय का विशुद्ध प्रेम !' 'तुम अपने बल का अनुभव तो करो, यह हिमालय तुमसे आज्ञा मांगेगा।'

कविश्री जी के चिंतन की धुरी :
सत्य की निर्भीक अभिव्यक्ति

ऐसे सर्वंकश विचार हैं हमारे परम श्रद्धेय समदर्शी कवि श्री उपाध्याय अमर मुनि महाराज के ! ऐसे अगणित अमूल्य विचार हमें प्रत्येक माह 'श्री अमर भारती' में मिलते हैं और उनको पढ़कर हमारे संकुचित विचार विशाल बनते हैं।

कविश्री जी तो सत्य के विचारक पुजारी हैं। जन्म से न तो वे श्वेताम्बर है, न दिगम्बर, न स्थानकवासी हैं। वे तो क्षत्रिय पुत्र अमरसिंह थे। किशोरावस्था में ही वे परम पूज्य मोतिराम जी महाराज के सहवास में आये और परम श्रद्धेय पृथ्वीचन्द्रजी महाराज के शिष्य बने।

कम्मुणा बंभणो होई कम्मुणा होइ खत्तिओ—वैसे ही वे गुरुसेवा, समतामयी संयमी जीवन और ज्ञानसाधना से सच्चे श्रमणवर बने। सत्य के साधक बनकर अपनी कठोर साधना से वे अपने साथ अखिल मानव समाज को प्रगतिशील बनाने के लिए कर्तव्य प्रवण दिखाई देते हैं।

कवि श्री जी ने तो सहज सुन्दर, सरल, स्पष्ट, प्रवाही और ओजस्वी वाणी के द्वारा काव्य, निबन्ध, जीवनी, कथा प्रवासवर्णन, समीक्षा, समालोचना, गद्यकाव्य, व्याख्या, संपादन, शिक्षा, मंत्र स्तोत्रादि साहित्य के बहुविध क्षेत्र में लीलया संचार किया है।

कवि श्री जी के सहवास में आने पर उनके मंत्र मुग्ध करने वाले प्रभावी व्यक्तिमत्व और विचारों को प्रेरणा देने वाले उनके बहुजनहिताय बहुजनसुखाय तर्कशुद्ध, समदर्शी, अंत:प्रेरणादायक, प्रभावशाली प्रवचन सुनने से किसी भी व्यक्ति के अन्त:करण में हलचल मचती है। उसके पूर्व-साम्प्रदायिक पक्षपाती संकुचित विचार नष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति भी कर्तव्यपरायण बनने क लिए प्रयत्नशील होता।

कवि श्री जी की कठिन साधना से बना हुआ आकर्षक व्यक्तिमत्व, तर्कशुद्ध, प्रवचन और समन्वयात्मक जीवन को आकार देने वाले विलक्षण साहित्य यह उनका प्रत्यक्ष सार्वजनिक जीवन है।

जैन दर्शन के साथ ही कवि श्री जी ने बौद्ध दर्शन और वैदिक दर्शन का भी परिशीलन किया है। वैसे ही आज का विज्ञान, तर्कशुद्ध विचार और नव दृष्टि पाकर उन्होंने समन्वयात्मक लेखन किया। '**क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है?**' इस प्रभावी लेख ने बड़ी क्रांति कर दी। जैन समाज में याने जो अपने को जैनदर्शन के सच्चे अनुयायी कहलाते हैं, उनमें हलचल मच गयी। इस वारे में कवि श्री जी कहते हैं—'मुझे अर्धनास्तिक क्यों पूरे नास्तिक कह लो। मैं आरम्भ से ही स्पष्ट प्रकृति का रहा हूं। मै अन्धविश्वासी नहीं, लेकिन तर्क प्रधान विश्वासी हूँ। सत्य की स्वीकृति में धर्म को कोई खतरा नहीं है। मैं स्वयं इस प्रकार आधारहीन तूफानों की कोई चिंता नहीं करता। आलोचना या निन्दा के कड़वे स्वर मुझे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते।'

जिस प्रकार से कवि श्री जी गुणों की प्रशंसा करते हैं, वैसे ही गलतियाँ या दोषों को भी खुले दिल से स्वीकार करते हैं। जैसे वे कहते हुए दिखाई देते हैं—'भूगोल, खगोल से सम्बन्धित रचनाएं शास्त्र नहीं ग्रन्थ हैं। ये रचनाएँ छद्मस्थ आचार्यकृत होने से उनसे भूल हो जाना सहज है।' दिगम्बर—श्वेताम्बरादि पंथ, ब्राह्मण-अस्पृश्यादि जातियाँ, श्रीमन्तगरीबादि वर्ग वे नहीं मानते। सिर्फ समान भाव से मानव जाति का विचार करते हैं। इसलिए हमारा शास्त्र-पूजक सनातनी समाज उन्हें क्रांतिकारी या नास्तिक कुछ भी समझे, क्रांतदर्शी कविश्री जी इसकी परवाह नहीं करते। जितने वे भगवान महावीर की वाणी को मानते हैं, उतने ही वे भगवान बुद्ध की वाणी का और वैदिक व्यास, मनु, शंकरादि वैदिक ऋषियों के मौलिक विचार का भी आदर करते हैं। वे जरथुस्त, इशूख्रिस्त, महम्मद पैगम्बर और टॉलस्टाय, मार्क्स और आधुनिक विज्ञान शास्त्रज्ञ को भी

कविश्री जी के चिंतन की धुरी :

सत्य की निर्भीक अभिव्यक्ति

ऐसे मर्मस्पर्शी विचार हैं हमारे परम श्रद्धेय समदर्शी कवि श्री उपाध्याय अमर मुनि महाराज के ! ऐसे अगणित अमूल्य विचार हमें प्रत्येक माह 'श्री अमर भारती' में मिलते हैं और उनको पढ़कर हमारे संकुचित विचार विशाल बनते हैं ।

कविश्री जी तो सत्य के विचारक पुजारी हैं । जन्म से न तो वे श्वेताम्बर हैं, न दिगम्बर, न स्थानकवासी हैं। वे तो क्षत्रिय पुत्र अमरसिंह थे। किशोरावस्था में ही वे परम पूज्य मोतिराम जी महाराज के सहवास में आये और परम श्रद्धेय पृथ्वीचन्द्रजी महाराज के शिष्य बने ।

कम्मुणा बंभणो होई कम्मुणा होइ खत्तिओ—वैसे ही वे गुरुसेवा, समतामयी संयमी जीवन और ज्ञानसाधना से सच्चे श्रमणवर बने । सत्य के साधक बनकर अपनी कठोर साधना से वे अपने साथ अखिल मानव समाज को प्रगतिशील बनाने के लिए कर्तव्य प्रवण दिखाई देते हैं ।

कवि श्री जी ने तो सहज सुन्दर, सरल, स्पष्ट, प्रवाही और ओजस्वी वाणी के द्वारा काव्य, निबन्ध, जीवनी, कथा प्रवासवर्णन, समीक्षा, समालोचना, गद्यकाव्य, व्याख्या, संपादन, शिक्षा, मंत्र स्तोत्रादि साहित्य के बहुविध क्षेत्र में लीलया संचार किया है।

कवि श्री जी के सहवास में आने पर उनके मंत्र मुग्ध करने वाले प्रभावी व्यक्तिमत्व और विचारों को प्रेरणा देने वाले उनके बहुजनहिताय बहुजनसुखाय तर्कशुद्ध, समदर्शी, अंतःप्रेरणादायक, प्रभावशाली प्रवचन सुनने से किसी भी व्यक्ति के अन्तःकरण में हलचल मचती है। उसके पूर्व-साम्प्रदायिक पक्षपाती संकुचित विचार नष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति भी कर्तव्यपरायण बनने क लिए प्रयत्नशील होता।

कवि श्री जी की कठिन साधना से बना हुआ आकर्षक व्यक्तिमत्व, तर्कशुद्ध, प्रवचन और समन्वयात्मक जीवन को आकार देने वाले विलक्षण साहित्य यह उनका प्रत्यक्ष सार्वजनिक जीवन है।

जैन दर्शन के साथ ही कवि श्री जी ने बौद्ध दर्शन और वैदिक दर्शन का भी परिशीलन किया है। वैसे ही आज का विज्ञान, तर्कशुद्ध विचार और नव दृष्टि पाकर उन्होंने समन्वयात्मक लेखन किया। **'क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है ?'** इस प्रभावी लेख ने बड़ी क्रांति कर दी। जैन समाज में याने जो अपने को जैनदर्शन के सच्चे अनुयायी कहलाते हैं, उनमें हलचल मच गयी। इस बारे में कवि श्री जी कहते हैं—'मुझे अर्धनास्तिक क्यों पूरे नास्तिक कह लो। मैं आरम्भ से ही स्पष्ट प्रकृति का रहा हूं। मै अन्धविश्वासी नहीं, लेकिन तर्क प्रधान विश्वासी हूँ। सत्य की स्वीकृति में धर्म को कोई खतरा नहीं है। मैं स्वयं इस प्रकार आधारहीन तूफानों की कोई चिंता नहीं करता। आलोचना या निन्दा के कड़वे स्वर मुझे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते।'

जिस प्रकार से कवि श्री जी गुणों की प्रशंसा करते हैं, वैसे ही गलतियाँ या दोषों को भी खुले दिल से स्वीकार करते हैं। जैसे वे कहते हुए दिखाई देते हैं—'भूगोल, खगोल से सम्बन्धित रचनाएं शास्त्र नहीं ग्रन्थ हैं। ये रचनाएँ छद्मस्थ आचार्यकृत होने से उनसे भूल हो जाना सहज है।' दिगम्बर—श्वेताम्बरादि पंथ, ब्राह्मण-अस्पृश्यादि जातियाँ, श्रीमन्तगरीबादि वर्ग वे नहीं मानते। सिर्फ समान भाव से मानव जाति का विचार करते हैं। इसलिए हमारा शास्त्र-पूजक सनातनी समाज उन्हें क्रांतिकारी या नास्तिक कुछ भी समझे, क्रांतदर्शी महर्षि श्री जी उसकी परवाह नहीं करते। जितने वे भगवान महावीर की वाणी को मानते हैं, उतने ही वे भगवान बुद्ध की वाणी का और वैदिक व्यास, मनु, शंकरादि वैदिक ऋषियों के मौलिक विचार का भी आदर करते हैं। वे जरथुस्त्र, इशुख्रिस्त, महम्मद पैगम्बर और टॉलस्टाय, मार्क्स और आधुनिक विज्ञान शास्त्रज्ञ को भी

० प्रो० माधव रणदिवे, एम० ए०

"विचार और चिंतन मेरा शास्त्र है, उसकी भाषा है आचार। उसे पढ़ने वाला और उसके अनुसार आचरण करने वाला मेरा अनुयायी है।' 'धर्म प्रचार से नहीं, आचार से प्रसारित होता है, संस्कार से स्थिर होता है और विचार से शुद्ध होता है।' 'आकाश की निर्मलता, गंगा की पवित्रता और चन्द्रमा की शीतलता यदि किसी एक ही बिन्दु में समाहित हो सकती है, तो वह है मनुष्य के हृदय का विशुद्ध प्रेम!' 'तुम अपने बल का अनुभव तो करो, यह हिमालय तुमसे आज्ञा मांगेगा।'

कविश्री जी के चिंतन की धुरी :
सत्य की निर्भीक अभिव्यक्ति

ऐसे सर्वंकश विचार हैं हमारे परम श्रद्धेय समदर्शी कवि श्री उपाध्याय अमर मुनि महाराज के! ऐसे अगणित अमूल्य विचार हमें प्रत्येक माह **'श्री अमर भारती'** में मिलते हैं और उनको पढ़कर हमारे संकुचित विचार विशाल बनते हैं।

कविश्री जी तो सत्य के विचारक पुजारी हैं। जन्म से न तो वे श्वेताम्बर है, न दिगम्बर, न स्थानकवासी हैं। वे तो क्षत्रिय पुत्र अमरसिंह थे। किशोरावस्था में ही वे परम पूज्य मोतिराम जी महाराज के सहवास में आये और परम श्रद्धेय पृथ्वीचन्द्रजी महाराज के शिष्य बने।

कम्मुणा बंभणो होई कम्मुणा होइ खत्तिओ—वैसे ही वे गुरुसेवा, समतामयी संयमी जीवन और ज्ञानसाधना से सच्चे श्रमणवर बने। सत्य के साधक बनकर अपनी कठोर साधना से वे अपने साथ अखिल मानव समाज को प्रगतिशील बनाने के लिए कर्तव्य प्रवण दिखाई देते हैं।

कवि श्री जी ने तो सहज सुन्दर, सरल, स्पष्ट, प्रवाही और ओजस्वी वाणी के द्वारा काव्य, निबन्ध, जीवनी, कथा प्रवासवर्णन, समीक्षा, समालोचना, गद्यकाव्य, व्याख्या, संपादन, शिक्षा, मंत्र स्तोत्रादि साहित्य के बहुविध क्षेत्र में लीलया संचार किया है।

कवि श्री जी के सहवास में आने पर उनके मंत्र मुग्ध करने वाले प्रभावी व्यक्तिमत्व और विचारों को प्रेरणा देने वाले उनके बहुजनहिताय बहुजनसुखाय तर्कशुद्ध, समदर्शी, अंतःप्रेरणादायक, प्रभावशाली प्रवचन सुनने से किसी भी व्यक्ति के अन्तःकरण में हलचल मचती है। उसके पूर्व-साम्प्रदायिक पक्षपाती संकुचित विचार नष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति भी कर्तव्यपरायण बनने क लिए प्रयत्नशील होता।

कवि श्री जी की कठिन साधना से बना हुआ आकर्षक व्यक्तिमत्व, तर्कशुद्ध, प्रवचन और समन्वयात्मक जीवन को आकार देने वाले विलक्षण साहित्य यह उनका प्रत्यक्ष सार्वजनिक जीवन है।

जैन दर्शन के साथ ही कवि श्री जी ने बौद्ध दर्शन और वैदिक दर्शन का भी परिशीलन किया है। वैसे ही आज का विज्ञान, तर्कशुद्ध विचार और नव दृष्टि पाकर उन्होंने समन्वयात्मक लेखन किया। '**क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है ?**' इस प्रभावी लेख ने बड़ी क्रांति कर दी। जैन समाज में याने जो अपने को जैनदर्शन के सच्चे अनुयायी कहलाते हैं, उनमें हलचल मच गयी। इस वारे में कवि श्री जी कहते हैं—'मुझे अर्धनास्तिक क्यों पूरे नास्तिक कह लो। में आरम्भ से ही स्पष्ट प्रकृति का रहा हूं। मै अन्धविश्वासी नहीं, लेकिन तर्क प्रधान विश्वासी हूँ। सत्य की स्वीकृति में धर्म को कोई खतरा नहीं है। मैं स्वयं इस प्रकार आधारहीन तूफानों की कोई चिंता नहीं करता। आलोचना या निन्दा के कड़वे स्वर मुझे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते।'

जिस प्रकार से कवि श्री जी गुणों की प्रशंसा करते हैं, वैसे ही गलतियाँ या दोषों को भी खुले दिल से स्वीकार करते हैं। जैसे वे कहते हुए दिखाई देते हैं—'भूगोल, खगोल से सम्बन्धित रचनाएं शास्त्र नहीं ग्रन्थ हैं। ये रचनाएँ छद्मस्थ आचार्यकृत होने से उनसे भूल हो जाना सहज है।' दिगम्बर—श्वेताम्बरादि पंथ, ब्राह्मण-अस्पृश्यादि जातियाँ, श्रीमन्तगरीवादि वर्ग वे नहीं मानते। सिर्फ समान भाव से मानव जाति का विचार करते हैं। इसलिए हमारा शास्त्र-पूजक सनातनी समाज उन्हें क्रांतिकारी या नास्तिक कुछ भी समझे, क्रांतदर्शी कविश्री जी इसकी परवाह नहीं करते। जितने वे भगवान महावीर की वाणी को चाहते हैं, उतने ही वे भगवान बुद्ध की वाणी का और वैदिक व्यास, मनु, शंकरादि वैदिक ऋषियों के मौलिक विचार का भी आदर करते हैं। वे जरथुस्त, इशूख्रिस्त, मोहम्मद पैगम्बर और टॉलस्टाय, मार्क्स और आधुनिक विज्ञान शास्त्रज्ञ को भी

आदर पूर्वक पढ़ते हैं। उनके तर्क-शुद्ध विचार अपनाते हैं। सत्य-शोधनार्थ 'तद्गुणलब्धये' के लिए वे बुद्ध वीरं च विरतं निग्रन्थसहित महत्वं धान्यकं वाक्य के अनुरक्त हैं, क्योंकि सत्य द्रष्टा सत्य के सच्चे पुजारी हैं।

सूर्य बिना किसी पक्षपात या संकोच के सभी को समान भाव से प्रकाश देता है। हमारे विचार चेतना के क्रांतदर्शी तपस्वी कवि श्री जी भी आत्मप्रगत सत्य विचार समभाव से प्रसृत करते रहे और हम सामान्य जनों को कर्तव्यतत्पर होने के लिए प्रेरणा देते रहें। ●

●● अतिचार और अपवाद

अतिचार एवं अपवाद में क्या अन्तर है?

यद्यपि बाह्य रूप में अतिचार एवं अपवाद एक समान प्रतिभासित होते हैं, किन्तु यह हमारा दृष्टि-भ्रम या बुद्धि-भ्रम है। वस्तुतः दोनों में महान् अन्तर है।

अतिचार निषिद्ध मार्ग है, अधर्म है। अपवाद विधि मार्ग है, अतः धर्म है।

अतिचार सेवन के पीछे क्रोधादि कषाय की प्रबलता, वासना, सांसारिक सुख की कामना एवं मानसिक दुर्बलता रहती है, जबकि अपवाद सेवन के पीछे ज्ञानादि गुणों के संरक्षण, अर्जन एवं शासनप्रभावना की पवित्रतम भावना होती है। इसलिए आचार्यों ने अतिचार को-दर्पिका प्रति सेवना कहा है, और अपवाद को कल्पिका प्रतिसेवना।" (व्यवहार भाष्य वृत्ति ३.१० गा० ३८) —श्री अमर भारती मई १९६५

●●

विचार चेतना के क्रांतदर्शी तपस्वी कविश्री जी जीवन एवं विचार

○ कलाकुमार

— ○ —

यह वसुन्धरा मानव का निवास स्थान है, परन्तु भारत वर्ष उसमें मानवता का परम पावन निधान है। संसार में जब भी कभी अन्धकार का आधिक्य हुआ, अन्धरूढ़ियों, अनीतिओं का बोल-बाला हुआ, उसी बीच से तमिस्रा के पट विच्छिन्न करके प्राची में उदय होने वाले अरुण सदृश कोई-न-कोई महान् पुरुष ने मानवतन धारण कर अपने प्रखर आलोक से जन मानस को आलोकित किया है। महान् आत्माओं के इसी क्रम में श्रद्धेय अमर मुनि जी महाराज का पदार्पण इस भारत भूमि पर वि० सं० १९६० तदनुसार सन् १९०३ ई० में हुआ था आपके पिताश्री लालसिंह एक धार्मिक वृत्ति के सज्जन पुरुष थे, माता जी श्री चमेली देवी भी महान् धर्मात्मा जननी थीं। ऐसे धर्मपरायण दम्पती के इस, रत्नदीप अमर सिंह का पावन अर्घ्य पाकर नारनौल (हरियाणा राज्य) धन्य हो उठा।

पन्द्रह वर्ष की सुकुमार अवस्था में ही, जबकि आज के किशोर खाने-खेलने में ही लगे होते हैं, बालक अमर अपने माता पिता से सानुनय आज्ञा लेकर परम पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के श्रेयष् छाँव में आकर वि० सं० १९७६ माघशुक्ला दशमी को भागवती दीक्षा ग्रहण की। तब कौन जानता था कि वह भोले स्वभाव का निश्छल बालक एक दिन अपने स्वतंत्र तात्विक चिंतन से श्रमण परम्परा में अपार विचार क्रांति उपस्थित कर सकेगा। किन्तु, नियति का विधान बड़ा विचित्र है। कब, कहाँ कौन-सी और कैसी ज्योति बिखेरेगी, कौन जाने।

और, "गुरुपद रज मृदु आंजि सुअंजन" मुनि श्री ने साधना की वैसी लगन लगाई कि साधना कुटीर जीवंत ज्योति से जगमगा उठा। श्रमण संघ, जो काल-चक्र के बहुविध प्रहार से आक्रांत हो क्लांत प्रायः हो चला था, मुनि श्री ने अपनी

सर्वेन्द्रिय प्रतिभा से आवरण डाल कर अपूर्व प्राणवत्ता प्रदान की। यह तो महान् पुरुषों की अपनी परम्परा रही है कि उनका तन, मन, चिन्तन एवं सम्पूर्ण जीवन जगद्धिताय अर्पित होता है—"परोपकाराय सतां विभूतयः"। उनकी साधना की भूमि प्राणिमात्र का कल्याण होती है। कवि श्री जी की ही वाणी में—"साधक की साधना वहीं सफल होती है, जहाँ वह तन का मोह छोड़कर प्राणिमात्र के कल्याण चिंतन में अपने जीवन को उत्सर्ग कर देता है।"

उसकी उत्सर्ग की इस भावना में परमानन्द की अन्तःसलिला का अजस्र-श्रोत प्रवहमान होता है। साधना की इसी मनोभूमि को संत भक्तों ने स्वांतः सुखाय की संज्ञा दी है। वस्तुतः स्व- अन्तर का ही वह सुख है, जबकि स्वात्मा में विश्वात्मा एकीभूत होकर अखंड आत्मानंद की अनुभूति प्राप्त करता है और स्वानुभूति के रंग में सबको रंगा पाता है, किन्तु यह तभी संभव हो पाता है, जबकि मनुष्य शरीर के प्रलोभनों से ऊंचा, बहुत ऊंचा उठ जाता है, तभी वह आत्मा के दिव्य आलोक की आभा को अविगत करने में सफल होता है। आपका यह महत् दृष्टिकोण आपके अन्तः-बाह्य व्यक्तित्व को पूर्णतः आप्लावित किये हुए है।

समन्वय के महान् संस्थापक :

०

कवि श्री जी का सम्पूर्ण जीवन नाना सम्प्रदायों, ज्ञान के नाना पहलुओं एवं तत्वचिंतन की विविध धाराओं का ऐसा समन्वित रूप है कि वह स्वतः समन्वय का संस्थापक-बिंब बन गया है। समन्वय प्राचीन अर्वाचीन विचारों का, धर्म और नीति का, लोक रीति और यथार्थ का, अध्यात्म और राजनीति का, तत्वचिंतन एवं परम्परा का, साहित्य एवं संस्कृति का और सबसे बड़ी बात कि मानवत्व एवं देवत्व के समन्वय का मणिकांचन योग कवि श्री के परिचय के प्रथम क्षण में ही अपनी दिव्य आभा से परिप्लुत कर मंत्र मुग्धसा कर देता है। इस समन्वय वृत्ति का ही परिणाम है कि जैन धर्म के श्वेताम्बर मार्गी शाखा के तत्व चिंतक होते हुए भी आपको वैदिक चिंतन की महनीयता, बुद्ध मार्ग की मज्झिम प्रतिपदा तथा ऐसे ही चिन्तन की अन्य नाना प्रक्रियाओं के प्रति समादर भाव है। 'सूक्ति त्रिवेणी" जैसे महत् ग्रन्थ का संपादन आपकी इसी समन्वय वृत्ति को, त्रिवेणी के पावन स्थल पर समन्वित कर अनुगूंजित कर रहा है। सर्वज्ञ महावीर प्रभु के अनेकांतवाद तथा भगवान बुद्ध के करुणावाद का जीवित बिंब, आप देखना चाहें तो इस महान् पुरुष का दर्शन करलें, जिसकी शाश्वत प्रखर-किरणों से वर्तमान श्रमण संघ पूर्णतः आप्यायित है। कवि श्री के इन्हीं गुणों को देखते हुए स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भाव भीने शब्दों में कहा था—"उपाध्याय कविरत्न अमर मुनि जी महाराज वर्तमान जैन समाज के

अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्ति नहीं, संस्था है। वे अपने चारों और ज्ञान का वातवरण प्रसारित करते हुए विद्यमान हैं।"

महान्‌पुरुष

०

जब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि हम महान् किसे कहें ? तो मन बहुत बार संशयग्रस्त हो दिशा खोने लगता है। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो व्यर्थ का गला बाजी, नारे बाजी कर अपने मत का, अपने विचारों का, जन सामान्य में आरोपण करते हैं। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो राजनीति के कुटिल छलछद्मों का बाना पहन अपनी महानता का सिक्का जमाने के चक्कर में लगे होते हैं ? क्या हम महान् उन्हें कहें, जो समाज से दूर अपने अनर्गल विचारों का वितंडावाद खड़ा करने में समुद्यत होते हैं ? या हम महान् उन्हें कहें जो नेताओं की चाटुकारिता करके बड़प्पन का ऊँचा आतंक भरा आसन हथियाते होते हैं ? किन्तु शान्त मन कभी-कभी कुछ और ही समाधान ढूंढ लेता है। हमें तो लगता है कि महान् पुरुष वही है—

> **"जीवन की सूनी राहों को भी जो मधुमास बना देता,**
> **सन्देह बीच मरने वालों में भी विश्वास जगा देता,**
> **इन्सान वही जो घृणित जीव को महिमावान बना देता।**
> **ठोकर खाते पथरोड़ों को भी जो भगवान बना देता।।"**

और वस्तुतः ऐसे मानवतत्व पर, देवत्व कोटि कोटि वार निछावर है। उपेक्षित, असहाय प्राणियों के प्रति एक मातृसुलभ ममता एवं सहानुभूति का सरस रसोद्रेक आप कविश्री जी के जीवन में पद-पद पर छलकता पावेंगे।

गीता में भी जिस दैवी स्वभाव वाले मानव का वर्णन करते हुये भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

> **अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।**
> **दया भूतेष्वलोलुप्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।**
> **तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।**
> **भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत!।।**

अर्थात्-अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परदोष चिंतन-विरक्ति प्राणिओं पर दया, निर्लोभिता, मृदुता, शीलवंतता, अचंचलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेषहीनता, निरभिमानता-यह समस्त गुण उन व्यक्तियों के हैं जो दैवी स्वभाव लेकर मानव तन धारण करते हैं। ये सभी कविश्री जी में स्वभावतः अन्तर्हित है, ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। आप जगत् के बीच "पद्म पत्र

सर्वदिश प्रतिभा से जागरण डाल कर अपूर्व प्राणवत्ता प्रदान की। यह तो महान् पुरुषों की अपनी परम्परा रही है कि उनका तन, मन, चिन्तन एवं सम्पूर्ण जीवन जगद्धिताय अर्पित होता है—"परोपकाराय सतां विभूतयः"। उनकी साधना की भूमि प्राणिमात्र का कल्याण होती है। कवि श्री जी की ही वाणी में—"साधक की साधना वही सफल होती है, जहां वह तन का मोह छोड़कर प्राणिमात्र के कल्याण चिंतन में अपने जीवन को उत्सर्ग कर देता है।"

उसकी उत्सर्ग की इस भावना में परमानन्द की अन्तःसलिला का अजस्र-स्रोत प्रवहमान होता है। साधना की इसी मनोभूमि को संत भक्तों ने स्वांतः सुखाय की संज्ञा दी है। वस्तुतः स्व- अन्तर का ही वह सुख है, जबकि स्वात्मा में विश्वात्मा एकीभूत होकर अखंड आत्मानंद की अनुभूति प्राप्त करता है और स्वानुभूति के रंग में सबको रंगा पाता है, किन्तु यह तभी संभव हो पाता है, जबकि मनुष्य शरीर के प्रलोभनों से ऊंचा, बहुत ऊंचा उठ जाता है, तभी वह आत्मा के दिव्य आलोक की आभा को अधिगत करने में सफल होता है। आपका यह महत् दृष्टिकोण आपके अन्तः-वाह्य व्यक्तित्व को पूर्णतः आप्लावित किये हुए है।

समन्वय के महान् संस्थापक :

०

कवि श्री जी का सम्पूर्ण जीवन नाना सम्प्रदायों, ज्ञान के नाना पहलुओं एवं तत्वचिंतन की विविध धाराओं का ऐसा समन्वित रूप है कि वह स्वतः समन्वय का संस्थापक-बिंब बन गया है। समन्वय प्राचीन अर्वाचीन विचारों का, धर्म और नीति का, लोक रीति और यथार्थ का, अध्यात्म और राजनीति का, तत्वचिंतन एवं परम्परा का, साहित्य एवं संस्कृति का और सबसे बड़ी बात कि मानवत्व एवं देवत्व के समन्वय का मणिकांचन योग कवि श्री के परिचय के प्रथम क्षण में ही अपनी दिव्य आभा से परिप्लुत कर मंत्र मुग्धसा कर देता है। इस समन्वय वृत्ति का ही परिणाम है कि जैन धर्म के श्वेताम्बर मार्गी शाखा के तत्व चितक होते हुए भी आपको वैदिक चिंतन की महनीयता, बुद्ध मार्ग की मज्झिम प्रतिपदा तथा ऐसे ही चिन्तन की अन्य नाना प्रक्रियाओं के प्रति समादर भाव है। 'सूक्ति त्रिवेणी" जैसे महत् ग्रन्थ का संपादन आपकी इसी समन्वय वृत्ति को, त्रिवेणी के पावन स्थल पर समन्वित कर अनुगूंजित कर रहा है। सर्वज्ञ महावीर प्रभु के अनेकांतवाद तथा भगवान बुद्ध के करुणावाद का जीवित बिंब, आप देखना चाहें तो इस महान् पुरुष का दर्शन करलें, जिसकी शाश्वत प्रखर-किरणों से वर्तमान श्रमण संघ पूर्णतः आप्यायित है। कवि श्री के इन्हीं गुणों को देखते हुए स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भाव भीने शब्दों में कहा था—"उपाध्याय कविरत्न अमर मुनि जी महाराज वर्तमान जैन समाज के

अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्ति नहीं, संस्था है। वे अपने चारों और ज्ञान का वातवरण प्रसारित करते हुए विद्यमान हैं।"

महान्‌पुरुष

०

जब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि हम महान् किसे कहें? तो मन बहुत वार संशयग्रस्त हो दिशा खोने लगता है। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो व्यर्थ का गला वाजी, नारे वाजी कर अपने मत का, अपने विचारों का, जन सामान्य में आरोपण करते हैं। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो राजनीति के कुटिल छलछद्मों का वाना पहन अपनी महानता का सिक्का जमाने के चक्कर में लगे होते हैं? क्या हम महान् उन्हें कहें, जो समाज से दूर अपने अनर्गल विचारों का वितंडावाद खड़ा करने में समुद्यत होते हैं? या हम महान् उन्हें कहें जो नेताओं की चाटुकारिता करके वड़प्पन का ऊँचा आतंक भरा आसन हथियाते होते हैं? किन्तु शान्त मन कभी-कभी कुछ और ही समाधान ढूंढ लेता है। हमें तो लगता है कि महान् पुरुष वही है—

"जीवन की सूनी राहों को भी जो मधुमास बना देता,
सन्देह बीच मरने वालों में भी विश्वास जगा देता,
इन्सान वही जो घृणित जीव को महिमावान बना देता।
ठोकर खाते पथरोड़ों को भी जो भगवान बना देता।।"

और वस्तुत: ऐसे मानवतत्व पर, देवत्व कोटि कोटि वार निछावर है। उपेक्षित, असहाय प्राणियों के प्रति एक मातृसुलभ ममता एवं सहानुभूति का सरस रसोद्रेक आप कविश्री जी के जीवन में पद-पद पर छलकता पावेंगे।

गीता में भी जिस दैवी स्वभाव वाले मानव का वर्णन करते हुये भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्याग: शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेज: क्षमा घृति: शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत!।।

अर्थात्-अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परदोष चिंतन-विरक्ति प्राणिओं पर दया, निर्लोभिता, मृदुता, शीलवंतता, अचंचलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेषहीनता, निरभिमानता-यह समस्त गुण उन व्यक्तियों के हैं जो दैवी स्वभाव लेकर मानव तन धारण करते हैं। ये सभी कविश्री जी में स्वभावत: अन्तर्हित है, ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। आप जगत् के बीच "पद्म पत्र

अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्ति नहीं, संस्था है। वे अपने चारों और ज्ञान का वातवरण प्रसारित करते हुए विद्यमान हैं।"

महान्‌पुरुष

०

जब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि हम महान् किसे कहें? तो मन वहुत वार संशयग्रस्त हो दिशा खोने लगता है। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो व्यर्थ का गला वाजी, नारे वाजी कर अपने मत का, अपने विचारों का, जन सामान्य में आरोपण करते हैं। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो राजनीति के कुटिल छलछद्मों का वाना पहन अपनी महानता का सिक्का जमाने के चक्कर में लगे होते हैं? क्या हम महान् उन्हें कहें, जो समाज से दूर अपने अनर्गल विचारों का वितंडावाद खड़ा करने में समुद्यत होते हैं? या हम महान् उन्हें कहें जो नेताओं की चाटुकारिता करके वड़प्पन का ऊँचा आतंक भरा आसन हथियाते होते हैं? किन्तु शान्त मन कभी-कभी कुछ और ही समाधान ढूंढ लेता है। हमें तो लगता है कि महान् पुरुष वही है—

"जीवन की सूनी राहों को भी जो मधुमास वना देता,
सन्देह वीच मरने वालों में भी विश्वास जगा देता,
इन्सान वही जो घृणित जीव को महिमावान बना देता।
ठोकर खाते पथरोड़ों को भी जो भगवान वना देता॥"

और वस्तुतः ऐसे मानवतत्व पर, देवत्व कोटि कोटि वार निछावर है। उपेक्षित, असहाय प्राणियों के प्रति एक मातृसुलभ ममता एवं सहानुभूति का सरस रसोद्रेक आप कविश्री जी के जीवन में पद-पद पर छलकता पावेंगे।

गीता में भी जिस दैवी स्वभाव वाले मानव का वर्णन करते हुये भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलौलुप्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत!॥

अर्थात्-अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परदोष चिंतन-विरक्ति प्राणिों पर दया, निर्लोभिता, मृदुता, शीलवंतता, अचंचलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेषहीनता, निरभिमानता-यह समस्त गुण उन व्यक्तियों के हैं जो दैवी स्वभाव लेकर मानव तन धारण करते हैं। ये सभी कविश्री जी में स्वभावतः अन्तर्हित हैं, ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। आप जगत् के बीच "पद्म पत्र

सर्वदिश प्रतिभा से जागरण डाल कर अपूर्व प्राणवत्ता प्रदान की। यह तो महान् पुरुषों की अपनी परम्परा रही है कि उनका तन, मन, चिन्तन एवं सम्पूर्ण जीवन जगद्धिताय अर्पित होता है—"**परोपकाराय सतां विभूतय:**"। उनकी साधना की भूमि प्राणिमात्र का कल्याण होती है। कवि श्री जी की ही वाणी में—"साधक की साधना वहीं सफल होती है, जहाँ वह तन का मोह छोड़कर प्राणिमात्र के कल्याण चिंतन में अपने जीवन को उत्सर्ग कर देता है।"

उसकी उत्सर्ग की इस भावना में परमानन्द की अन्त:सलिला का अजस्र-श्रोत प्रवहमान होता है। साधना की इसी मनोभूमि को संत भक्तों ने स्वांत: सुखाय की संज्ञा दी है। वस्तुतः स्व- अन्तर का ही वह सुख है, जबकि स्वात्मा में विश्वात्मा एकीभूत होकर अखंड आत्मानंद की अनुभूति प्राप्त करता है और स्वानुभूति के रंग में सबको रंगा पाता है, किन्तु यह तभी संभव हो पाता है, जबकि मनुष्य शरीर के प्रलोभनों से ऊँचा, बहुत ऊंचा उठ जाता है, तभी वह आत्मा के दिव्य आलोक की आभा को अधिगत करने में सफल होता है। आपका यह महत् दृष्टिकोण आपके अन्त:-बाह्य व्यक्तित्व को पूर्णतः आप्लावित किये हुए है।

समन्वय के महान् संस्थापक :

०

कवि श्री जी का सम्पूर्ण जीवन नाना सम्प्रदायों, ज्ञान के नाना पहलुओं एवं तत्वचिंतन की विविध धाराओं का ऐसा समन्वित रूप है कि वह स्वतः समन्वय का संस्थापक-बिंब बन गया है। समन्वय प्राचीन अर्वाचीन विचारों का, धर्म और नीति का, लोक रीति और यथार्थ का, अध्यात्म और राजनीति का, तत्वचिंतन एवं परम्परा का, साहित्य-एवं संस्कृति का और सबसे बड़ी बात कि मानवत्व एवं देवत्व के समन्वय का मणिकांचन योग कवि श्री के परिचय के प्रथम क्षण में ही अपनी दिव्य आभा से परिप्लुत कर मंत्र मुग्धसा कर देता है। इस समन्वय वृत्ति का ही परिणाम है कि जैन धर्म के श्वेताम्बर मार्गी शाखा के तत्व चिंतक होते हुए भी आपको वैदिक चिंतन की महनीयता, बुद्ध मार्ग की मज्झिम प्रतिपदा तथा ऐसे ही चिन्तन की अन्य नाना प्रक्रियाओं के प्रति समादर भाव है। 'सूक्ति त्रिवेणी" जैसे महत् ग्रन्थ का संपादन आपकी इसी समन्वय वृत्ति को, त्रिवेणी के पावन स्थल पर समन्वित कर अनुगूंजित कर रहा है। सर्वज्ञ महावीर प्रभु के अनेकांतवाद तथा भगवान बुद्ध के करुणावाद का जीवित बिंब, आप देखना चाहें तो इस महान् पुरुष का दर्शन करलें, जिसकी शाश्वत प्रखर-किरणों से वर्तमान श्रमण संघ पूर्णतः आप्यायित है। कवि श्री के इन्हीं गुणों को देखते हुए स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भाव भीने शब्दों में कहा था—"उपाध्याय कविरत्न अमर मुनि जी महाराज वर्तमान जैन समाज के

अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्ति नहीं, संस्था है। वे अपने चारों और ज्ञान का वातवरण प्रसारित करते हुए विद्यमान हैं।"

महान्पुरुष

०

जब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि हम महान् किसे कहें? तो मन बहुत बार संशयग्रस्त हो दिशा खोने लगता है। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो व्यर्थ का गला बाजी, नारे बाजी कर अपने मत का, अपने विचारों का, जन सामान्य में आरोपण करते हैं। क्या हम महान् उन्हें कहें, जो राजनीति के कुटिल छलछद्मों का बाना पहन अपनी महानता का सिक्का जमाने के चक्कर में लगे होते हैं? क्या हम महान् उन्हें कहें, जो समाज से दूर अपने अनर्गल विचारों का वितंडावाद खड़ा करने में समुद्यत होते हैं? या हम महान् उन्हें कहें जो नेताओं की चाटुकारिता करके बड़प्पन का ऊँचा आतंक भरा आसन हथियाते होते हैं? किन्तु शान्त मन कभी-कभी कुछ और ही समाधान ढूंढ लेता है। हमें तो लगता है कि महान् पुरुष वही है—

> "जीवन की सूनी राहों को भी जो मधुमास बना देता,
> सन्देह बीच मरने वालों में भी विश्वास जगा देता,
> इन्सान वही जो घृणित जीव को महिमावान बना देता।
> ठोकर खाते पथरोड़ों को भी जो भगवान बना देता।।"

और वस्तुतः ऐसे मानवतत्व पर, देवत्व कोटि कोटि बार निछावर है। उपेक्षित, असहाय प्राणियों के प्रति एक मातृसुलभ ममता एवं सहानुभूति का सरस रसोद्रेक आप कविश्री जी के जीवन में पद-पद पर छलकता पावेंगे।

गीता में भी जिस दैवी स्वभाव वाले मानव का वर्णन करते हुये भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

> अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
> दया भूतेष्वलोलुप्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
> तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
> भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत!।।

अर्थात्-अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परदोष चिंतन-विरक्ति प्राणियों पर दया, निर्लोभिता, मृदुता, शीलवंतता, अचंचलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेषहीनता, निरभिमानता-यह समस्त गुण उन व्यक्तियों के हैं जो दैवी स्वभाव लेकर मानव तन धारण करते हैं। ये सभी कविश्री जी में स्वभावतः अन्तर्हित हैं, ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। आप जगत् के बीच "पद्म पत्र

मिवाम्भसां" मानवता के महान् धर्म का उद्घोष करते हुए सत्य की निष्कंप ज्योति जला रहे हैं। मेरी समझ में मानव के रूप में मानवता की सहज अभिव्यक्ति वाला ऊर्जस्वल व्यक्तित्व देवत्व से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ हैं। कारण अमरपुरी को भी यत्किंचित् छलछद्म की पुरी कहा जाता है, जहां घोर अकर्मण्यता की तन्द्रा परिव्याप्त रहती है। परन्तु कवि-श्री जी तो वैसे कर्मठ साधक, चिरसाधनारत योगी, प्रकाण्ड पण्डित, मर्मज्ञ मनीषी, स्पष्ट वक्ता, सौम्य गुण-ग्राहक, शुचिता, सत्यता, शिवत्व (मंगलकामना) सम्मत सुललित व्यक्तित्व के सम्यक् रूप हैं।

निरभिमानता के प्रकटरूप मुनिश्री जी अपने आप में स्वतः सफल हैं। विनयिता उनकी वाणी नहीं प्रत्युत् आचार के पद-पद में प्रतिष्ठित है। आपको आश्चर्य होगा, जिस व्यक्तित्व की मैं इतनी श्रद्धा से वर्णना कर रहा हूं, उनको देखकर कि मेरे ये कतिपय शब्द बिल्कुल स्वल्प हैं। वे तो इतने महान् हैं कि उनकी महानता की अभिव्यक्ति कोई वाणी में नहीं कर सकता। जिस प्रकार से सागर की लहरियों की संगीत माधुरी को कोई गायक अपनी रागिनी में बाँध पाने में असमर्थ होता है, जैसे कोई कलाकार निसर्ग की छटा को अपनी तूलिका से रंगस्नात करने में अक्षम होता है, जैसे प्रणवनाद का कोई मूर्त रूप नहीं होता, ठीक उसी प्रकार से कवि श्री जी के सर्वतोमुखी सम्पन्न व्यक्तित्व को वाणी की अभिव्यक्ति दे, बाँध पाना मुझ जैसे अल्पज्ञ-अबोध के लिए असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

कवि श्री जी के अर्न्तव्यक्तित्व में बुद्ध का करुणावाद, गांधी का मानवतावाद, महर्षि दयानन्द का कर्मवाद, गीता का सांख्यवाद तथा स्थितप्रज्ञ एक साथ समन्वित रूप में तदाकार हो उठा है, अगर जैन दर्शन का अप्रतिहत अविच्छिन्न व्यक्तित्व कवि श्री जी है, तो आश्चर्य क्या? यहाँ एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि महान पुरुष किसी भी युग या सम्प्रदाय की सीमाओं में आबद्ध नहीं होता। कविश्री जी जैन धर्म के स्थानकवासी सम्प्रदाय के पूज्यपाद नमस्य महाराज हैं, इस रूप में मैं अभिनन्दन कर पाने में अपने को असमर्थ पाता हूं, कारण मैं स्वयं किसी भी सम्प्रदाय विशेष की सीमाओं में आवद्ध हो, उलझने वाला प्राणी नहीं हूं। मेरी तो एक ही मान्यता है एक कसौटी है कि "महात्मा की आत्मा महान् होती है, अतः वह किसी भी सीमा विशेष के लाघव में आवद्ध नहीं होता। कविश्री जी का मैंने अपने अनुभव के दायरे से जो अध्ययन किया है, उनका इसी उदात्त रूप में मुझे वरवस अपनी ओर आकृष्ट किया है कि मुनि श्री जी का व्यत्तित्व वस्तुतः जागतिक सीमाओं की क्षुद्र वीथियों के पार निर्वेद सागरतट का कल चुम्बन है। आध्यात्म चिंतन का इनका-सा सौम्य रूप अन्यत्र स्वल्प ही मिलता है। आप कहेंगे, कि इतना महान् पुरुष जगत कार्यो में इतना व्यस्त क्यों है? मैं आपको इसके लिये गीता के नेष्कर्म्यवाद की ओर इंगित

करूंगा, जहाँ नैष्कर्म का अर्थ कर्म हीनता से नहीं, प्रत्युत 'जगद्धिताय' कर्म संस्थापन से है जिनमें प्राणी मात्र का कल्याण निहित होता है, फिर ऐसे महान् पुरुष तो कर्म निमग्ना-निवृत्त होते हैं। वहाँ स्वहित एषणा का कोई महत्व न होता, प्रत्युत सत्य शिव सुन्दर की सहज स्थिति की ओर जीवन की शाश्वतता-होती है – सम्यक् सम्मान होता है। कविश्री जी इसके अपवाद नहीं हैं।

मानव संस्कृति के सजग प्रहरी

०

आज का मानव आत्मिक अहम्मन्यता एवं भौतिकता के कुत्सित व्यापारों से इतना दमित हो गया है कि पता नहीं चलता, मानवता के शाश्वत तत्व का किंचित् रूप भी उन्हें दीख रहा है कि नहीं? सर्वत्र, अनाचार, दुराचार, शोषण एवं उत्पीड़न का घृणित तांडव नर्तन होता दिखाई दे रहा है। ऐसे विषम युग की दुरवौद्धता के वीच मानव संस्कृति का सम्यक् दर्शन कराना कवि श्री जी जैसे संस्कृति के संरक्षक का ही कार्य है। आप मानव को उस पावन संस्कृति की ओर ले जाना चाहते हैं जो दानव से मानव वनाती और मानव को देव के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

"सन्तोभूमि तपसा धारयन्ति"

की महिमान्वित अभिव्यक्ति आपके चरण-चिन्हों से चित्रित होती है। "अर्पित हो मेरा मनुज काय बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय—की संस्कृति की मानव वाणी आपका अपना जीवन लक्ष्य है। आपका कथन है, "हम-दूसरों के लिए सांस लेना सीखें, अपने लिए तो सभी सांस लेते हैं, किन्तु जीवित वह है जो दूसरों के लिए सांस लेता है।" कितना पावन विचार है, आत्मा की कितनी वड़ी विशालता इसमें झलकती है।

महान् कर्मयोगी

०

कविश्री जी का जीवन प्रतिपल चिन्तन में व्यस्त रहता है। कोई ऐसा पल नहीं, जिसमें इन्हें कोई अकारण वैठे पाये। जीवन के लिए कर्त्तव्य का कितना बड़ा महत्व है, आत्मावलम्वन किसी भी पुरुपार्थी के लिए कितना महत्व रखता है, कविजी की वाणी में ही देखें "मांगना जीवन की कला नहीं, कायरता है, कला तो विप को अमृत वना देने में है, सोमल का जहर मर जाए, तो वही संजीवनी वन जाता है। जीवन कला की कितनी सधी-सुलझी अभिव्यक्ति यहां दर्शित है, अपूर्व है! आपका विश्वास है कि मानव अपनी महत्ता, श्रेष्ठता एवं उच्चता को कर्तव्यों के सही आकलन द्वारा प्राप्त कर सकता है। मानव के प्रति, उसकी महत्ता एवं ऐश्वर्यता के प्रति आपकी अडिग आस्था है। आपका विश्वास है कि "जिस प्रकार धरती के वीच सागर वह रहे हैं, पहाड़ की चट्टान के नीचे

मीठे झरने झरते हैं, उसी प्रकार स्वार्थ एवं दुखी मन के नीचे मानवता का अमर श्रोत प्रवाहित है और सुख का अक्षय कोष छिपा पड़ा है, मानव कर्त्तव्य की पहचान करके उसे पाने में सर्वथा समर्थ है।

विचार क्रांति के महान् उद्घोषक !

०

कवि श्री जी संत हैं, जैन धर्म के गहन तत्वचिंतक हैं, जैन समाज के बीच आपका बहुत बड़ा सम्मान है, बड़े से-बड़े व्यक्ति भी आपका चरणरज सर आँखों पर लेने में अपना भाग्य समझते हैं, परन्तु इन सबसे बड़ी बात यह है कि आप रूढ़ परम्पराओं के अन्ध भक्त नहीं, बल्कि उसके सही प्रचलन में, उसके वैज्ञानिक अर्थ स्थापन में विश्वास करते हैं। जैन आगम कहे जाने वाले चन्द्र-प्रज्ञप्ति आदि ग्रंथों में चन्द्र से सम्बन्धित जो बातें अंकित हैं, आज विज्ञान के प्रकाश में ये अवैज्ञानिक सिद्ध हो रही हैं। कविश्री महाराज का एक प्रवचन इस सम्बन्ध में हुआ था और जो श्री अमर भारती के फरवरी ६९ अंक में छप चुका है। उसमें उन्होंने इसका बड़ा ही वैज्ञानिक विवेचन किया है। आपने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि चन्द्रप्रज्ञप्ति की तथाकथित बातें वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की कही हो नहीं सकतीं। वे तो बाद के किसी अन्य विद्वान व्यक्ति का चिंतन है। आज मानव जब चन्द्रविजय कर चुका है तब वे कल्पना की बातें स्वीकार कैसे की जा सकती हैं। भगवान् के चरणों में श्रद्धाभक्ति कायम रहे इसके लिए हमें इसे सहज रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए कि चन्द्रप्रज्ञप्ति की वे बातें हमारे सर्वज्ञ महा प्रभु की वाणी कदापि नहीं हैं।" इसका सुधीजनों द्वारा सम्मान भी प्रचुर रूप में हुआ, कुछेक व्यक्तियों ने विरोध भी किया। "सम्यक् दर्शन" जैसे पत्र तो उस प्रवचन का आशय, अर्थ–कुछ भी न समझ पाया और उसके विरोध में अनर्गल बातें छापना शुरू किया, आज भी छाप रहा है, यदि वह शास्त्र शब्द का अर्थ समझ जाये तो ऐसी स्थिति न रहे। पुनश्च स्वनाम-धन्य आचार्य मनीषी आचार्य श्रीतुलसी, पं० बेचरदास दोशी, एवं ऐसे ही अनेकों शास्त्र मर्मज्ञों ने कविश्री जी के इस वैज्ञानिक चिन्तन की मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इसी क्रम में "केश लोच कब और क्यों ?" विषय पर भी वैज्ञानिक चिंतन प्रस्तुत करके आपने अन्धरूढ़ियों पर बड़ा सटीक प्रहार किया है। यह सत्य है, रूढ़ियों पर प्रहार, रूढ़िचुस्त लोगों के लिये सह्य न होता, पर इससे क्या ? भगवान महावीर भी तो क्रांति पुरुष थे। उनका भी कम विरोध न हुआ। परन्तु आज संसार उन्हीं को पूजता है। उन्हीं के वचनों पर चलने में अपना जीवन सफल बनाता है। और, एक समय अवश्य आयेगा जब कि कवि श्री जी की इस क्रांत वाणी का भी उसी अनुपात में स्वागत सम्मान जन सामान्य द्वारा होगा। सत्य-सत्य है, उसे झुठलाया नहीं जा सकता। इसके लिए बड़े से बड़े सम्मानप्रद

पद को भी ठुकराया जा सकता है। कविश्री जी भी इसे हृदय से मानते हैं। वे इसके लिये कुछ भी त्याग देने को तत्पर हैं, परन्तु सत्य के यथार्थ को झुठला नहीं सकते।

महान् साधक !

०

भारती मन्दिर में साधना का दीप जलाने वालों में आप वैसे साधक हैं, जिनकी साधना-ज्योति युगों-युगों भूले मानव को आलोक देकर सत्पथ प्रदान करती है। आपने अपने पूरे जीवन जनमानस को सन्मार्ग पर लाने, अपने चिन्तन को लिपिवद्ध कर आत्मा का दर्शन कराने तथा प्राणिमात्र के लिए शरदहास-सा सौम्य धवल अमिय उपदेश को कार्यों में अभिव्यक्ति कर जीवन की शालीनता स्थापित करने का एक मात्र व्रत ले रखा है। आपके प्रकाशित ग्रन्थों की वृहत् शृंखला को देखकर कोई भी उनकी साधना की थाह पा सकता है। आपने अपने चिन्तन का ऐसा मोती अपने ग्रन्थों में पिरोया है, जो किसी भी साधक के लिए स्पर्धा की वस्तु हो सकता है। मैंने कविजी के लगभग ७२ ग्रन्थों के दर्शन किये हैं आप जिस प्रकार से गद्य के माध्यम से अपने चिन्तन मुक्ता का मुक्त दान करते हैं, पद्य के माध्यम से उसी रूप में हृदय की मर्मिल अनुभूत भावनाओं को वाणी देते हैं। प्रत्येक माह सन्मति ज्ञानपीठ से प्रकाशित होने वाली श्री अमर भारती पत्रिका आपकी गहन साधना का परमोज्ज्वल प्रकाश स्तम्भ है। साहित्य और कला के आप जितने अच्छे मर्मज्ञ एवं सर्जक हैं, धर्म शास्त्र के उतने ही वड़े निष्णात। आपका जीवन भी साधना है—ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

एक साहित्य सेवी के रूप में भी कवि श्री जी चिरस्मरणीय रहेंगे। कवि श्री जी नाम ही उनकी साहित्यिक साधना का प्रतीक है। वैसे आपका क्षेत्र मात्र कविता नहीं, वरन् निवन्ध, कहानी संस्मरण आदि भी है। संपादन के क्षेत्र में "सूक्ति त्रिवेणी' तथा निशीथचूर्णी का सम्पादन आपकी सफलता का गान करता लक्षित होता है। आप लगभग ७२ ग्रन्थोंरत्नों का अर्घ्य भारती मन्दिर को दे चुके हैं जो इत्यलम् नहीं। अधुना हिन्दी साहित्यिक आपसे वहुत ही आशान्वित है। दर्शन के माध्यम से साहित्य में स्वानुभूति की सहज अभिव्यक्ति कविश्री जी की वाणी में मिली है जो अन्यत्र दुर्लभ है। साधना की इसी दिव्य मूर्ति के विषय में स्व० डा० हरिशंकर शर्मा ने अपनी भावभीनी श्रद्धामयी वाणी में कहा था—"उपाध्याय श्री अमर मुनिजी जैसे विद्वान मनीषी एवं तपस्वी संत वस्तुतः हमारी संस्कृति एवं कला, ज्ञान तथा साधना के मूर्तिमान प्रतीक हैं, राष्ट्रीय धरोहर हैं।" और आज जव इनका चिन्तन रत्न "सूक्ति त्रिवेणी" का जाज्वल्यमान प्रकाश लेकर पूत भगीरथी के महार्घ स्वरूप वसुधा पर अपने शिवत्व के गहन चिन्तन एवं उदात्त व्यक्तित्व को सतत साधना के संगम स्थल के रूप में गंगा,

यमुना एवं सरस्वती का संगम स्थल त्रिवेणी के रूप में समुपस्थित है, अगर प्राणवान शब्द मेरे पास होते तो कुछ और भी कहा जाता। मुनिश्री जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में तो उनका स्वयं का साधनारत जीवन अप्रतिम प्रकाश बिखेर रहा है।

अन्त में मुनिश्री जी की महानता का, अपनी श्रद्धा का निष्कम्प दीप जला, अभिनन्दन करता हूँ। आपसे संत पुरुषों को पाकर वस्तुतः वसुन्धरा निहाल है। ईश्वर करे वह आप जैसे महान् रत्नों को और भी अवतीर्ण कर जगती की तमिस्रा को सदा-सदा के लिये ज्योतिर्मय बना दे। ●

●

यदि हम आध्यात्मिक दृष्टि से जीवित हैं तो हमारी प्रेम और सेवा करने की क्षमता बढ़ती जाएगी। हम दूसरों के प्रति दयालु होंगे और अपने प्रति कठोर होंगे। आध्यात्मिक प्रभाव की विशेषता यही है कि वह आन्तरिक दृष्टि से कठोर और तपस्वी होता है, और बाह्यतः नम्र और क्षमा शील होता है!

—डा० राधाकृष्णन्

●

●

सच्ची आध्यात्मिकता व्यक्ति को सोना बना देती है। वह कष्टों की अग्नि में पड़कर निखरता है और चोट खाकर नम्र बनता है।

—अमर डायरी

●

० श्री विजय मुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

कविश्री जी की साहित्य-साधना गीत, कविता और काव्यों से प्रारम्भ हुई है। अपने जीवन के शैशव काल से लेकर सन् १६३५ तक उनकी गद्य कृति के दर्शन हमें नहीं होते। अपवाद रूप में दश-पांच निवन्धों को छोड़ कर-उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह सब काव्यमय था। काव्य के माध्यम से कवि जी, पहले उपदेशक, फिर सुधारक और वाद में क्रान्तिकारी रूप में प्रकट हुए हैं। उनका परम्परावादी रूप काव्य में कहीं पर भी नहीं है। परम्परा से विद्रोह तो अनेक गीतों और काव्यों में उभर कर आया है। रूढ़िवाद, जड़-क्रिया-काण्ड, परम्परा-वाद और विचारान्धता से कवि जी प्रारम्भ से ही दूर रहे हैं, और आज भी दूर हैं। आज सम्पूर्ण समाज में कविजी के नाम की धूम है। उनका सबसे अन्तिम और सबसे श्रेष्ठ काव्य सत्यहरिश्चन्द्र है, जिसमें गांधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद तक की विचारधाराओं का सुन्दर संतुलन, संकलन और प्रकाशन हुआ है। सन् [illegible] में इसका प्रकाशन हुआ था। इस प्रकार गीत, कविता और काव्य-तीनों में कविजी की काव्य-साधना प्रारम्भ होती है, और उनकी काव्य-साधना का सर्वोत्तम रूप सत्यहरिश्चन्द्र है।

यमुना एवं सरस्वती का संगम स्थल त्रिवेणी के रूप में समुपस्थित है, अगर प्राण-वान शब्द मेरे पास होते तो कुछ और भी कहा जाता। मुनिश्री जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में तो उनका स्वयं का साधनारत जीवन अप्रतिम प्रकाश बिखेर रहा है।

अन्त में मुनिश्री जी की महानता का, अपनी श्रद्धा का निष्कम्प दीप जला, अभिनन्दन करता हूँ। आपसे संत पुरुषों को पाकर वस्तुतः वसुन्धरा निहाल है। ईश्वर करे वह आप जैसे महान् रत्नों को और भी अवतीर्ण कर जगती की तमिस्रा को सदा-सदा के लिये ज्योतिर्मय बना दे। ●

●

यदि हम आध्यात्मिक दृष्टि से जीवित हैं तो हमारी प्रेम और सेवा करने की क्षमता बढ़ती जाएगी। हम दूसरों के प्रति दयालु होंगे और अपने प्रति कठोर होंगे। आध्यात्मिक प्रभाव की विशेषता यही है कि वह आन्तरिक दृष्टि से कठोर और तपस्वी होता है, और बाह्यतः नम्र और क्षमा शील होता है।

—डा० राधाकृष्णन्

●

●

सच्ची आध्यात्मिकता व्यक्ति को सोना बना देती है। वह कष्टों की अग्नि में पड़कर निखरता है और चोट खाकर नम्र बनता है।

—अमर डायरी

●

० श्री विजय मुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

कविश्री जी की साहित्य-साधना गीत, कविता और काव्यों से प्रारम्भ हुई है। अपने जीवन के शैशव काल से लेकर सन् १६३५ तक उनकी गद्य कृति के दर्शन हमें नहीं होते। अपवाद रूप में दश-पांच निवन्धों को छोड़ कर-उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह सव काव्यमय था। काव्य के माध्यम से कवि जी, पहले उपदेशक, फिर सुधारक और वाद में क्रान्तिकारी रूप में प्रकट हुए हैं। उनका परम्परावादी रूप काव्य में कहीं पर भी नहीं है। परम्परा से विद्रोह तो अनेक गीतों और काव्यों में उभर कर आया है। रूढ़िवाद, जड़-क्रिया-काण्ड, परम्परा-वाद और विचारान्वता से कवि जी प्रारम्भ से ही दूर रहे हैं, और आज भी दूर हैं। आज सम्पूर्ण समाज में कविजी के नाम की धूम है। उनका सवसे अन्तिम और सवसे श्रेष्ठ काव्य सत्यहरिश्चन्द्र है, जिसमें गांधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद तक की विचारधाराओं का सुन्दर संगुम्फन, संकलन और प्रकाशन हुआ है। सन् १६४५ में इसका प्रकाशन हुआ था। इस प्रकार गीत, कविता और काव्य-तीनों से कविजी की काव्य-साधना प्रारम्भ होती है, और उनकी काव्य कला का सर्वोच्च रूप हरिश्चन्द्र है।

कविश्री जी की गद्य साहित्य-साधना, सन् १६४१, के फरीदकोट के वर्षा वास में "महामन्त्र नवकार" के प्रकाशन से प्रारम्भ हुई है, जो आज भी बाधा-रहित गतिशील है। कविता के क्षेत्र को छोड़कर, अब वे गद्य में ही लिखना पसन्द करते हैं। गद्य-साहित्य में उन्होंने आज तक जो कुछ लिखा है, उसके इतने रूप उपलब्ध हैं—निबन्ध, संस्मरण, यात्रा, गद्य गीत, कहानी, जीवन, व्याख्या, सम्पादन, अनुवाद, प्रवचन और समालोचना। अभी ताजातर में उनके समीक्षात्मक तीन लेख प्रकाशित हुए, जिनसे समाज में खलबली मची हुई है। उनकी समालोचना-शक्ति का इनमें सर्वोच्च निखार प्रकट हुआ है, यह बात अलग है, कि कुछ जड़ क्रियाकाण्डी लोग उनका विरोध करते हैं। कतिपय क्रिया-जड़ साधुओं और साध्वियों ने भी उन समीक्षात्मक लेखों का विरोध किया है, पर उनकी आवाज, उद्घोषणा और भाषणों का आज के प्रगतिवादी युग में कुछ भी मूल्य नहीं है।

दार्शनिक कवि

०

उपाध्याय अमरचन्द्र जी महाराज, एक महान् सन्त हैं, अध्यात्म साधक है, गम्भीर विचारक और मनुजता के संदेशवाहक हैं। जीवन के कलाकार, युग-द्रष्टा, युग-स्रष्टा और युग-पुरुष हैं। क्योंकि उनके विचार किसी एक दिशा-विशेष में ही प्रवहमान नहीं हैं, अपितु वे सभी दिशाओं और विदिशाओं को आलोकित कर रहे हैं! महान् दार्शनिक और कवि प्लेटो के शब्दों में—Philosopher is the spectator of all time and existance. कविजी अपने युग की सम्पूर्ण प्रवृत्ति और सत्ता के द्रष्टा हैं। कविश्री जी का साहित्य किसी काल, व्यक्ति, देश एवं जाति विशेष से आबद्ध नहीं है। उनका साहित्य उनकी कठोर साधना एवं घोर तपस्या का मधुरफल है। वे अपने आप में पूर्ण हैं, अपने विचारों के वे स्वयं निर्माता हैं। वे किसी भी शक्ति के द्वारा अपने मन और मस्तिष्क पर नियन्त्रण रखने के पक्ष में नहीं हैं। अपने विचारों को स्पष्ट रूप में जन चेतना के समक्ष रखने का उनके पास अद्भुत साहस है। फिर भले ही कुछ विचार-भ्रष्ट लोग इसे धृष्टता कहें, अथवा हिप्पीपन कहें। परन्तु वे अपने पथ पर गतिमान् रहे हैं?

साहित्य, व्यक्ति के जीवन का साकार रूप है। साहित्य केवल जड़ शब्दों का समूह नहीं है; उसमें व्यक्ति का जीवन बोलता है। कविजी का साहित्य ही उनका यथार्थ परिचय है। उनके गीत धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक भावों से परिपूर्ण हैं। जैसाकि मैंने पहले लिखा था, अपनी साहित्य साधना के शैशव काल में ही हम उन्हें क्रान्ति का राग आलापते सुनते हैं। कविजी क्रान्ति का आलाप करते हैं, अपलाप नहीं, जबकि उनके विरोध में लिखने और बकने वाले लोग स्वयं अपने में विचार-व्यभिचार का आश्रय ग्रहण करके अपने को

शास्त्रानुप्राणित सिद्ध करने का दम्भ भरते हैं। कविजी यन्त्र-युग के पाषाण-हृदय मानव के जीवन में मानवीय चेतना जागृत करने का आग्रह करते हैं—

> तुम न सता-सताकर सबको,
> करो अपने प्रतिकूल ।
> पत्थर दिल को अब तो बनालो,
> अति ही सुकोमल फूल ।

काव्य-साधना

०

काव्य-साधना के दो पक्ष होते हैं—अनुभूति और अभिव्यक्ति। कविजी के काव्य में अनुभूति की तीव्रता है। कवि जी ने कभी विभूति से प्यार नहीं किया, उनका सम्पूर्ण प्रेम अनुभूति से ही रहा है। यही कारण है, कि वे वही लिखते हैं, और वही बोलते हैं, जो उनकी अनुभूति की सीमा में रहा है। उन्होंने जीवन का सूक्ष्म एवं गम्भीर परिशीलन तथा अवलोकन किया है। उनके गीत और कविता हृदय से निकले हुए शुद्ध भाव हैं, जिनमें न तो आडम्बर है और न वञ्चना एवं छलना। धार्मिक पक्ष में कविजी को बक-भक्ति पसन्द नहीं है।

> जिसकी रग-रग में न खोलता,
> भव्य भक्ति का अभिनव रक्त ।
> हृदय-हीन, श्रद्धा-विरहित वे,
> हो सकते हैं, क्यों कर भक्त ॥

कवि के शब्दों में, आज तो हृदय-शून्य और श्रद्धा-विकल लोग ही भक्ति की चर्चा अधिक करते सुने जाते हैं। क्योंकि उनमें कर्तृत्वशक्ति का अभाव होता है। वयोवृद्ध नहीं, विचार-वृद्ध लोग, फिर भले ही वे तीस वर्ष के युवा तुर्क ही क्यों नहीं, वे धर्म की चर्चा अधिक करते हैं, धर्म की साधना वे नहीं कर सकते। धर्म की साधना के लिए अभिनव रक्त, अर्थात् विचारों में परिपक्व एवं अनुभूति-युक्त होना चाहिए। रोटी के दो टुकड़ों के लिए कलम रगड़ने वाले साहित्यकार होने का दम्भ भरते हैं, पर वस्तुतः वे साहित्यकार नहीं हो सकते। नये युग की नयी भावनाओं से परहेज करने वाले न धार्मिक है, और साहित्यकार ही। स्वयं कविजी के शब्दों—में ही सुनिए—

'धर्म का आधार है—भावना। दर्शन का आधार है—बुद्धि-प्रसूत तर्क। कला का आधार है—मानवी मन की अभिरुचि। संगीत का आधार है—मन की मस्ती।"

"विचार, साधक के पथ के अन्धकार को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला आलोक है, और आचार, जीवन की उस शक्ति का नाम है, जो साधक को ऊर्ध्वगामी बनाती है।"

"साहित्य में अतीत काल की प्रेरणा, वर्तमान काल का प्रतिविम्ब और भविष्य काल की स्वर्णिम आशा होती है।"

कवि जी ने अपने जीवन में, जो काव्य साधना की है, उसे संपूर्ण रूप में यहाँ अंकित नहीं किया जा सकता। यूनान के दार्शनिक कवि प्लेटो ने कहा था—"जीवन सत्यं, शिवं सुन्दरम् है।" कविजी के गीतों में, कविताओं में और काव्यों में तीनों का सुन्दर समन्वय साकार दृष्टिगोचर होता है।

कविश्री अमर मुनि जी की वाणी एवं लेखनी में,

कविजी के गीतों का संकलन इन पुस्तकों में किया गया है—अमर-पद्य-मुक्तावली, अमर-पुष्पाञ्जलि, अमर-कुसुमाञ्जलि, अमर-गीताञ्जलि और संगीतिका। कविताओं का संग्रह इन पुस्तकों में किया है–कविता कुञ्ज, अमर-माधुरी, श्रद्धाञ्जलि, जगद्गुरु महावीर, जिनेन्द्र स्तुति और चिंतन के मुक्त स्वर। काव्य दो हैं—धर्मवीर सुदर्शन और सत्य हरिश्चन्द्र। इस प्रकार तेरह पुस्तकों की रचना कविजी ने की है। इसमें मुक्तक छन्द और गद्यगीतों की गणना नहीं की है।

सुधारवादी दृष्टिकोण :

०

कविजी ने जीवन का विकास करने के लिए और स्वस्थ जीवन जीने के लिए मदिरा, भांग और तमाखू जैसी नशीली वस्तुओं का त्याग करने की प्रेरणा ही नहीं, आग्रह पूर्वक उपदेश भी दिया है। कवि स्वयं गाता है—

० पाते दुःख बे-तोल शराबी.......

० बहु तेरी पी लई रे,
अव मत पीवो भंग।

० प्यारे वतन को चाय ने,
वरबाद कर दिया।
तमाखू पीते हैं नादान.......

इन गीतों में शराव, भंग, चाय और तमाखू पीने का निषेध किया गया है। चाय का निषेध करते हुए कवि ने तर्क दिया है, कि चाय में थीन और काफी में फिन नामक विष रहता है, जिससे शरीर और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक पद्धति से समझाने का प्रयत्न भी है।

गांधीवादी भावना का प्रभाव भी उनके गीतों में यत्र-तत्र सर्वत्र विखरा पड़ा है—स्वदेश प्रेम, स्वदेशी वस्तु और खादी पहनने का आग्रह करते हुए कविश्री जी कहते हैं—

- "विदेशी माल से रे,
  हो गया हिन्द वीरान ।"
- "दूर जब तक हिन्द से
  होगी न गोवध की प्रथा ।
  उन्नति की तब तलक,
  आशा न बिल्कुल कीजिए ।"

विभूति की नहीं, अनुभूति की सच्ची अर्चना हुई है !

सुखी हिन्द को यह बनाएगी खद्दर ।
गुलामी से सबको छुड़ाएगी खद्दर ॥"

अहा, बढ़ी-चढ़ी सबसे खादी,
सबसे आदी, सबसे सादी ।
शुद्ध धवल है, आनन्दकारी,
जैसे चन्दा अरु चाँदी ॥"

गांधी युग की विचार-धारा के समस्त सूत्र इन गीतों में आगए हैं। देश प्रेम, विदेशी वस्तु का त्याग, गो-पालन, चर्खा और खद्दर। ज्योतिर्धर जवाहराचार्य ने और कलमधर कविजी ने खद्दर के सम्बन्ध में बहुत लिखा है। भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी कविजी को खादी का अत्यन्त आग्रह है। वे आज भी खादी ही पहनते हैं। वे गांधी युग के आन्दोलनों से प्रभावित हैं, और गांधीजी के विचारों से भी।

कविजी साधक हैं, जीवन के कंटकमय पथ पर चलने वाले निर्भीक प्रवक्ता हैं और साथ में समाज सुधारक भी। समाज के पाखण्ड का वे तीव्रता से विरोध करते हैं। कविजी ने अपने कविताकुञ्ज में बाल-विवाह का तीव्र विरोध किया है। वास्तव में बाल-विवाह आधुनिक युग का समाज पर एक अभिशाप है। बाल-विधवाओं का करुण क्रन्दन मानव मानस को इस प्रथा को समूल नष्ट करने के लिए विवश कर रहा है। कवि के शब्दों में—

- "धर्म-वीरो, बाल-वय में, ब्याह करना छोड़ दो।
  इस विषैली कुप्रथा पर, अब तो मरना छोड़ दो॥"
- "बुढ़ापा है, अब तो न शादी कराओ।
  बना के बहू हाय ! बेटी-सी कन्या।
  न भारत में अब विधवाएँ बढ़ाओ॥"

[illegible] इन गीतों में कितनी वेदना है। सुरा और सुन्दरी [illegible] संस्कृति का मधुर बोध देकर सुसंस्कृत [illegible]

संकेत ही नहीं करते, बल्कि उस पाप से दूर रहने का उपदेश भी देते हैं। अपने युग के मानव को भगवान् महावीर का जाति-विरोध सिद्धान्त भी बताते हैं—

> ० शूद्र की मुक्ति नहीं, अफसोस है क्या कह रहे ?
> वीर की तौहीन है, यह सोच लो, क्या कह रहे ?"

अमर-काव्य में नारी जीवन

०

भारत में प्राचीन काल से ही नारी जाति के जीवन को उपेक्षा की दृष्टि से और हीन भावना से देखा गया है। परन्तु वर्तमान युग के विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने नारी जाति के गौरव को समझा। उन्होंने अपने काव्यों में नारी के जीवन को उठाने का सफल प्रयत्न किया। हिन्दी साहित्य के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साकेत महाकाव्य में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के जीवन का जो मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर चित्रण किया है, वह अपने आपमें अद्भुत है। कवि ने अपने यशोधरा काव्य में बुद्ध की पत्नी यशोधरा का सजीव चित्रण करके नारी के जीवन को गौरवमय बना दिया। छायावादी महाकवि जयशंकर प्रसाद ने, महादेवी वर्मा ने और निरालाजी ने भी नारी जीवन को गरिमा पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। कविवर पन्त तो कहते हैं—

> "मुक्त करो नारी को मानव !
> युग-युग की कारा से ॥"

कविजी ने भी अपने काव्यों में नारी-जीवन के सम्बन्ध में इसी भावना को व्यक्त किया है। अपने काव्य "सत्य हरिश्चन्द्र" में नारी के जीवन को उज्ज्वल स्वरूप में अंकित किया है—

> ० "नारी क्या कर्तव्य-भ्रष्ट ही
> करती जग में मानव को ?
> देश-जाति के जीवन में क्या,
> पैदा करती लाघव को ॥"

> ० "कहाँ पूर्व युग तारा देखो,
> निष्कलंक पथ पर चलती।
> स्वयं भोग तज पति के हित,
> दृढ़ त्याग-साधना में ढलती ॥"

> ० "डरने की क्या बात, आपकी
> दासी हूं मैं भी स्वामी।
> वीर क्षत्रिया बाला हूं, मैं
> श्री चरणों की अनुगामी।"

कवि ने अपने काव्यों के नारी पात्रों में प्रसुप्त वीरत्व एवं गौरव को जगाने का सफल प्रयास किया है। उपेक्षा और हीन-भावना को उसके जीवन-क्षितिज से दूर करने का प्रयत्न किया है। उसे विज्ञान युग का आलोक और प्राचीन संस्कृति का गौरवमय भाव प्रदान किया है।

मानवीय-भावना

०

जब तक कवि अपने काव्य में मानव-भाव को जागृत नहीं करता, तब तक वह लोक विश्रुत कवि बनने की क्षमता नहीं रख सकता। क्योंकि कवि के गीत, कविता और काव्य—ये सब धरती के मानव के लिए हैं, अमर-लोक के देवों के लिए नहीं। कवि का सन्देश है, कि तुम भले ही अनन्त आकाश में चमकने वाले तारों से प्रेरणा लो, पर, तुम्हें प्यार तो धरती के इन फूलों से ही करना होगा। साकेत के राम कहते हैं—

"सन्देश यहां मैं नहीं, स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही, स्वर्ग बनाने आया॥"

राकेट युग के मानव को इससे सुन्दर और इससे मधुर संदेश और क्या हो सकता है। अपने "हरिश्चन्द्र" काव्य में कविजी ने भी यही सन्देश अपने युग के मानव को दिया है। "स्वर्ग की बात मत करो। पहले मानव बनने की बात करो। सोचो, और विचार करो, कि तुम मानव हो, और तुमको मानवता का विकास करना है। कविजी अपने "सत्य हरिश्चन्द्र" और "धर्म वीर सुदर्शन" में मानवतावादी दृष्टिकोण लेकर चले हैं—

० "मानव जग में वीर पुरुष ही,
नाम अमर कर जाते हैं।
कायर नर तो जीवन भर बस,
रो-रोकर मर जाते हैं॥"

० "धर्म वीर नर संकट पाकर,
और अधिक दृढ़ होता है।
कन्दुक चोट भूमि की खाकर,
दुगुना उत्प्लुत होता है॥"

० "सागर सम गम्भीर—
सज्जनों का होता है, अन्तस्तल।
पी जाते हैं, विष-वार्ता भी,
चित्त नहीं करते चंचल॥"

° जीवन पाने पर तो सारी—
दुनियां हड़-हड़ हँसती है ।
वन्दनीय वह जो मरने
पर भी रखता मस्ती है ।"

कविजी ने अपने प्रथम काव्य "धर्मवीर सुदर्शन" में शील और सदाचार का सन्देश दिया है। द्वितीय काव्य "सत्य हरिश्चद्र" में सत्य का बोध पाठ दिया है। जीवन विकास के लिए कविजी शील और सत्य को आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य समझते हैं। शीलव्रत धारी सुदर्शन और सत्यव्रतधारी हरिश्चन्द्र मानव-जाति के आदर्श हैं। उक्त दोनों काव्यों में उन्होंने धर्म, दर्शन और संस्कृति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। काव्य-कला की दृष्टि से भी दोनों काव्यों में प्रकृति-चित्रण सुन्दर हुआ है। रस की सरिता और अलंकारों की झंकार है। भाव, भाषा और शैली सभी सुन्दर एवं मधुर हैं।

अध्यात्मवादी व्यक्तित्व :

°

उपाध्याय अमर चन्द्र जी महाराज का जीवन एक अध्यात्मवादी सन्त का जीवन है। उनका पावन एवं पवित्र जीवन का मूल मन्त्र अध्यात्मवाद है। उनके गीतों में, कविताओं में और काव्यों में, राष्ट्र, समाज, धर्म, दर्शन, संस्कृति के स्वर जहाँ मुखर हैं वहां उनके मूल में अध्यात्म तत्व अवश्य रहा है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा, कि अध्यात्मवाद की पृष्ठभमि पर ही, उनका काव्य मुखरित हुआ है। उनके जीवन का अध्यात्म पक्ष, उनके गीतों में अधिक स्पष्टता के साथ उभर कर आया है—

° "मनुष्य बन लगा दौड़, विषयों से मुख मोड़।
भूल न जाना, ओ प्राणी ! भूल न जाना ॥"

° "खोल मन ! अब भी आँखें खोल !
उठा लाभ कुछ, मिला हुआ है—
जीवन अति अनमोल ॥"

° "हठीले भाई ! जाग-जाग अन्तर में।
छाई काली घटा घुमड़ के,
आया अन्धड़ प्रबल उमड़ के,
ज्ञान-दीप बुझने ना पाए, सावधान अन्दर में ॥"

° "मैं न हूँ, किसी तरह भी हीन।
अतल-अमल आनन्द-जलधि का,
मैं हूँ, सुखिया मीन ॥"

कवि के इन गीतों में और इसी प्रकार के अन्य गीतों में अध्यात्मवाद साकार हो उठा है। "अमर गीताञ्जलि" में, अध्यात्म गीतों का ही संकलन हुआ है। अपने को न भूलो ! मन की आँखें खोलो ! विषयों से विमुख बनो ! बाहर में नहीं, अन्तर में जागो। ज्ञान दीप को बुझने न दो। मैं, अतल और अमल जीवन सागर का सुखी मीन हूँ क्योंकि सुख ही मेरा स्वरूप है। मैं, हीन नहीं हूँ, महान् हूँ।" कवि का सन्देश है, कि तुम अपनी खोज, अपने ही में करो। समस्या अन्दर की है, समाधान भी अन्दर में ही मिलेगा। निजत्व में ही जिनत्व का दर्शन कर सकोगे।

भक्तिवादी कविता :

o

भक्ति का मूल श्रद्धा और आस्था में है। कविजी के अनेक गीतों में और कविताओं में भक्ति की सरस सरिता मन्द-मन्द बही है। "जिनेन्द्र स्तुति" में संस्कृत छन्द की लय में भक्ति-रस-पूर्ण कविताएँ हैं, जिनमें तीर्थंकरों की स्तुति की है, भाव, मधुर हैं भाषा, ललित है, शैली, सुन्दर है। तीर्थंकरों में भगवान् महावीर के भक्ति पूर्ण गीतों की प्रचुरता हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के भी अनेक गीत हैं। इस प्रकार उनकी कविताओं में, और गीतों में, भक्ति-रस का खूब परिपाक हुआ है।

कवि की कविताओं के मुख्य विषय इस प्रकार हैं—गुरु-पूजा, पुस्तक-प्रशंसा, प्रश्नोत्तरी, कवि और शुक, भक्ति-पोत, अनेकान्त दृष्टि, बक और हंस, उद्‌बोधन, उपदेश, त्याग, तपस्या, आदि। "श्रद्धाञ्जलि" में कवि ने अपनी सम्प्रदाय के पूर्व युग पुरुष श्रद्धेय रत्नचन्द्रजी महाराज के जीवन का सुन्दर वर्णन किया है। "जगद्‌गुरु महावीर, में भगवान् के उपदेशों की अभिव्यक्ति की है। "अमर माधुरी" में भक्ति और उपदेशात्मक एवं संवादात्मक कविताओं का संकलन किया गया है।

श्रद्धेय चरण कवि जी महाराज—गीतकार, कविता-रचयिता और काव्य-कार—सभी कुछ हैं। उन्होंने अपने गीतों में और काव्यों में प्राचीन युग की भावनाओं को संवारा है, वर्तमान युग की भावनाओं को सजाया है, और भविष्य के लिए आशा के मधुर स्वप्न संजोये हैं। उनकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के मंगलमय पर्व पर मेरी हार्दिक शुभ भावनाएँ हैं।

युग-युग जीओ,
हे युगावतार, हे युगाधार !

★★

कविश्री जी के

समय समय पर व्यक्त, कविश्री जी के विचारों का एक संकलन :

० संकलन : सुरेन्द्रकुमार, चपलावत

सम्यग् दर्शन और शास्त्र

०

सम्यग्दर्शन क्या है—शुद्ध आत्म-स्वरूप की प्रतीति, आत्मा और देह का, जड़ और चेतन का भेदविज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक समस्त शास्त्रों को सिर आँखों पर चढ़ाए रहने पर भी कोई सम्यग् दृष्टि नहीं हो सकता। गंगा, गोदावरी, सीता, सीतोदा आदि नदी और निषध, नील आदि पर्वतों की लम्बाई चौड़ाई तो अनन्त बार नाप आये। नरकों के आथड़े-पाथड़े और स्वर्गों के एक-एक विमान को भी कितनी ही बार स्पर्श कर चुके। उनसे ही यदि सम्यक् दर्शन आता तो कब का ही आ जाता !

मानव की आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने वाले शास्त्रों में भूगोल-खगोल का वहुत कुछ वर्णन तो बाद में चढ़ा दिया गया है। अन्यथा अध्यात्म के चरम शिखर पर पहुँचे महान् आत्माओं को इन वर्णनों से क्या लेना देना था ? इनसे कौन सी आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती है ? महापुरुषों का उपदेश भव्य जीवों को आत्मबोध कराने का है, न कि भूगोल-खगोल-शास्त्री बनाना। अतः इनसे आत्मा के सम्यग्-दर्शन का कोई सम्बन्ध नहीं है।

वस्तुतः सम्यग् दशन आत्म-स्वरूप की अनुभूति है। हम शास्त्र पढ़ते हैं, तो इसीलिए कि उनमें उन सत्यद्रष्टाओं की अनुभूतियाँ, उपलब्धियाँ हैं, अध्यात्म के सम्बन्ध में उन्हें जीवन में जो प्रतीतियाँ उपलब्धियाँ हुई उनका वर्णन शास्त्र में है।

—श्री अमर भारती, अगस्त १९६९

कौन-सा शास्त्र सत्य मानें?

एक प्रश्न है—कौन सा शास्त्र सत्य मानें? कौनसा असत्य? हमारे समक्ष शास्त्रों का विशाल अम्बार लगा हुआ है, हजारों हजार पुस्तकें, उनके सुन्दर-सुन्दर संस्करण, स्वर्णाक्षरों में लिखे हुए ढेरसारे रखे हैं। इसमें से सही-गलत का भी निर्णय करना बड़ा ही कठिन और उलझनभरा कार्य है। पाठक की बुद्धि गुमराह हो जाती है, और वह सही निर्णय नहीं कर पाती।

भगवान महावीर ने साधक की इस समस्या का समाधान करते हुए कहा है—कौन सा शास्त्र सत्य है और कौनसा असत्य, यह निर्णय शास्त्र पर नहीं तुम्हारी बुद्धि पर निर्भर करता है। तुम्हारी दृष्टि यदि सत्यानुलक्षी है, विवेक जागृत है, तो संसार का प्रत्येक शास्त्र तुम्हारे लिए सत्य हो सकता है, प्रकाश दे सकता है। उन्होंने कहा—

'सम्मदिट्ठिस्स सम्मं सुयं,
मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छा सुयं।'

और यह बात उन्होंने दूसरों के शास्त्र के लिए ही नहीं, किन्तु अपनी वाणी के लिए भी कही। "मेरी वाणी भी तुम्हारे लिए तभी सम्यक् श्रुत है जबकि तुम्हारी दृष्टि सम्यक् है, तुम्हारा विवेक ठीक है, अन्यथा वह भी मिथ्या शास्त्र की कोटि में आ सकती है।"

शास्त्र के सम्बन्ध में भगवान महावीर ने बहुत बड़ी बात कही है। शास्त्रों के सम्बन्ध में चली आती पुरानी धारणा को तोड़कर उन्होंने एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष दृष्टिकोण दिया है। शास्त्र की सत्यता का मूल आधार प्रवक्ता व्यक्ति को नहीं, अध्येता की सम्यक् दृष्टि को माना है। इसी दृष्टिकोण को लेकर हमारे उत्तरवर्ती आचार्यों ने कहा है—

स्वागमं रागमात्रेण द्वेषमात्रात् परागमम्।
न श्रयामस्त्यजामो वा किन्तु मध्यस्थया दृशा॥

शास्त्र और ग्रन्थ

०

प्राचीन ग्रन्थों एवं कोशों में शास्त्र और ग्रन्थ प्रायः एकार्थक हैं। कृतान्त, आगम, सिद्धान्त, ग्रन्थ और शास्त्र परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं। 'कृतान्तागम-सिद्धान्तग्रन्थाः शास्त्रमतः परम्'।[1] इस प्रकार एकार्थक होते हुए भी मैंने शास्त्र और ग्रन्थ में कुछ अन्तर रखा है, जो प्राचीन जैन आचार्यों एवं मनोषियों की भावना पर आधारित है। मैं शास्त्र को आत्मशुद्धि का प्रतिपादक आध्यात्मिक उपदेश मानता हूँ, और ग्रन्थ को इधर-उधर के विचारों का एक संकलन मात्र। शास्त्र असत्य नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। ग्रन्थ में कुछ सत्य भो हो सकता है, कुछ असत्य भी हो सकता है। शास्त्र अनुभूत सत्य पर आधारित होता है, और ग्रन्थ प्रचलित एवं अनुमानित मान्यताओं पर आधारित।

चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ इसलिए ग्रन्थ हैं कि वे समग्रभाव से ज्योतिष के ग्रन्थ हैं, उनमें धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना का कुछ भी अंश नहीं है। अतः वह ग्रन्थ हैं, शास्त्र नहीं। यदि पर्यायवाची होने के नाते उन्हें शास्त्र भी कहें, तो वे ज्योतिष शास्त्र हैं, धर्मशास्त्र नहीं। जैन परंपरा ज्योतिष के ग्रन्थों को पापश्रुत कहती है,[2] धर्मश्रुत नहीं। सर्वज्ञ वीतराग पापश्रुत की प्ररूपणा कैसे कर सकते हैं? अन्य संप्रदायों के ज्योतिष ग्रन्थ पापश्रुत हैं, और जैनों के ज्योतिष ग्रन्थ धर्म-श्रुत हैं, यह नहीं हो सकता। दूसरों के मुँह की गाली गाली है, पाप है, और हमारे मुँह की गाली, गाली नहीं, धर्म है—यह बात कोई कैसे प्रबुद्ध मानस मान सकता है। यदि ज्योतिष पापश्रुत है, तो वह सर्वत्र पापश्रुत है। और जब पाप-श्रुत है, तो भगवान् वीतराग पापश्रुत के उपदेष्टा कैसे हो सकते हैं।

—श्री अमर भारती, अक्टूबर १९६९

धर्म : केवल परलोक के लिए नहीं

०

मैं जब इन बँधी-बँधाई मान्यताओं, और चली आ रही परंपराओं की ओर देखकर पूछता हूं—"धर्म किस लिए है?" तो एक टकसाली उत्तर मिलता है—धर्म परलोक सुधारने के लिए है? "यह सेवा-भक्ति, दान-पुण्य किसलिए? परलोक के लिए?" हम वरावर कहते आये हैं—"परलोक के लिए कुछ जप-तप कर लो, अगले जीवन के लिए कुछ गठरी वाँध लो।" मंदिर के घंटे-घड़ियाल—केवल परलोक-सुधार का उद्घोष करते हैं, हमारे औघे-मुखपत्ती जैसे परलोक-सुधार की नामपट्टियाँ वन गये हैं। जिधर देखो, जिधर सुनो 'परलोक की आवाज इतनी तेज हो गई है कि कुछ और सुनाई ही नहीं देता। एक अजीव कोलाहल, एक अजीव भ्रांति के वीच हम इस जीवन को जी रहे हैं, केवल परलोक के लिए!

१—धनंजय नाममाला। २—समवायांग २९वां समवाय।

हम आस्तिक हैं, पुनर्जन्म और परलोक के अस्तित्व में हमारा विश्वास है, किंतु इसका यह मतलव तो नहीं कि इस परलोक की बात को इतने जोर से कहें कि इस लोक की बात कोई सुन ही नहीं सके। परलोक की आस्था में इस लोक के लिए आस्थाहीन होकर जीना कैसी आस्तिकता है ?

मेरा विचार है, यदि परलोक को देखने-समझने की ही आपकी दृष्टि बन गई है, तो इस जीवन को भी परलोक क्यों नहीं समझ लिया जाए ? लोक-परलोक सापेक्ष शब्द हैं। पुनर्जन्म में यदि आपका विश्वास है, तो पिछले जन्म को भी आप अवश्य मानते हैं। उस पिछले जीवन की दृष्टि से क्या यह जीवन परलोक नहीं है ? पिछले जीवन में आपने जो कुछ साधना-आराधना की होगी, उस जीवन का वह परलोक यही तो है। फिर आप इस जीवन को भूल क्यों जाते हैं ? परलोक के नाम पर इस जीवन की उपेक्षा, अवगणना क्यों कर रहे हैं ?

भगवान् महावीर ने साधकों को संवोधित करके कहा था—"आराहए लोगमिणं तहा परं"—साधको ! तुम इस लोक की भी आराधना-साधना करो, परलोक की भी। लोक और परलोक में कोई दो भिन्न सत्ता नहीं है। जो आत्मा इस लोक में है, वही परलोक में भी जाती है, जो पूर्व जन्म में थी, वही इस जन्म में आई है। इसका मतलव है—पीछे भी तुम थे, यहाँ भी तुम हो और आगे भी तुम रहोगे। तुम्हारी सत्ता अखण्ड और अनंत है। तुम्हारा वर्तमान इहलोक है, तुम्हारा भविष्य परलोक है। जिन्दगी जो नदी के एक प्रवाह की भाँति क्षण-क्षण में आगे बहती जा रही है, वह लोक-परलोक के दो तटों को अपनी करवटों में समेटे हुए है।

—श्री अमर भारती, जुलाई १९६९

किताबपरस्ती

कुछ लोक इस बात के आग्रही होते हैं कि अमुक शास्त्र में, ग्रंथ में या पुस्तक में यह लिखा है, इसलिए यही सही है। कुछ प्राकृत के ग्रंथ को महत्त्व देते हैं, कुछ पालि की पुस्तक को, कुछ संस्कृत के ग्रंथ को और कुछ अरवी-फारसी की किताव को। पुस्तक का आग्रह एक प्रकार की विचारमूढ़ता है, केवल धर्म के क्षेत्र में ही नहीं, कानून, विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में भी जव इस ग्रंथवाद या किताव-परस्ती को देखता हूँ तो सोचता हूँ, क्या विचित्र स्थिति है ? जिस किताव को मनुष्य ने वनाया, वही किताव मनुष्य पर शासन कर रही है, मालिक गुलाम वन गया है, और गुलाम मालिक को अपने इशारों पर चला रहा है। यह किताबपरस्ती, [illegible] जव तक हमारे दिमागों से नहीं निकलेगी, तव तक हम अपने अन्दर की आवाज कैसे सुन सकेंगे ? और कैसे सही निर्णय कर सकेंगे ?

—श्री अमर भारती, मार्च १९६९

श्रद्धेय उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द जी महाराज एक सफल लेखक, कवि, प्रवचनकार, उच्चकोटि के साधक एवं स्थानकवासी समाज के महान संत हैं। कवि श्री जी के अन्दर एक महान-साधक के सभी गुण विद्यमान हैं। उनका जीवन उन महानसंतों में से है जिन्होने अपना जीवन आत्म-साधना तथा अध्यात्म मार्ग की खोज में लगा रक्खा है। वे अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को भी इसी सन्मार्ग पर बढ़ चलने की प्रेरणा भी देते हैं।

श्रद्धेय कवि श्री जी म० के निकट सम्पर्क एवं उनके चरणों में लगभग २५ वर्षों के लम्बे समय तक बैठने का सौभाग्य मिला है। आप श्री जी के उज्ज्वल चरित्र एवं महान जीवन से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। आपकी साधना के ५० वर्ष पूरे हो रहे हैं, इसलिए इस शुभ अवसर पर उनके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति ने मुझे दो शब्द लिखने के लिए प्रेरित किया है।

कविश्री जी महाराज का जीवन पवित्रता से ओत प्रोत है। आपके विचार इतने पवित्र एवं स्पष्ट हैं, कि श्रोता मुग्ध होकर सुनता रहता है, कभी थकता नही है। कवि श्री जी की वाणी एवं साहित्य को जो कोई भी सुनता एवं पढ़ता है, वह सदा के लिए उनका हो जाता है। ऐसे अनेक व्यक्तियोंसे मिलने का मुझे सौभाग्य मिला है जो कवि श्री जी महाराज से प्रत्यक्ष में कभी नहीं मिले थे, और उन्होने केवल कवि श्री जी का साहित्य ही पढ़ा था। वे दर्शन करने के लिए केवल इसलिए आते है कि कवि श्री जी म० के साहित्य ने उनको प्रभावित किया है। इस प्रकार के व्यक्तियों में अजैनों की भी संख्या

एक महान् साधक

० रामधन शर्मा,

बी० ए०, साहित्य रत्न 'प्रभाकर'

होती है जो कि दूर दूर से दर्शन करने एवं उनका साक्षात्कार के लिए आते हैं। कवि श्री जी के विचारों को सुनकर वे संतुष्ट एवं प्रसन्न चित्त लौटते हैं। वे आश्चर्य करते हैं कि कवि श्री जी म० के विचारों एवं साहित्य में साम्प्रदायिकता एवं दूसरे धर्मों के प्रति द्वेष भाव के लिए कोई स्थान नहीं है।

दिनचर्या की एक झांकी

०

कवि श्री जी म० को जब भी कोई देखता है तो नित्य के ध्यान के पश्चात् वे पढ़ते हुए मिलेंगे या चिंतन मनन की मुद्रा में होगें। या विचार चर्चा में होगें या किसी आगन्तुक के प्रश्नों के उत्तर दे रहे होगें। इसके अतिरिक्त जो भी समय मिलता है उसका सदुपयोग वे कुछ न कुछ लिखते रहने में करते हैं। जब उनके पास कोई नहीं होता है, तो वे या तो पढ़ते रहते हैं या लिखते रहते हैं। इस प्रकार यह कार्यक्रम प्रातः से शाम तक चलता रहता है। कठोर से कठोर परिश्रम करने वाला व्यक्ति भी उनके इस व्यस्त जीवन से आश्चर्य-चकित हो जाता है और कभी कभी तो आगन्तुक भी कवि श्री जी से निवेदन करते हैं कि इतनी उम्र में अपना इतना अधिक समय चिंतन-मनन लेखन एवं प्रवचन आदि में नही लगाना चाहिए, क्यों कि यह सब कुछ स्वास्थ के लिए अहितकर है, लेकिन कवि श्री जी पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यहां तक देखा गया है कि श्रद्धालु व्यक्तियों की ज्ञान पिपासा को शांत करने में कभी कभी आहार का भी समय निकल जाता है और वे निराहार ही रह जाते हैं।

साहित्य साहित्यकार के व्यक्तित्व का परिचय देता है। साहित्य में लेखक की आत्मा बोलती है। साहित्यकार जीवन-समुद्र के मंथन से जो अमृत निकलता है, उसे विश्व में बांटता है। वह अपनी कला एवं अनुभव से संसार के सामने एक नया मार्ग प्रस्तुत करता है और प्राणी-मात्र को सन्मार्ग पर चलने की सत्प्रेरणा देता है।

जिस जीवन में आदर्श के प्रति निष्ठा और चरित्र में दृढ़ता भरी हुई है, वह जीवन, प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी भी पराजित नहीं हो सकता।

कवि श्री जी म० ऐसे ही साहित्यकारों में से एक हैं। स्थानकवासी जैन समाज में वर्तमान काल के वे सर्वोपरि साहित्यकार हैं। उन्होंने राष्ट्र भाषा हिन्दी में जो महत्वपूर्ण एवं लोक-प्रिय साहित्य दिया है, वह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ है, जो कि अनेक वर्षों तक निरन्तर सत्प्रेरणा देता रहेगा एवं भूले भटके मानव को मार्ग-दर्शन कराता रहेगा। आपने अब तक हिन्दी संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं में छोटे-बड़े लगभग १०० ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी रचनाएं गद्य, पद्य, निबन्ध कहानी, अनुवाद, प्रवचन आदि के रूप में प्रकाशित हुई हैं। यही नहीं, उन्होंने जहां विद्वानों के लिए साहित्य तैयार किया है वहां कम पढ़े लिखे व्यक्तियों एवं बच्चों के लिए भी शिक्षाप्रद साहित्य लिखा है। उन्होंने निशीथ-चूर्णी जैसे विशाल ग्रन्थ का भी संपादन किया है और बच्चों के लिए जैन बाल-शिक्षा, आदर्श कथा एवं कथामाला के अन्तर्गत कहानियों की पुस्तकें भी तैयार की हैं। आपके साहित्य की मांग भारत के कोने कोने से निरन्तर आती रहती है। जर्मनी, नेपाल, अमेरिका आदि में भी आपका साहित्य गया है। संस्था को इस प्रकार के बहुत से पत्र

प्राप्त होते रहते हैं जिनमें कविश्री जी के साहित्य की मांग रहती है। इस प्रकार आपके साहित्य के प्रति पाठकों की बड़ी श्रद्धा एवं रुचि है।

श्रद्धेय कवि श्री जी म० सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अभिनन्दनीय एवं अनुकरणीय हैं। मानव समाज के वे एक आदर्श हैं। समाज को कवि श्री जी म० से बहुत कुछ आशा है। उन्होंने अपने साहित्य एवं उपदेशों के द्वारा समाज को बहुत कुछ दिया है। आज भी उनका विचार-प्रवाह निरन्तर प्रवाहित है और युग-युग तक प्रवाहित होता रहेगा। आप अपनी कठोर साधना एवं तपस्या के ५० वर्ष पूरे करके इक्यावनवे वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं इसलिए मैं उनके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति से प्रेरित होकर हृदय से अभिनन्दन करता हुआ उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। ●

जीवन में वह मनुष्य निश्चित ही सफल होता है, जो अडिग आस्था के साथ अपने कर्तव्य को पूरा करता चलता है। कर्तव्य की ओर, और केवल कर्तव्य की ओर ही देखता चलता है—साहस और निष्ठा के साथ।

राजस्थान की एक लोककथा है कि एकबार राजस्थान के एक प्रदेश में भयंकर सूखा पड़ा। जमीन पर घास तक भी न उग सकी। फिर भी एक किसान, जो अपने गाँव का मुखिया था और सबसे महनती भी, वह खुरपी लेकर रोज खेत पर जाता।

पानी नहीं बरसा, खेत सूखे थे, जमीन प्यासी थी, फिर भी वह बराबर खेत में खुरपी चलाता रहा।

एक दिन बादलों ने किसान से पूछा—"खेत में घास है ही नहीं, फिर बेकार में इतनी मेहनत क्यों करते हो?"

किसान ने धैर्य के साथ उत्तर दिया—इसलिए कि कहीं मैं घास छीलना ही न भूल जाऊं।

किसान का उत्तर सुनकर बादलों को लगा कि "कहीं वे भी बरसना न भूल जायें" अत: वे खब जम कर बरसे! प्यासी धरती तृप्त हो उठी।

—अमर डायरी

विचार क्रांति के उद्घोषक कविश्री

उपाध्याय अमरमुनि

○ **वीरेन्द्रसिंह सकलेचा** एम० ए०

क्या आप जानते हैं, उपाध्याय कविरत्न श्री अमरमुनि को, जिनसे ताज-नगरी आगरा गौरवान्वित है—हाँ, मैं कवि जी को जानता हूं और अच्छी तरह परिचित हूँ।

उनका लम्वा और भरापूरा शरीर है। कान्तिमय श्यामवर्ण। मधुर मुस्कान-शोभित मुख, विशालभाल, चौड़ा वक्षस्थल प्रलम्ववाहु, सिर पर विरल और धवल केश-राशि। उपनेत्र में से चमकते-दमकते तेजोमय नेत्र, जो सम्मुखस्थ व्यक्ति के मनस्थ भावों को परखने में परम प्रवीण हैं। सफेद खादी से समाच्छादित यह प्रभावकारी और जादूभरा वाहरी व्यक्तित्व, आन्तरिक विशुद्ध व्यक्तित्व का अव्यभिचरित अनुमान है, सादा जोवन उच्च विचार।

सीधा-सादा रहन सहन। साधु जन प्रायोग्य परिमित उपकरण। धर्म दर्शन और सिद्धान्त प्रतिपादक कतिमय ग्रन्थ, वस यही तो उपाध्याय कविरत्न श्रद्धेय अमरमुनि जी महाराज की दृष्टि से अपनी सम्पत्ति है।

दिन में अधिकतर वे पढ़ने और लिखने का काम करते हैं। रात्रि में ध्यान चिंतन और स्वाध्याय करते हैं। आज भी ग्रन्थ के ग्रन्थ उन्हें मुखाग्र हैं। सारी रात व्यतीत हो जाने पर भी उनकी वाग्धारा वन्द न होगी, वे चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। आगम, दर्शन और धर्म विपयक ग्रन्थों के उद्धरण आप उनसे कभी भी पूछ सकते हैं, वे आपको प्रसंग सहित और स्थल सहित वता देंगे। यह कोई दैवी चमत्कार नहीं है, यह उनका अपना काम है। अपनी लगन है। उन्होंने जो कुछ भी अपने जीवन का विकास किया है, वह अपने परिश्रम के बल पर ही किया है। उनका व्यक्तित्व इतना अद्भुत और अनोखा है कि न वह अपने पर अन्याय को सहन करता है, और न दूसरों पर होने वाले अन्याय को देख ही सकता है। यह व्यक्तित्व इतना शक्तिमान है कि उसके सामने आकर विरोधी भी अनुरोधी वन जाता है।

कवि जी ने समाज को नया विचार दर्शन दिया। समाज के इतिहास को नया मोड़ दिया। उन्होंने अपने जीवन की साधना से अतीत के अनुभवों का, वर्तमान के परिवर्तन का और भविष्य की सुनहरी आशाओं का साक्षात्कार किया है।

धर्म, दर्शन और संस्कृति की उन्होंने युगानुकूल व्याख्या की है। उन्होंने कहा है, कि—जो गल-सड़ गया है, उसे फेंक दो और जो अच्छा है उसकी रक्षा करो। कविजी ने अपने सुधारवादी दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए एक बार कहा था, "लोग सुधार के नाम से क्यों डरते हैं ? सुधार डरने की वस्तु नहीं है, वह तो जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। सुधार से न तो कभी धर्म विकृत होता है, और न धर्म की परम्परा ही कभी दूषित होती है। सुधार के बिना साधना और साधना-हीन सुधार दोनों ही वास्तव में पंगु हैं।"

कवि जी समाज और जीवन दोनों का सुधार चाहते हैं। सुधार के लिए यह आवश्यक है कि जो अन्धविश्वासों का आवर्ण मानवमन पर छा गया है उसे दूर किया जाये। यह आवर्ण हटाना कोई आसान कार्य नहीं है। क्योंकि बहुत से स्वार्थी और दंभी व्यक्ति जिनको आता जाता कुछ नहीं है, जो स्वाध्याय और ज्ञान से कोसों दूर हैं, अन्धविश्वास के आधार पर समाज के भोले-भाले लोगों को फुसलाकर अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं, अतः जब कभी कोई साहसी महापुरुष सुधार के लिए आवाज लगाता है, तो उन लोगों को वेदना होती है।

किन्तु कवि जी ऐसे लोगों की कभी परवाह नहीं करते, वे तो जन्मसिद्ध क्रान्तिकारी हैं। उनके रग-रग में क्रान्ति की विचारधारा समाई हुई है। मार्ग की रुकावट उनको दृढ़ बनाती है। हर बाधा नया उत्साह देती है। हर उलझन नई दृष्टि देती है। उनमें राम जैसी संकल्प शक्ति है। हनुमान जैसा उत्साह एवं धैर्य। अंगद जैसी दृढ़ता एवं वीरता है। उन्हें अपने मनोबल पर विश्वास है। दूसरे के बल पर वे कभी कोई काम नहीं करते। दूसरे के सहयोग का वे सत्कार अवश्य करते हैं। विपत्ति आती है पर उनके साहस को देखकर लौट जाती है। वे अपने पथ पर सदा अडिग होकर चलते हैं। वे मानव हैं, पर मानव होकर भी देव हैं।

विश्व के महानतम देश अमेरिका ने जब अपोलो ११ और अपोलो १२ के द्वारा चन्द्रमा पर विजय प्राप्त कर ली तो [illegible] के धर्मावलम्बियों में खलबली मच गई। विभिन्न ध[illegible] [illegible] के बारे में जो उपदेश दिये थे वे गलत स[illegible] अत[illegible] के चन्द्र विजय सम्बन्धी अनेक प्रश्न धर्माचार्य[illegible] भी ऐसे प्रश्न उपस्थित होना [illegible]। उस समय कवि जी [illegible]

जिज्ञासु श्रावकों ने प्रश्न पूछा" "जैन साहित्य के चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि आगमों में प्रतिपादित वर्णन असत्य प्रमाणित हो गये हैं। यदि चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि ज्योतिष ग्रन्थ सर्वज्ञ भाषित हैं, भगवद्वाणी है तो इनके कथन असत्य कैसे हो गये ? क्या तो ये ग्रन्थ भगवद् भाषित नहीं है यदि हैं तो भगवान् सर्वज्ञ नहीं थे ?"

कवि जी ने इस प्रश्न का उत्तर भी कुछ पहले अमर भारती के फरवरी १६६६ अंक में दिया भी था, जिसका शीर्षक था "क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है"। कविजी के इस लेख से सारे जैन समाज में खलबली मच गई। बहुत से लोगों ने इस लेख के शीर्षक को समझे बिना ही कवि जी के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। किन्तु चिन्तन और मनन करने वाले विद्वानों ने कवि जी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

प्रोफेसर दलसुख भाई मालवणिया ने लिखा है, "क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है" लेख पढ़ा, आपके जैसे विज्ञ मुनिराज के द्वारा विज्ञान और धर्म, शास्त्र और विज्ञान, धर्म और सत्य इन विषयों में सही मार्ग दर्शन मिला है—ऐसा मैं मानता हूँ"।

तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य तुलसी ने भी कवि जी के साहस की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उपाध्याय अमरमुनि ने "क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है" इस शीर्षक वक्तव्य में रूढ़ धारणा वाले व्यक्तियों को चुनौती दी है, इसे मैं प्रशस्त मानता हूँ। इस वैज्ञानिक एवं शोधप्रधान युग में केवल अज्ञानपूर्ण धारणाएं बनाए रखना शास्त्रों के प्रति आस्था अभिव्यक्त करना नहीं है, किन्तु उनके प्रति अज्ञान ही प्रगट करना है।"

उक्त लेख में कवि जी ने शास्त्र और ग्रन्थ के अन्तर का जो सुन्दर विवेचन किया है उससे स्पष्ट हो गया है कि शास्त्र भगवद् वाणी हैं। किन्तु ग्रन्थों का निर्माण संकलन के आधार पर हुआ है, अतः शास्त्र कभी झूठे नहीं हो सकते और ग्रन्थ कभी भगवद् वाणी नहीं कहला सकते। इस प्रकार चन्द्र प्रज्ञप्ति-सूर्य प्रज्ञप्ति-भूगोल-खगोल से सम्बन्धित पुस्तकें ग्रन्थ हैं, शास्त्र नहीं। कवि जी का विचार है कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में केवल वही धर्म और सिद्धान्त जीवित रह सकते हैं जो मानव जीवन के लिए व्यवहारिक होंगे।

कवि जी ने स्थानकवासी समाज में बहुचर्चित विषय "ध्वनि विस्तारक यंत्र" एवं 'केश लोच' के सम्बन्ध में भी अपने क्रान्तिकारी विचार व्यक्त किये। श्री अमर भारती के नवम्बर १६६६ के अंक में "ध्वनि विस्तारक यंत्र" नामक लेख में यह स्पष्ट कर दिया है कि अग्नि और विद्युत परस्पर भिन्न हैं। उन्होंने लिखा है "आज का युग कहने का नहीं, प्रत्यक्ष में कुछ करके दिखाने का युग है। विद्युत अग्नि है कहते जाइये, कहने से क्या होता है। विज्ञान ने तो अग्नि और विद्युत का अन्तर स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष में करके दिखा दिया है। पुराने युग के

कवि जी ने समाज को नया विचार दर्शन दिया। समाज के इतिहास को नया मोड़ दिया। उन्होंने अपने जीवन की साधना से अतीत के अनुभवों का, वर्तमान के परिवर्तन का और भविष्य की सुनहरी आशाओं का साक्षात्कार किया है।

धर्म, दर्शन और संस्कृति की उन्होंने युगानुकूल व्याख्या की है। उन्होंने कहा है, कि—जो गल-सड़ गया है, उसे फेंक दो और जो अच्छा है उसकी रक्षा करो। कविजी ने अपने सुधारवादी दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए एक बार कहा था, "लोग सुधार के नाम से क्यों डरते हैं ? सुधार डरने की वस्तु नहीं है, वह तो जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। सुधार से न तो कभी धर्म विकृत होता है, और न धर्म की परम्परा ही कभी दूषित होती है। सुधार के बिना साधना और साधना-हीन सुधार दोनों ही वास्तव में पंगु हैं।"

कवि जी समाज और जीवन दोनों का सुधार चाहते हैं। सुधार के लिए यह आवश्यक है कि जो अन्धविश्वासों का आवर्ण मानवमन पर छा गया है उसे दूर किया जाये। यह आवर्ण हटाना कोई आसान कार्य नहीं है। क्योंकि बहुत से स्वार्थी और दंभी व्यक्ति जिनको आता जाता कुछ नहीं है, जो स्वाध्याय और ज्ञान से कोसों दूर हैं, अन्धविश्वास के आधार पर समाज के भोले-भाले लोगों को फुसलाकर अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं, अतः जब कभी कोई साहसी महापुरुष सुधार के लिए आवाज लगाता है, तो उन लोगों को वेदना होती है।

किन्तु कवि जी ऐसे लोगों की कभी परवाह नहीं करते, वे तो जन्मसिद्ध क्रान्तिकारी हैं। उनके रग-रग में क्रान्ति की विचारधारा समाई हुई है। मार्ग की रुकावट उनको दृढ़ बनाती है। हर बाधा नया उत्साह देती है। हर उलझन नई दृष्टि देती है। उनमें राम जैसी संकल्प शक्ति है। हनुमान जैसा उत्साह एवं धैर्य। अंगद जैसी दृढ़ता एवं वीरता है। उन्हें अपने मनोबल पर विश्वास है। दूसरे के बल पर वे कभी कोई काम नहीं करते। दूसरे के सहयोग का वे सत्कार अवश्य करते हैं। विपत्ति आती है पर उनके साहस को देखकर लौट जाती है। वे अपने पथ पर सदा अडिग होकर चलते हैं। वे मानव हैं, पर मानव होकर भी देव हैं।

विश्व के महानतम देश अमेरिका ने जव अपोलो ११ और अपोलो १२ के द्वारा चन्द्रमा पर विजय प्राप्त कर ली तो सारे संसार के धर्मावलम्बियों में खलवली मच गई। विभिन्न धर्माचार्यों ने मानव जाति को चंद्रलोक के वारे में जो उपदेश दिये थे वे गलत सावित होने लगे, अतः बुद्धिजीवी वर्ग के चन्द्र विजय सम्वन्धी अनेक प्रश्न धर्माचार्यों के सम्मुख उपस्थित हुए। जैन समाज में भी ऐसे प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक था। जव मानव ने चन्द्र पर विजय प्राप्त की उस समय कवि जी जैन भवन, मोतीकटरा आगरा में विराजमान थे, अतः

जिज्ञासु श्रावकों ने प्रश्न पूछा" "जैन साहित्य के चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि आगमों में प्रतिपादित वर्णन असत्य प्रमाणित हो गये हैं। यदि चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि ज्योतिष ग्रन्थ सर्वज्ञ भाषित हैं, भगवद्वाणी है तो इनके कथन असत्य कैसे हो गये ? क्या तो ये ग्रन्थ भगवद् भाषित नहीं है यदि हैं तो भगवान् सर्वज्ञ नहीं थे ?"

कवि जी ने इस प्रश्न का उत्तर भी कुछ पहले अमर भारती के फरवरी १९६९ अंक में दिया भी था, जिसका शीर्षक था "क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है"। कविजी के इस लेख से सारे जैन समाज में खलबली मच गई। बहुत से लोगों ने इस लेख के शीर्षक को समझे बिना ही कवि जी के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। किन्तु चिन्तन और मनन करने वाले विद्वानों ने कवि जी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

प्रोफेसर दलसुख भाई मालवणिया ने लिखा है, "क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है" लेख पढ़ा, आपके जैसे विज्ञ मुनिराज के द्वारा विज्ञान और धर्म, शास्त्र और विज्ञान, धर्म और सत्य इन विषयों में सही मार्ग दर्शन मिला है—ऐसा मैं मानता हूँ"।

तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य तुलसी ने भी कवि जी के साहस की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उपाध्याय अमरमुनि ने "क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है" इस शीर्षक वक्तव्य में रूढ़ धारणा वाले व्यक्तियों को चुनौती दी है, इसे मैं प्रशस्त मानता हूँ। इस वैज्ञानिक एवं शोधप्रधान युग में केवल अज्ञानपूर्ण धारणाएं बनाए रखना शास्त्रों के प्रति आस्था अभिव्यक्त करना नहीं है, किन्तु उनके प्रति अज्ञान ही प्रगट करना है।"

उक्त लेख में कवि जी ने शास्त्र और ग्रन्थ के अन्तर का जो सुन्दर विवेचन किया है उससे स्पष्ट हो गया है कि शास्त्र भगवद् वाणी हैं। किन्तु ग्रन्थों का निर्माण संकलन के आधार पर हुआ है, अतः शास्त्र कभी झूठे नहीं हो सकते और ग्रन्थ कभी भगवद् वाणी नहीं कहला सकते। इस प्रकार चन्द्र प्रज्ञप्ति-सूर्य प्रज्ञप्ति-भूगोल-खगोल से सम्बन्धित पुस्तकें ग्रन्थ हैं, शास्त्र नहीं। कवि जी का विचार है कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में केवल वही धर्म और सिद्धान्त जीवित रह सकते हैं जो मानव जीवन के लिए व्यवहारिक होंगे।

कवि जी ने स्थानकवासी समाज में बहुचर्चित विषय "ध्वनि विस्तारक यंत्र" एवं 'केश लोच' के सम्बन्ध में भी अपने क्रान्तिकारी विचार व्यक्त किये। श्री अमर भारती के नवम्बर १९६९ के अंक में "ध्वनि विस्तारक यंत्र" नामक लेख में यह स्पष्ट कर दिया है कि अग्नि और विद्युत परस्पर भिन्न हैं। उन्होंने लिखा है "आज का युग कहने का नहीं, प्रत्यक्ष में कुछ करके दिखाने का युग है। विद्युत अग्नि है कहते जाइये, कहने से क्या होता है। विज्ञान ने तो अग्नि और विद्युत का अन्तर स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष में करके दिखा दिया है। पुराने युग के

कुछ आचार्यों ने यदि विद्युत की गणना अग्निकाय में की है तो इससे क्या हो जाता है ? उनका अपना एक युगानुसारी चिन्तन था, उनकी कुछ अपनी लोक-धारणाएं थीं। वे कोई प्रत्यक्ष सिद्ध वैज्ञानिक मान्यताएं नहीं थीं।"

विद्युत को अग्नि मान लेने के कारण ध्वनिवर्धक का जो प्रपंच समाज में चर्चा का विषय बन गया है। प्रवचन सभा में हजारों की भीड़ हो जाती है, सुनाई कुछ देता नहीं, शोरोगुल होता है, आकुलता बढ़ती है, जनता के मन खिन्न हो जाते हैं। यह कितनी बड़ी मानसिक हिंसा है। इस प्रकार कवि जी ने समाज के रूढ़विचार धारा वाले संतों और श्रावकों को चेतावनी दी है कि यदि धर्म को जीवित रखना है तो समयानुसार परिवर्तन करना चाहिए।

केशलोच सम्बन्धी मेरे प्रश्न के उत्तर में कवि जी ने बताया कि केशलोच जैन मुनियों की एक गौरवपूर्ण परम्परा है। किन्तु यदि कोई सन्त अस्वस्थ होने के कारण केशलोच कराने में असमर्थ है तो वह कोई अधर्म की बात नहीं है उन्होंने 'केशलोच कब और क्यों' इसका बड़ा ही सुन्दर विवेचन अमर भारती में लिखित अपने लेख में किया है। सच तो यह है कि ऐसे क्रान्तिकारी लेखों के द्वारा कवि जी ने सारे समाज के बुद्धिजीवी वर्ग को सोचने विचारने का अवसर प्रदान

शब्द आडम्बर के लिए नहीं, अर्थवहन के लिए है। उपनिषद् की भाषा में—शब्द ब्रह्म है !

मगर कब ? जब शब्द को अर्थ दिया जाय ! शब्द में अर्थ जागृत होने से, शब्द ब्रह्म बनता है।

भगवान महावीर और बुद्ध ने, ईसा और गांधी ने सारा जीवन साधना में जी कर सत्य और अहिंसा, प्रेम और करुणा इन चार शब्दों को अर्थ दिया था।

किया। समाज के अधिकांश लोग केवल मुनि दर्शन को ही पुण्य समझते थे, वे विचार, मनन और तर्क से दूर रहते थे, किन्तु कवि जी की लेखनी ने समाज के प्रौढ वर्ग को ही नहीं, अपितु युवा वर्ग को भी जागृत किया है। यह कविजी की स्थानकवासी समाज को एक बहुत बड़ी देन है। समाज के सम्मुख अब भी ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो स्पष्टीकरण चाहते हैं। मुझे उम्मीद है कि समयानुसार कविश्री जी उनका भी स्पष्टीकरण करेंगे।

कविश्री जी समाज में ऊँच-नीच और छूत-अछूत की विचारधारा के कट्टर विरोधी हैं। कवि जी ने अहिंसा दर्शन में लिखा है कि—"आप जिन्हें नफरत की निगाह से देखते हैं वे भी छूत-अछूत के भेद भाव से भरे हुए हैं। आप छोटी जाति से घृणा करते हैं और वह छोटी जाति भी अपने से छोटी समझी जाने वाली जाति से घृणा करती है। यह सब देखकर दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।"

"यह एक ऐसा रोग है जो ऊपर से नीचे तक जोरों के साथ घुस गया है, जम गया है और इसका पूरी तरह परिमार्जन करने के लिए बहुत बड़े तूफानी विचारों की जरूरत है। इस मसले को हल करने के लिए गांधी जी को बलिदान देना पड़ा। गांधी जी ही नहीं, हमारे अनेक पूर्वजों को भी इसी प्रकार आत्म-बलिदान देना पड़ा है। मैं जातिगत, वर्गगत सम्प्रदायगत और समूहगत इस घृणा और द्वेष की भावना को हिंसा का रूप मानता हूँ।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कवि जी मानव मात्र से प्रेम करते हैं। उनके प्रवचन में जैन-अजैन, हरिजन और मुसलमान सभी आते हैं और वे सभी को अपनी अमृतमयी वाणी का रसास्वादन कराते हैं।

जैन संत होते हुए भी कवि जी अन्य धर्मों का आदर करते हैं। हाथरस के सुन्दर सत्संग के भवन के उद्घाटन के अवसर पर दिये गये प्रवचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि जी समन्वयवादी सन्त हैं। उहोंने अपने प्रवचन में वहाँ के युवक वर्ग को सम्बोधित करते हुए कहा कि—इस भवन में एक पुस्तकालय होना अति आश्वयक है, किन्तु पुस्तकालय में केवल जैन धर्म से सम्बन्धित पुस्तकें ही नहीं होनी चाहिए, अपितु सभी धर्मों की पुस्तकें होनी चाहिए क्योंकि सभी धर्मों के अध्ययन से जीवन के विकास में सहायता मिलेगी। जो लोग संकुचित विचार धारा के होते हैं वे अपने जीवन में उन्नति नहीं कर सकते हैं। जो लोग अपने धर्म की प्रशंसा करते हैं और दूसरे धर्म की निंदा करते हैं वे वस्तुतः अपने धर्म की निंदा करते हैं।' कवि जी के हृदय में जो सभी धर्मों के प्रति प्रेम है उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है उनके द्वारा लिखित 'सूक्ति त्रिवेणी' जिसमें भारत के तीनों महान् धर्मों का संगम हुआ है। यही कारण है कि आज जैन समाज ही नहीं, अपितु जैनेतर समाज भी उनके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करता है।

कविजी जैसे महान् सन्त को पाकर आज स्थानकवासी समाज गौरवान्वित है। २२ फरवरी सन् १९७० को कवि जी अपनी दीक्षा के पचास वर्ष पूरे कर रहे हैं। इन ५० वर्षों में कवि जी ने भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक हजारों मील की पद यात्रायें की और लाखों ही व्यक्तियों को भगवान महावीर की अमृतमयी वाणी का रसास्वादन कराया। उन्होंने बम्बई, कलकत्ता और देहली आदि शहरों की ऊँची अट्टालिकाओं में रहने वालों के ऐश्वर्य को भी देखा और उड़ीसा के जंगलों और पर्वतीय इलाकों में रहने वाले मानव के जीवन को निहारा। एक ओर असीम ऐश्वर्य और सप्तव्यंजन खाने वालों को देखा तो दूसरी ओर घास, डंठल खाने वाले और भूख से तड़पते हुए इन्सानों की जिन्दगी को भी देखा है। जब कभी वे अपने प्रवचनों में मानव जाति की दुर्दशा के ये—

संस्मरण सुनाते हैं तो हृदय द्रवित हो उठता है। यही कारण है कि कवि जी के हृदय में उन अभागे मानवों के प्रति अपार प्रेम और सहानुभूति है।

कविश्री अमर चंद जी महाराज के जीवन में एक क्रांतिकारी नेता के लिए आवश्यक सभी गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। अपने आदर्श और लक्ष्य के प्रति एक निष्ठ श्रद्धा, निर्भयता, अद्भुत कार्यक्षमता ये सब विशेषतायें उनमें कूट-कूट कर भरी है। निर्भयता तथा स्पष्टवादिता के कारण अपने क्रान्त न्याय्य और विचारों को दबाना, छुपाना या कहते हुए दांये-बांये झांकना उन्होंने कभी जाना ही नहीं।

कवि जी की प्रतिभा एवं ओज पूर्ण वाणी को सुनकर आगरा के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० अशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने कहा था कि—कवि जी उस हीरे के सदृश हैं जिसकी किरणें प्रकाश को चारों ओर फैला देती हैं"।

ऐसे महान् सन्त के लिए मैं इस पुनीत और पवित्र शुभ अवसर पर अपनी श्रद्धा भक्ति अर्पित करता हूं और वीर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि कविश्री जी दीर्घायु हों और उनकी अमृतमयी वाणी से मेरे जीवन का और मानव जाति का कल्याण हो। ●

एक विचारक से पूछा गया—"आप मृत्यु से डरते नहीं, तो उससे वचने की कोशिश किसलिए हैं?"

विचारक ने गम्भीर हो कर उत्तर दिया—"मृत्यु एक वादशाह है, अगर वह शान्ति से अकेला मेरे सामने आए तो चुपचाप उसे समर्पित हो जाऊँ। किंतु वह आता कहाँ है? उसके छोटे-मोटे वदमाश सिपाही ही वीमारियों के रूप में आकर मुझे पीड़ा दे रहे हैं, इसलिये मैं उनसे संघर्ष करता हूं।"

—अमर डायरी

भारतीय संस्कृति के आदर्श सन्त
उपाध्याय कविश्री अमरमुनि

●

मुनिश्री नेमीचन्द जी

●

इस मरणधर्मा संसार में कुछ महान् आत्माएँ ऐसी आती हैं, जो इस भौतिक जीवन के समाप्त होने के बाद भी नहीं मरती। काल का गहरा आवरण भी उनकी जीवन गाथाओं को धुँधला नहीं बना सकता, उनकी स्मृतियों को मिटा नहीं सकता। भगवान ऋषभ देव, राम, कृष्ण, सीता, बुद्ध, महावीर आदि महापुरुषों को हजारों-लाखों वर्ष बीत गए। परन्तु वे आज भी जीवित हैं और युग-युगान्तर तक जीवित रहेंगे। उनका जीवन, उनका उपदेश हमें आज भी वही प्रेरणा, वही ज्योति, देता है, जो उनके युग में देता था। भले ही उनका भौतिक शरीर नहीं रहा, परन्तु उनकी आध्यात्मिक मृत्यु न हुई और न कभी होगी।

सन्त जीवन—अपने लिए नहीं. पर के लिए होता है। वह अपने सुख की, अपने आराम की, अपने स्वार्थ की चिन्ता नहीं करता। वह सदा-सर्वदा दूसरों के हित में लगा रहता है। वह प्रकृति की तरह उदार भाव से बिना माँगे विश्व को सुख की, शान्ति की राह दिखाता है। वह मेघ की तरह एक दिशा में नहीं, दसों-दिशाओं में शत-शत धारा से बरसता रहता है।

श्रद्धेय उपाध्याय अमर मुनि जी महाराज भारतीय-संस्कृति के महान् सन्तों में से एक हैं। भारत में सदा से ऐसे सन्तों का महत्व रहा है। भारत में आज भी सन्तों की कमी नहीं है। जिधर देखो, उधर सन्तों की जमात के दर्शन हो जाएंगे। परन्तु साधुत्व की साधना की ज्योति बहुत कम सन्तों में दिखाई देगी। वास्तव में प्रत्येक पहाड़ और पहाड़ की भी प्रत्येक चट्टान माणिक की चट्टान नहीं होती, प्रत्येक हाथी के मस्तिष्क में मुक्ता का कोष नहीं होता और प्रत्येक जंगल में चन्दन के वृक्ष नहीं होते। इसी प्रकार साधु भी जहाँ-तहाँ सब जगह नहीं मिल जाते।

शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने-वने॥

साधुत्व का अर्थ है—ज्ञान और आचार की समन्वित साधना। जीवन विकास के लिए ज्ञान आवश्यक है। परन्तु भारतीय-संस्कृति के मनीषियों ने उसी ज्ञान को ज्ञान कहा है, जो आचरण में मूर्त रूप लेता है। जो ज्ञान आचार में नहीं उतरता, केवल तत्त्व-चर्चा एवं वाद-विवाद या उपदेश तक ही सीमित रहता है, वह केवल बोझ रूप है। उससे साध्य की सिद्धि नहीं होती। साध्य की सिद्धि या साधुत्व की सफल साधना के लिए ज्ञान के साथ आचार का, क्रिया का सुमेल होना आवश्यक है। श्रद्धेय कवि श्री जी के जीवन में ज्ञान की दिव्य ज्योति के साथ आचार के उज्ज्वल-समुज्ज्वल स्वरूप का दर्शन होता है। ज्ञान और क्रिया की समन्वित साधना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

कवि श्री जी का अध्ययन बहुत विशाल है। आपने जन धर्म, जैन दर्शन एवं आगम-साहित्य का तल-स्पर्शी अध्ययन किया है और उसके ऊपर उनका गम्भीर चिन्तन भी है। परन्तु उनका अध्ययन केवल जैन साहित्य के घेरे में ही आबद्ध नहीं रहा। उन्होंने समग्र भारतीय दर्शन एवं भारतीय धर्मों का अध्ययन किया है। उस पर चिन्तन-मनन किया है, गहराई से सोचा-विचारा है। उनके साहित्य का अनुशीलन-परिशीलन करने तथा उनके प्रवचनों को सुनने पर उनकी विशाल दृष्टि, उनके विराट व्यक्तित्व, गम्भीर चिन्तन एवं सब धर्मों तथा धर्म पुरुषों के प्रति आदर भाव के स्पष्ट दर्शन होते हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ज्ञान के साथ अभिमान एवं अहंभाव की कालिमा नहीं है।

सन्त जीवन की परिभाषा बताते हुए महर्षि बाल्मिकि ने कहा है कि सन्त पुरुष अपने साथ दुर्व्यवहार करने वाले दुष्ट व्यक्ति के पाप-कर्म का अनुकरण नहीं करते, वे दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार नहीं करते, प्रत्युत उसे भी अपनी आत्मा के समान समझ कर उसके साथ भी सद्-व्यवहार करते हैं। वे मित्र का ही नहीं, शत्रु का भी हित चाहते हैं—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्र-भूषणाः॥

—**बाल्मिकि रामायण**, पृ० ११३, ४४

महर्षि वाल्मिकि के शब्दों में कवि श्री जी एक महान् सन्त हैं। अस्तु, कविश्री जी केवल जैन समाज के ही नहीं, प्रत्युत मानव जाति की आदर्श विभूति हैं। ●

★★

नव चेतना के उन्नायक श्री अमर मुनि

मिठालाल मुरड़िया 'साहित्यरत्न'

गत पाँच छः मास से समाज में क्रान्ति की एक नूतन चेतना जागृत हुई है, इसका केन्द्र बिन्दु है कवि श्री अमर मुनिजी और अमर भारती के लेख। जहाँ कहीं भी पाँच सात व्यक्ति एकत्रित होते हैं वहाँ कविश्री के आगम साहित्य से सम्बन्धित क्रान्तिकारी विचारों की ही चर्चा चलती है, एक पक्ष अपने प्रमाण पेश करता है और दूसरा अपने। मगर गहराई में जाकर उनपर चिन्तन कोई नहीं करता, सत्य और न्याय का अवलम्बन कोई नहीं लेता, अगर कोई निष्पक्ष भाव से इन विवादास्पद विषयों का निर्विवाद परिणाम निकाले तो इस विचार-क्रान्ति की दिशा में एक सुखद, स्वस्थ और प्रसन्नतापूर्ण प्रगति अवश्य की जा सकती है। मगर ऐसा नहीं हो रहा है।

आज समाज का बहुत बड़ा वर्ग–उसमें साधक, विद्वान, चिन्तक और समाज के अग्रगण्य नेता प्रभृति कविश्री के क्रान्तिकारी और उत्साह वर्द्धक विचारों, चिन्तन पूर्ण तथ्यों, सत्यमूलक आग्रहों से प्रभावित हैं। परम्परा बद्ध विचारों पर अन्ध भक्ति और श्रद्धा की जो तहें जम गई हैं, उन्हें हटाकर सत्य का वास्तविक दिग्दर्शन करा कविश्री ने जिस विशिष्ट प्रतिभा, अदम्य उत्साह, साहस और चेतना का जो परिचय दिया है—वह स्तुत्य हैं। आज समाज और देश को क्रान्तिकारी विचारों की आवश्यकता है इसलिए समाज में क्रान्ति अपेक्षित है।

श्रद्धा और भक्ति के झूठे प्रदर्शनों से पूजे जाने वाले और अपने अहंकार को पोषण देने वाले धर्म गुरुओं को क्रान्तिकारी विचारों से घबराकर धैर्य खोने की आवश्यकता नहीं है, उन्हें तो शान्ति और धर्म के साथ तेजस्वी प्रतिभाओं और नये खून के संचरण की ओर भी दृष्टिपात करना चाहिए।

एक जमाना था जब विना किसी संदेह के सभी बातें सहर्ष स्वीकार करली जाती थीं, सत्य-या-असत्य के किसी पक्ष विशेष की पुष्टि विना ही मानकर गले उतारली जाती थीं, पुत्र अपने पिता से और श्रावक साधु के किसी कथन पर

आपत्ति उठा भी नहीं सकते थे। क्योंकि उस समय बड़ों का अनुभव ही सर्वज्ञ-वाणी की तरह अग्रगण्य और अन्तिम माना जाता था।

मगर अब वे स्थितियाँ नहीं रहीं हैं, देश और काल की सारी परिस्थितियाँ परिवर्तित होगई हैं, देश का इतिहास और भूगोल बदला है, मर्यादाएं, प्राकृतिक-स्थितियाँ, वातावरण और वायुमण्डल बदला है, अन्धविश्वास हटे हैं, पुरानी रुढ़ियां टूटी हैं, इन्सान और उसका विश्वास बदला है, धर्म की परिभाषा ने नया रूप लिया है, हमारी दृष्टि, हमारा आचार विचार, व्यवहार और आदर्श बदला है। ऐसी स्थिति में हम आँखें बन्द कर नहीं बैठ सकते हैं, अन्यथा आँधी का एक थपेड़ा हमें हवा में उड़ा देगा।

अब प्रश्न श्रद्धा और भक्ति का नहीं है, प्रश्न है बुद्धि के विकाश का, उसकी परिष्कृत स्थिति और गहराई का। इसलिए अब हमें अपनी आस्थाओं, विश्वासों और श्रद्धाओं का नये सिरे से मूल्यांकन करना चाहिए, इस प्रक्रिया में हमारी गति विधि सत्य के निकट एवं ज्ञान, दर्शन और चारित्र के अभिमुख होनी चाहिए।

यह बुद्धि और चेतनाओं का युग है। इस युग में जीवन का विचारों के साथ सामञ्जस्य होना चाहिए, रुढ़िगत विचारों, परम्परागत श्रद्धाओं और चले आरहे विश्वासों का आवरण दूर करना होगा, पुराना फटा परिधान फेंकना है, जीर्ण-शीर्ण वस्तुएं बदलनी हैं, बदलता हुआ भोजन ही स्वादिष्ट और स्वास्थ्य वर्द्धक होता है।

आज एक बालक अपने पिता से प्रश्न पूछता है, यह कैसे है ? क्यों है ? पिता उसे फटकार कर दबा नहीं सकता ? डराकर भयभीत नहीं कर सकता ? उसके ये प्रश्न उसकी आन्तरिक जागृति और उसकी वैचारिक चेतना के नव स्फुरण हैं। पिता उत्तर देकर ही बालक की जिज्ञासा शान्त कर सकता है।

कविश्री ने गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन के पश्चात् ही चर्चा हेतु समाज के सम्मुख अपने विचार व्यक्त किये थे। प्रसन्नता है कि उनके व्यक्त विचारों पर सम्पूर्ण समाज का, सन्तों का, विद्वानों का और साधारण जन मानस का भी ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। इस प्रकार व्यापक रूप से सभी का ध्यान केन्द्रित होना परिवर्तन की दिशा में एक नूतन क्रान्तिकारी चरण का मंगल सूत्रपात ही समझना चाहिए।

समाज का यह कीर्तिस्तम्भ, देश का यह प्रकाश दीप और धर्म का यह उज्ज्वल सितारा अपनी शीतल किरणों से सभी को ज्ञान, दर्शन और चारित्र से लाभान्वित करता हुआ दीर्घायु प्राप्त हो—इसी मंगलमयी भावना के साथ श्रद्धाञ्जलि, सादर समर्पित हो।

तुमने अभिनव ज्योति जलाई !

●

सोया मानव का सुविवेक,
श्रद्धा का कहीं है अतिरेक,
कहीं ज्ञान का दीप बुझ रहा,
घोर तमिस्रा छाई,
तुमने अभिनव ज्योति जलाई !

दिया तर्क को श्रद्धा का बल,
श्रद्धा को बुद्धि का संबल,
निर्भय, निश्च्छल साधक-जीवन-
की गरिमा दिखलाई;
तुमने अभिनव ज्योति जलाई !

रही साधना सतत अखंडित,
अर्ध-शती यह गौरव-मंडित,
पावन निर्मल जीवन की नव-
पुण्य - प्रेरणा लाई,
तुमने अभिनव ज्योति जलाई।

—जिनेश मुनि, आगरा

●

चिन्तन के सर्वेक्षण से चिन्तन की धारा दो ध्रुवों में विभक्त परिलक्षित होती है। एक है अतीत ध्रुव और दूसरा है भविष्य। अतीत की तरफ वहने वाली चिन्तन धारा आमतौर पर अतीत की परम आज्ञाकारिता, रूढिवादिता और संकीर्णता को साथ लेकर चलती है। इस प्रकार की चिन्तन धारा में किसी प्रकार के बौद्धिक आन्दोलन को कोई अवकाश नहीं है। नए प्रश्नों, अप्रत्याशित समस्याओं और चुनौतियों के साथ साहस पूर्ण संघर्ष अथवा समाधान खोजने की शक्ति भी इसमें नहीं है। किन्तु भविष्य की ओर उन्मुख चिन्तन धारा में अतीत के घिसेपिटे मृतभार से चिन्तन को मुक्त करने का प्रयास है। परम्पराओं का अनादर है, ज्ञान और विज्ञान के नए क्षितिज पर बढ़ते चरण हैं, और हैं नए रहस्यों के उद्घाटन में संलग्न! किन्तु कविश्री जी का चिन्तन इसका एक उल्लेखनीय अपवाद है। कविश्री जी एक ऐसे चिन्तक हैं जो अतीत की परम्परा से पूर्णतया संपृक्त हैं। उनका विश्वास है मानसिक तनाव से पीड़ित मानव जाति को अतीत के चिन्तन से सान्त्वना दी जा सकती है। इस चिन्तन में एक अपरि-

दो ध्रुवों का संगम : कविश्री जी

० साध्वी श्री चन्दनबाला

वर्तनशील सत्य है। वह सनातन है, शाश्वत है। जीवन की गहनतम समस्या का समाधान इसमें है। इस विरासत को सुरक्षित रखना आवश्यक है। साथ ही नए चिन्तन को भी प्रवेश मिलना चाहिए। वे कहते हैं—पुनर्जागरण के बाद विश्व संस्कृति जड़ से बदल गई है। पश्चिम धार्मिक आधार से कट गया है। पश्चिम की इस स्थिति का प्रभाव पूर्व पर भी हुआ है। पश्चिम के इस आक्रमण को अतीत के मरणशील तर्कों से रोका नहीं जा सकेगा। नए प्रयोग और नई पद्धतियों के नए आयाम हमें खोजने चाहिए। यूरोप का नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण और एशिया का अतीत आध्यात्मिक दृष्टिकोण परस्पर पूरक है, विरोधी नहीं। इस विविधता में कविश्री जी समन्वय की घोषणा करते हैं। वे प्रयास करते हैं कि इस विविध विचार में ऐसी कोई मूलभूत अनुभूति है, जो समान रूप से पाई जा सके। वे कहते हैं—कुछ चिन्तकों ने अतीत को पूर्ण मान लिया है। वस्तुतः

इन्होंने ही अतीत के प्रति उपेक्षा पैदा की है। आज के नए चिन्तन के प्रकाश में पुरानी मान्यताओं एवं धारणाओं की पद्धति से पुनः व्याख्या होनी चाहिए।

कविश्री जी के समग्र चिन्तन में हम देखते हैं बीज अतीत का है, पद्धति वर्तमान की है और लक्ष्य भविष्य का है।

कविश्री जी के चिन्तन का विस्तार दोनों विरोधी ध्रुवों को स्पर्श करता है। इन्द्र धनुष के विविध रंगों से सजा हुआ कितना मोहक! कितना महान्! इन्होंने काव्यों में मानवता की प्राण प्रतिष्ठा की है। जीवन और जगत की सार्थकता के गीत गाए हैं। प्रवचनों में आध्यात्मिक जीवन के विकास की प्रेरणा दी है। जीवन की विविध समस्याओं के समाधान दिए हैं। प्राचीन परम्पराओं में अत्यधिक आवश्यक संशोधन किए हैं। सामाजिक चेतना को संस्कार दिए हैं। जीवन की चेतना को ऊर्जस्वित किया है। आगमों के नए अर्थ और रहस्य की नई परतों को खोला है। अपनी और परायी दोनों की स्वस्थ आलोचना की है। आध्यात्मिक एवं दार्शनिक रहस्यों के उद्‌घाटन किए हैं। चिन्तन और कर्म की एकता पर बल दिया है। युवा पीढ़ी को स्वस्थ समाज रचना के लिए प्रेरणा दी है। वर्गभेद, प्रांतभेद सम्प्रदायभेद के झूठे भेदों ने मनुष्य को विभक्त किया है, इन विवादों को तोड़ने के लिए जनता के समक्ष सुझाव प्रस्तुत किए हैं। आर्थिक विषमता, दरिद्रता एवं बेरोजगारी को कविश्री जी राष्ट्र के लिए कलंक मानते हैं, इस कलंक को मिटाने के लिए जनता से अपील की है। लेखों में प्राचीन गौरवमय तथ्यों की कलात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है। तार्किक एवं विश्लेषण की पद्धति से प्राचीन धारणाओं पर विवेचन करके जनता की जड़ता को कम किया है। संदिग्ध विषयों की समीक्षा की है। नए प्रश्न उठाए हैं। इस प्रकार कविश्री जी का चिन्तन विविध रूपों में प्रकट हुआ है, जिसमें अतीत एवं भविष्य का अपूर्व मिश्रण है।

कविश्री जी के चिन्तन का यह वैविध्य दोनों प्रकार की आलोचना का शिकार रहा है। कट्टर रूढ़िवादियों को कविश्री जी के नए चिन्तन से असंतोष है। यद्यपि इन रूढ़िवादियों के पास कोई तर्क नहीं है। इनकी आलोचना में चिन्तन का पक्ष अत्यन्त निम्न एवं उपेक्षित है। कविश्री जी के विशुद्ध दृष्टिकोण का मूल्यांकन वे नहीं कर सके। उनके कहने का ढंग कृत्रिम शब्द-बहुल और धुंधला है। चिन्तन एवं विचारके लिए कभी ये रूढ़िवादी तैयार नहीं है।

नवीनतावादी इसलिए असन्तुष्ट है कि कविश्री जी प्राचीनता को ही प्रवुद्ध एवं प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इनकी विचारधारा पराधीन है। किन्तु विचारशील लोगों की कृतज्ञता का अर्जन जितना कविश्री जी कर सके हैं, इस शताब्दी में दूसरा कोई नहीं कर सका। इनके चिन्तन की सुगन्ध से असंख्य दिल-दिमाग परिचित एवं प्रभावित है। स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के पांचों सम्मेलनों में वैचारिक एवं रचनात्मक प्रभुत्व कविश्री जी का ही रहा है।

कविश्री जी का चिन्तन स्पष्ट है। वे चिन्तन की स्पष्टता में कभी झिझकते नहीं हैं, इससे कुछ विरोधियों के विवादी स्वर अवश्य उठे हैं। किन्तु आने वाली एक दो दशाब्दियों में ही जो कुछ घटित होगा, मैं समझती हूं, उसके बाद कविश्री जी के विरोधी भी कविश्री जी के कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह सकेंगे।

कविश्री जी विषय विवेचन के लिए अपनी आधार भूमि मूल ग्रन्थों को ही बनाते हैं। वे हमेशा विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टिकोण से लिखते हैं। गणित की तरह सुनिश्चितता उनमें होती है। वे ऐसी कभी कोई बात नहीं कहते, जिसके लिए शास्त्र का कोई प्रमाण न दिया जा सके। कविश्री जी की लेखनी इतनी सतर्कता के साथ चलती है, जिसका कोई दूसरा उदाहरण साधु संघ में नहीं है।

प्रारम्भ से ही कविश्री जी की अभिरुचियां आगम, दर्शन और साहित्य तक फैली थी। वेद, उपनिषद्, पुराण, भाष्य, बौद्ध साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास कविश्री जी के अध्ययन की परिधि के भीतर के विषय रहे हैं। व्यापक तुलनात्मक और गहन चिन्तन पूर्ण अध्ययन ने कविश्री जी को सूक्ष्म दर्शक और सत्य को स्वीकार करने के लिए अनुकूल किया है। वे आगमों की व्याख्या और समीक्षा करके, अतिशयोक्तिपूर्ण और अतिवादी निर्णयों को अस्वीकार करते हैं। वे आगमों को अवकाश भोगी लोगों के लिए केवल विलास मात्र रहने देना पसन्द नहीं करते हैं। आज के इस निर्भय युग का प्रश्न है—इन सब शास्त्रों का क्या लाभ है ? कविश्री जी का उत्तर है—शास्त्र आध्यात्मिक जीवन के विकास को, एक जीवन निर्माण की विचार पद्धति को प्रस्तुत करते हैं, यही इनकी उपयोगिता है। अगर व्यक्ति की अन्तःप्रज्ञा इसे स्वीकार नहीं करती है, तो कविश्री जी स्पष्ट कहते हैं, फिर इन शास्त्रों का कोई लाभ नहीं है। वह केवल बोझ है। कविश्री जी मानते हैं, चिन्तन को स्वतन्त्र करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए ग्रन्थों के बन्धनों को तोड़ना भी जरूरी है। तर्क की प्राथमिकता को स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि इससे आध्यात्मिक जीवन के विकास में कोई बाधा नहीं आती। तर्क से जड़ बुद्धि वाले लोग व्यर्थ में घबराते हैं। क्रांतद्रष्टा कविश्री जी का चिन्तन संकीर्ण मतवादों एवं साम्प्रदायिक स्थूल सीमाओं को पार कर गया है।

विचार एवं चिन्तन की दृष्टि से कविश्री जी पूर्ण स्वतन्त्र हैं। विचार नियन्त्रण में कविश्री का विश्वास नहीं है। निन्दा एवं प्रशंसा का प्रश्न उन्हें कभी चिन्तन से विचलित नहीं करता।

विचारों में दृढ़ता, अन्तःकरण में भव्य करुणा, चिन्तनपूर्ण धार्मिक जीवन, यही कविश्री जी का समग्र व्यक्तित्व है।

यह निष्कंप दीप युगों-युगों तक इसी प्रकार प्रकाश विकीर्ण करता रहे। यही मेरी मंगल-कामना है।
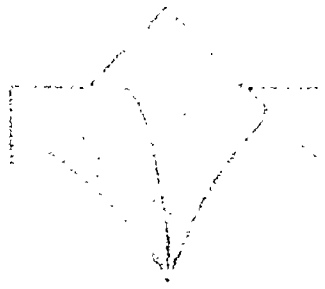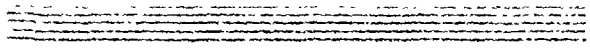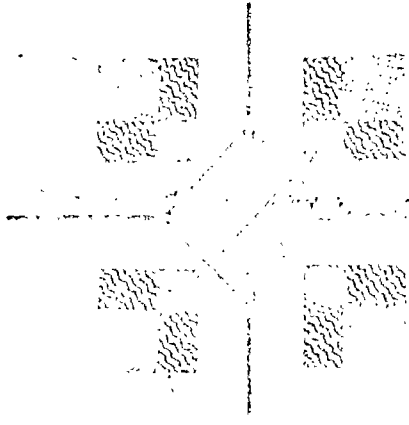
जैन जगत के बहुश्रुत मनीषी

श्रद्धा, सेवा एवं साधना की मूर्ति

उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती के मंगलमय प्रसंग पर

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ

कोटि कोटि वन्दन

घीसीलाल कोठारी

के० जी० कोठारी परिवार

नाहरगढ़ रोड,

जयपुर

धर्म न वाह्य-भाव में किंचित्
वाह्योन्मुखता वंधन है ।
आत्मभाव ही एक धर्म है,
जो सब बंध विमोचन है ।

शास्त्रों को चुनौती देना मनुष्यमात्र का अधिकार है

० प्रो० श्री दलसुख मालवणिया
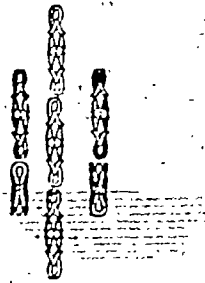
शास्त्र और ग्रन्थ में क्या भेद है ? यह समस्या सुलझाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। जो एक समुदाय के लिए शास्त्र है, वही अन्य समुदाय के लिए ग्रन्थ है। जिसे प्रमाणिक माना जाय वह शास्त्र और जिसका प्रामाणिकता अप्रामाणिकता से कोई सम्बन्ध न हो वह ग्रन्थ—ऐसी सामान्य व्याख्या भी अंत में आकर व्यर्थ ही सिद्ध होती है, जब हम यह देखते हैं कि कितना भी तर्क लगाकर आप शास्त्रोक्त बातों का प्रमाण आज सिद्ध कर दें, कल विरोधी तर्क उन्हीं बातों को अप्रमाण साबित कर सकता है। सर्वज्ञ की वाणी को शास्त्र माना जाय यह व्याख्या भी तब ही उचित हो सकती है जब यह सिद्ध हो जाय कि वस्तुत: कोई सर्वज्ञ था और उसी की यह वाणी है। वेद जैसे शास्त्रों के विषय में यह कहा जाता है कि वह किसी पुरुष की वाणी ही नहीं है और कोई पुरुष सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता है। फिर भी वेद को बहुत बड़ा समुदाय प्रामाणिक शास्त्र मानता है और जैन, बौद्ध आदि उसे शास्त्र ही मानने को तैयार नहीं। स्वयं जैन शास्त्र की ही बात करें तो जैन आगम जो विद्यमान हैं, प्रथम तो उनकी संख्या में विवाद हैं, और यह भी विवाद है कि वे वस्तुत: जैनागम या जैनश्रुत के नाम के योग्य हैं या नहीं। दिगम्बर कहते हैं कि सब शास्त्र नष्ट हो गये, श्वेताम्बर कहते हैं कि वे नष्ट नहीं हुए, नष्ट होते-होते जो हमने बचा लिया वे ही जैनागम मौजूद हैं। स्थानकवासी कहेंगे कि ३२ ही जैनागम है, ४५ नहीं। ऐसी स्थिति में उसे शास्त्र की संज्ञा ग्रन्थ संज्ञा, से पृथक करके कैसे दी जाय ? शास्त्र का अर्थ है—प्रमाण। और प्रमाण का तो मतलब ही यह होता है कि जो सबके लिए प्रमाण हो। जैन आगमों की ही बात की जाय और पूछा जाय कि कौन सी पुस्तक को—शास्त्र कहा जाय ? संभव है एक भी पूरी पुस्तक शास्त्र कोटि में न आवे। तब शास्त्रोक्त बातों को चुन-चुनकर प्रमाण-अप्रमाण मानने की प्रक्रिया शुरू करनी पड़ती है—यही शास्त्रों को चुनौती है। ऐसी चुनौती दी जा सकती है या नहीं—यह प्रश्न नया नहीं है। भूतकाल में ऐसी चुनौती दी गई है और देना आवश्यक भी होता है। यदि हम ज्ञान की सीमा को मानलें, तब ही चुनौती को कोई अवकाश नहीं रहता। वेद से लेकर आज तक के पूरे साहित्य का विकास नहीं होता यदि शास्त्रों को चुनौती नहीं दी होती। मानव समाज और पशु समाज की यही विशेषता है कि पशुओं में ज्ञान का विकास रुक गया है। मानव समाज इसी

कारण पशु समाज से भिन्न है कि वह ज्ञान विकास में रुकावट मान्य रखता नहीं, सदैव ज्ञान के क्षेत्र में प्रगतिशील हैं। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने जो सिद्ध किया उसी को पकड़ कर बैठे रहते तो आज जो सर्वतोमुखी विकास दिख रहा है वह कैसे होता? अतएव शास्त्रों को चुनौती देना यह तो मनुष्य मात्र का प्राकृतिक हक है। उससे उसे कोई वंचित नहीं रख सकता। यह वंचना मूढों के बीच चल सकती है, प्रबुद्धों के नहीं। प्रबुद्ध व्यक्ति तो ज्ञान क्षेत्र में रुकावट मंजूर ही नहीं कर सकता। और इसीलिए वह सदैव शास्त्रों को चुनौती देने के लिए तत्पर रहता है। और उसी से ज्ञान-विज्ञान के विकास में अपना नया प्रदान कर जाता है। यही कारण है कि पुराने परमाणु विज्ञान में से आज उस विद्या में इतना विकास हुआ है। यही वात सब क्षेत्रों में कही जा सकती है। पुराना मन्तव्य प्रयत्नपूर्वक पकड़ रखने से विकास अवरुद्ध होता है, मनुष्य जाति की प्रगति रुक जाती है। यदि यही मंजूर हो कि हमें प्रगति नहीं चाहिए तब ही हम यह कह सकते हैं कि शास्त्रों को चुनौती नहीं दी जा सकती।

वेद की बात लें तो कितने देवों का प्राधान्य आराध्य के रूप में था? समय वीता और सब देवों का देव एक ब्रह्म स्थिर हुआ। पुनः सगुण-निर्गुण की चर्चा में से शिव और विष्णु ये ही प्रधान रह गये और एक ईश्वर के ही विविध अवतार आ गये। और न जाने कितने और छोटे मोटे देव-देवी अप्रधान रूपेण आराधना में स्थान पाते रहे। अनेक धर्म संप्रदाय हुए जिनका आधार एक मात्र वेद रहा। यह कैसे होता यदि वेद को ही चुनौती न दी जाती?

बौद्धपिटक और बुद्ध का उपदेश तो एक ही होगा, किन्तु कितने संप्रदाय बुद्ध और उनके उपदेश को लेकर हुए? क्या यह बौद्ध पिटकों के लिए चुनौती नहीं थी? यही बात जैन आगम या भ० महावीर के उपदेश को लेकर हुई है। यदि आगमों को चुनौती नहीं दी गई होती तो ये अनेक जैन संप्रदाय कैसे पनप सकते थे? इतना ही क्यों? और भ० ऋषभदेव का ही शासन न होकर भ० महावीर का शासन क्यों माना जाता है? भ० पार्श्व के शासन को चुनौती ही का परिणाम है कि भ० महावीर का शासन चल रहा है। और यह शासन भी कोई अंतिम तो नहीं माना गया। इसके बाद भी तो कई तीर्थंकर होंगे और भ० महावीर का शासन मिटकर उनका शासन जमेगा। यह सब किस आधार पर हो रहा है? आधार यही है कि शास्त्र को चुनौती विना दिये नया शास्त्र जम नहीं सकता है। चुनौती देना यह मनुष्य मात्र का जन्म सिद्ध अधिकार है। उसका उपयोग भूतकाल में हुआ है और भविष्य में भी होता रहेगा। इसी में मनुष्य जाति का उद्धार है, उन्नति है, प्रगति है।

मनुष्य ने धार्मिक संप्रदायों में प्रगति के लिए एक नया रास्ता अपनाया है और वह है पुरानी बोतलों में नई शराब भर देना। वेद, बौद्ध पिटक, जैनागम वे के वे ही हैं, किन्तु उनके अर्थ अपने मनमाने धार्मिक नेताओं ने किये और नये विचार का प्रवाह सतत चालू रखा। यदि यह नही होता तो हम आज बीसवीं सदी में भी आज से तीन हजार वर्ष पूर्व की शताब्दी के होते और गौ की हत्या करके उसके मांस को खाकर धार्मिक होने का

ढोंग रचते। शक्ति के देवता इन्द्र की पूजा करते और वीतराग को कोई पूछता भी नहीं। संन्यासी और भिक्षु दिखाई ही नहीं देते। किन्तु हमारी धार्मिक आस्था, अपर संस्कार, हमारे क्रियाकांड के रूप, हमारा दर्शन सब कुछ वेदकाल से बदल गया है फिर भी हम आज भी वेद की ही दुहाई देते हैं कि हम जो आज कर रहे हैं, उस सबका मूल वेद में है। जैन भिक्षु होकर भी नंगा नहीं मिलता, मिलते हैं तो कहीं दो चार, किन्तु वस्त्रधारी की संख्या बढ़ गई। यह सब यदि जैनागम को चुनौती दी नहीं गई होती तो कैसे संभव था? सभी अपने अपने क्रियाकांड और मन्तव्य को भ० महावीर के उपदेश से जोड़ते हैं। तब भी मान्यता भेद और आचार भेद क्यों? यही तो प्रभाव है पुरानी बोतलों में नई शराब भरने का, या कहें कि शास्त्रों को चुनौती देने का। यही बात बौद्धों के अनेक संप्रदायों की विविध मान्यता और क्रियाकांडों के विषय में भी कही जा सकती है।

ऐसी स्थिति में यह कहना कि शास्त्रों में जो लिखा है वह वैसा ही है, वैसे ही मान लेना चाहिए यह मनुष्य की बुद्धि का अपमान करना है। यह अपमान मनुष्य ने कभी सहन नहीं किया, न करता है, न करेगा।

यह बहुरूपियापन

एक सबसे विकट बात तो यह है कि हमने साधना को अलग-अलग कठघरों में खड़ा कर दिया है। उसके व्यक्तित्व को, उसकी आत्मा को विभक्त कर दिया है। उसके समान रूप को हमने नहीं देखा। टुकड़ों में देखने की आदत बन गई है। लोग घर में कुछ अलग तरह की जिन्दगी जीते हैं, परिवार में कुछ अलग तरह की: घर के जीवन का रूप कुछ और है और मंदिर, उपाश्रय, धर्म-स्थानक के जीवन का रूप कुछ और ही है। वे अकेले में किसी और ढंग से जीते हैं और परिवार एवं समाज के बीच किसी दूसरे ढंग से। मैंने देखा है, समाज के बीच बैठकर जो व्यक्ति फूल की तरह मुस्कराते हैं, फव्वारे की तरह प्रेम की फुहारें बरसाते हैं, वे ही घर में आकर रावण की तरह रौद्र बन जाते हैं। क्रोध की आग उगलने लगते हैं। धर्मस्थानक में, या मंदिर में जिन्हें देखने से लगता है ये कि बड़े त्यागी-वैरागी हैं, भक्त हैं, संसार से इन्हें कुछ लेना-देना नहीं, निस्पृहता इतनी है कि जैसे अभी मुक्ति हो जायेगी, ये ही व्यक्ति जब वहां से बाहर निकलते हैं, तो उनका रूप बिलकुल बदल जाता है, इस धर्म की छाया तक उनके जीवन पर दिखाई नहीं देती!

—श्री अमर भारती अक्टूबर १९६९

○ अणुव्रत परामर्शक

मु

नि

श्री नगराज जी,

डी० लिट्,

प्रत्येक कार्य एक विचार क्रान्ति का परिणाम होता है यह जितना सही है उतना ही सही यह है कि प्रत्येक कार्य आगे चल कर अन्य विचार क्रान्तियों का उग्र विरोधी बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि प्रत्येक धर्म अपनी विचार क्रान्ति को अन्तिम, शाश्वत और अपरिवर्तनीय मान बैठता है। यह यथार्थ का अनुसरण नहीं है। कोई वर्षा अन्तिम नहीं है और कोई फसल अन्तिम नहीं है; इसी प्रकार कोई विचार क्रान्ति भी अन्तिम नहीं है।

सत्य सापेक्ष होता है। काल और अभिज्ञा की तरतमता में वह एकरूप रह भी कैसे सकता है! सत्य का नूतन पर्याय ही विचार क्रान्ति है।

सत्य को समझ पाना एक बात है और उसे कह पाना दूसरी बात। कविरत्न श्री अमरमुनि जी को ये दोनों बातें वरदान रूप में मिली हैं, अतः वे हमारी ईर्ष्या के पात्र हैं।....

—लेखक

भारतीय जीवन के दो अवरोध
अतीतवाद और इतिवाद

भारतवासियों की चिरपोषित आस्था रही है—अतीत उत्तम था, वर्तमान हीन है और भविष्य हीनतर व हीनतम ही आने वाला है। द्वापर, त्रेता, सत्ययुग क्रमशः हीन थे। कलियुग हीनतर बीत रहा है तथा उसे हीनतम होकर ही समाप्त होना है। जैन धारणा के अनुसार भी वर्तमान कालचक्र का उत्सर्पण (ऊर्ध्वगमन) बीत गया, अवसर्पण (अधोगमन) बीत रहा है। अतिसुख, सुख, सुखाधिक-दुःख, दुःखाधिक-सुख, अवसर्पण चक्रार्ध के ये चार घटक बीत गये। दुःखमूल यह पंचम घटक बीत रहा है। घोर दुःख का षष्ठ घटक आनेवाला है।

उक्त शास्त्रीय धारणाओं की वैज्ञानिक समीक्षा में न भी जायें और हम यह मान लें कि काल के अनन्त और असीम प्रवाह में आरोहण व अवरोहण का क्रम कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, तो भी हमें मानना होगा, संख्यातीत वर्षों का यह अवरोहण नदी के प्रवाह की तरह सर्वथा ढालू नहीं है। यह आरोहण भी काल के समुद्र में आनेवाला भाटा है। इसमें प्रतिक्षण एक के बाद एक आरोहण की तरंगे भी उठती ही रहती हैं। इस काल-समुद्र की एक-एक तरंग के उत्थान और पतन में अनगिन पीढ़ियाँ बीत सकती हैं।

अवरोहण की इस वस्तु स्थिति को न समझ कर भारतीय लोगों ने उसे स्थूल रूप से पकड़ लिया—अतीत उत्तम था, वर्तमान हीन है तथा भविष्य हीनतम होगा। काल का अवरोहण सपाट ढालू हो तो महाभारत के बाद शांति होनी ही नहीं चाहिए थीं और रात के बाद दिन होना ही नहीं चाहिए। हिन्दू धर्म के अनुसार एक के बाद दूसरे अवतार होने ही नहीं चाहिए तथा जैन धर्म के अनुसार एक के बाद दूसरे तीर्थंकर होने ही नहीं चाहिए। पर काल का अवरोहण सपाट ढालू नहीं है इसीलिए हम श्रेष्ठ के बाद अश्रेष्ठ तथा अश्रेष्ठ के बाद पुनः श्रेष्ठ देखते हैं।

काल का अवरोहण भारतीय मानस पर रूढ़ रूप से हावी हो गया है। वे अतीत की अश्रेष्ठता और वर्तमान की श्रेष्ठता देखना मानो भूल ही गये हैं! कहीं भी पाँच आदमियों की चर्चा-वार्ता पर ध्यान लगावे, सुनने को मिलेगा—वह जमाना गया, कहां है अब पहले जैसी कृषि, कहां है अब पहले जैसा वाणिज्य, कहाँ हैं अब पहले जितनी विद्यायें ? कहाँ हैं अब पहले जैसा वास्तु-विज्ञान और कहा हैं अब पहले जैसे युद्धास्त्र आदि-आदि। वस्तु-स्थिति यह है कि उक्त सारे विषयों में मनुष्य पहले की अपेक्षा सहस्र गुना आगे अधिक बढ़ चुका है। उसके फलित भी आँखों के सामने हैं, पर अतीतवाद की रूढ़ आस्था के कारण भारतीय मानस उसे देख व मान नहीं पाता।

बैलों की जोड़ी और हल से मनुष्य खेती करता था। मात्र वर्षा पर उसका भविष्य निर्भर था। आज उसके हाथों में ट्रैक्टर है। उसके दायें-बायें नहरें हैं। उसके दिमाग में उपज बढ़ाने के नये-नये तौर-तरीके व फार्मूले हैं। कृत्रिम वर्षा के दिन उसे सामने मंडराते दिखलाई दे रहे हैं। प्रयोग, अनुसंधान और प्रशिक्षण के बड़े-बड़े संस्थान उसके साथ हैं। अब कहिए, कैसी थी पुरानी कृषि और और कैसी है अब नई कृषि ?

प्राचीन काल के समुन्नत व्यवसाय को लें। गधे, खच्चर, ऊँट, बैल-गाड़ी भारवाही साधन थे। छोटी-बड़ी नावायें पाल व हवा के सहारे नदियों को व समुद्र के कुछ भाग को पार करती थीं। वस्त्र के उत्पादन का आधार चरखा और हाथ का ताना-बाना था। अन्य उत्पादन-साधन भी उसी अनुपात में होंगे। आज बैल गाड़ी का स्थान रेल गाड़ी व अन्य भीमकाय यानों ने ले लिया है। जल, स्थल और नभ में उनकी समान गति है। चरखे का स्थान मीलों ने ले लिया है। अन्य उत्पादन-साधन भी उस अनुपात में बढ़ गये हैं। बैंक आदि की व्यवस्थायें व्यवसाय को कितना सुगम व व्यापक बना रही हैं। यह हुआ एक स्थूल लेखा-जोखा पहले के व अब के व्यवसाय का।

प्राचीन काल की बड़ी विद्या उड़न खटोलों एवं विमानों की मानी जाती हैं। पर वह कितने लोगों के लिए सुलभ थी ? इने-गिने विद्याधरों के लिए। आज हर मनुष्य विद्याधर माना जा सकता है। सब के लिए वायुयान सेवा सुलभ है। नालन्दा व तक्षशिला के विश्वविद्यलायों की बात आती है। पर वे समग्र भारत में कितने थे ? दो ही थे या अधिक ? आज देश में ७५ से भी अधिक विश्वविद्यालय चल रहे हैं। उन दो विश्वविद्यालयों से अधिक विषय उनमें पढ़ाए जाते हैं। प्रशिक्षण एवं अनुसंधान की विशेष प्रणालियां विकसित हुई हैं। इस स्थिति में भी क्या हम यही मानते रहें, पहले बहुत ज्ञान-विज्ञान था, अब सब चौपट हो गया है।

वास्तुकला की दृष्टि से देखें तो प्राचीन काल में अधिक से-अधिक 'सप्तभौम' प्रासादों का वर्णन आता है। 'सप्तभौम' प्रासाद भी बड़ी राजधानियों में विरल रूप से होते होंगे। आज बम्बई, कलकत्ता जैसे नगरों में 'सत मंजिली' बिल्डिगों की क्या गणना है। वहाँ वे सर्वोच्च नहीं, अल्पोच्च बन गई हैं। अब वहाँ नित-नये 'विंशतिभौम' और 'त्रिशत् भौम' प्रासाद खड़े हो रहे हैं। विश्व के पश्चिमी अंचल की ओर हम झांके तो 'सप्त भौम' के बदले 'शत भौम' और उससे भी बड़े प्रासाद दिखलाई पड़ते हैं।

प्राचीन युग के शस्त्रास्त्रों में मुख्यतः—बाण, गदा, चक्र, हल, मूसल आदि नाम आते हैं। ये भी वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्तियों के शस्त्र थे। रामायण और महाभारत में अग्नि-बाण आदि दिव्य अस्त्रों का वर्णन आता है। पर, आज के आणविक अस्त्रों ने क्या उन दिव्य और अदिव्य सभी अस्त्रों को पीछे नहीं छोड़ दिया है ?

अतीतवाद की अवास्तविक छाया भारतीयों के मन पर इतनी हावी हो गई है कि वे सम्यग् और असम्यग् को सही आंखों से देख भी नहीं पाते। उनका मानदण्ड बन गया है—जो प्राचीन है, वह सब अच्छा है, जो नवीन है, वह बुरा है ही। भारत वर्ष में ऐसे बहुत सारे गाँव हैं, जहाँ लोगों ने अपने यहाँ रेल नहीं होने दी। उन्हें लगा, रेल का आवागमन हो गया तो हमारा गाँव चोर व डाकुओं का अड्डा बन जायेगा। पशु, मनुष्य रेल से कटते रहेंगे। आज वे ही लोग किसी तरह से रेल गाँव में आ जाये, इसलिए जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। यह इसी बात का उदाहरण है कि भारतीय आँखे नवीन वस्तुओं के केवल दोष ही देखती हैं और प्राचीन वस्तुओं के केवल गुण ही। यह एक प्रकार का मिथ्यात्व है, जो व्यक्ति को यथार्थ तक नहीं पहुँचने देता।

जिसे हम प्राचीन काल कहते हैं, वह अवश्य विकासोन्मुख था। उस समय भारतीय जीवन हर दिशा में प्रगति कर रहा था। धर्म, दर्शन, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, शिल्प, साहित्य आदि सभी क्रमिक रूप से आगे बढ़ रहे थे। मध्य युग में भारतीय मानस श्रद्धा के नाम पर इतना समर्पित हो गया कि पूर्वजों के ज्ञान पर इति लगाकर उसे पूजने लगा। उपलब्ध धर्म-शास्त्रों व दर्शन शास्त्रों से आगे धर्म और दर्शन में सोचने का कुछ नहीं है। चरक व सुश्रुत से आगे आयुर्वेद में सोचने का कुछ नहीं है। पाणिनी

से आगे व्याकरण में सोचने का कुछ नहीं हैं। पतंजलि से आगे योग में सोचने का कुछ नहीं है, इसी प्रकार शेष सभी विषयों में।

अतीतवाद की पृष्ठभूमि पर इतिवाद का यह विषवृक्ष खड़ा हुआ। ज्ञान-विज्ञान और सम्बद्ध पुरुषार्थ पर पूर्ण विराम लग गया। विकास स्थित हो गया। अब उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान की विस्मृति का अयन चला। पढ़ने वाले भी कम और ज्ञान देने वाले भी कम। इतिवाद के विष वृक्ष पर बौद्धिक संकीर्णता के कडवे फल आये। जिसके पास जो कला थी, जिसके पास जो रासायनिक बोध था, वह उसके साथ ही समाप्त हो गया। मेरे समान कोई दूसरा न हो, या मेरी रोजी न मारी जाये, यह बौद्धिक दैन्य इतना बढ़ा कि लोग अपने पुत्र या शिष्य को भी ज्ञान देना घातक समझने लगे। तथारूप अन्य परिस्थितियाँ भी बनी। परिणाम आया कि भारत जैसा प्राचीन राष्ट्र आज के नवोदित राष्ट्रों की अपेक्षा में भी सब ओर से पिछड़ रहा है। ज्ञान-विज्ञान की बात तो दूर, अपने भरण-पोषण के लिए व अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए भी वह परमुखापेक्षी बना हुआ है।

पश्चिम की दृष्टि अतीतवाद और इतिवाद में कुण्ठित नहीं हुई। पश्चिमी मानस चिरंतन ज्ञान का आदर करता है, पर उसे पूजता नहीं। वह उसमें अपने नये पृष्ठ और जोड़ता है। गेलेलिओ और कोपरनिक्स के ज्ञान को न्यूटन ने परिमार्जित किया व आगे बढ़ाया। न्यूटन के ज्ञान में आइन्स्टीन ने परिवर्तन किया व उसे आगे बढ़ाया। उसी भूगोल व अन्तरिक्ष-विज्ञान में चाँद पर पहुँच कर अब चारचांद और लगाये जा रहे हैं। पश्चिम के अन्य विकासों का भी ऐसा ही इतिहास है। मनुष्य की दृष्टि वायुयान के कुतुबनुमा की सुई है। वह तनिक भी लक्ष्य से हट गई तो मनुष्य अनन्त में भटक जाता है। भारत भी वस्तुतः ऐसी ही भूल का शिकार है। वह अपने पूर्वजों के ज्ञान की महिमा गाता है, दूसरे लोग उस ज्ञान को आगे बढ़ाने में सफल हुए हैं। वह गायों की पूजा करता है, दूसरे लोग गायों को स्वस्थ, सुदृढ बनाने एवं उनका दूध बढ़ाने में सफल हुए हैं। कहा जाता है, कभी भारत में दूध-दही की नदियाँ बहा करती थीं। आज भारत में दूध-दही दुर्लभ हो रहे हैं और नदियों की कहावत वहां चरितार्थ हो रही है। भारतीय मनुष्य की औसतन आयु पिछले वर्षों २६ वर्ष थी। अब चेचक, महामारी, राजयक्ष्मा पर 'एलोपेथी' का कुछ नियंत्रण हुआ, तब वह बढ़कर ४६ हुई है। अमेरिका की औसतन आयु ७२ वर्ष की बताई जाती है। भारत के लोग सोचते हैं, कलियुग में आयु तो क्रमशः घटने ही वाली है। इसे बढ़ाने का प्रयत्न मूर्खता है। ऐसा सोचना शास्त्रों को सही ढंग से न समझने का परिणाम है। शास्त्रों ने कहीं उद्योग की उपेक्षा नहीं की है और न काल को एकधार गिरता हुआ ही बताया है। भारतीय की औसतन आय लगभग ३०० रुपये वार्षिक है। एक अमेरिकन की औसतन आय लगभग ६० हजार रुपये वार्षिक है। भारतीय इसे कर्म-फल मानकर संतोष ले लेंगे; वे इस बात को भूल जायेंगे कि जीवन में पुरुषार्थ का भी कोई स्थान है और कर्म व उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं, न कि एक दूसरे के निवर्तक।

आश्चर्य और खेद की बात तो यह है कि भारतीय लोग अब तक अपनी भूल को समझ भी नहीं पाये हैं। वे पश्चिम को गालियां देते हैं, कोसते हैं। पश्चिमी विकास को निकेवल भौतिक प्रगति कहकर मुँह पिचकाते हैं। वे साथ साथ पश्चिम के आविष्कारों पर इतने आधारित भी होते जाते हैं कि उनका उपयोग किए बिना उनका काम भी नहीं चलता। फाउण्टेन पेन, घड़ी, सिलाई की मशीन, बिजली, तार, टेलीफोन, रेडियो, रेल, वायुयान आदि आविष्कारों में एक भी ऐसा नहीं, जो भारतीयों ने किया हो या एक भी ऐसा भारतीय हो जो इन साधनों के उपयोग से बचा हो? अद्‌भुत बात है, पश्चिमी व वैज्ञानिक साधनों से लाभ भी उठाया जाता है और पश्चिम और विज्ञान को हीन व तुच्छ भी माना जाता है।

भारतीयों का अन्तिम अस्त्र है—पश्चिमी लोग भौतिक विकास में आगे हैं, पर आध्यात्मिक विकास में भारत अब भी सबसे आगे है। भारतवर्ष में महावीर, बुद्ध जैसे युग-पुरुष होते रहे हैं, अनेक योगी, ऋषि, महर्षि होते रहे हैं, यह गौरव की बात है। किसी युग में वह दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में भी सर्वोपरि रहा होगा, पर प्रश्न तो वर्तमान पर चिन्तन करने का है। अध्यात्म का प्रथम पक्ष दर्शन है और दूसरा पक्ष आचार है। बहुतों को पता नहीं है कि पश्चिम में दर्शन भी कितना द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है। जहां गति है, वहाँ विकास है, जहाँ अगति है, वहाँ कुण्ठा है। भारतवर्ष में दर्शन का विकास अतीतवाद और इतिवाद की कारा में बन्द है। पश्चिम में उसे आगे बढ़ने का अवकाश मिल रहा है। पश्चिमी लोग वैज्ञानिक पद्धति से प्रत्येक विषय का विकास करते हैं। दर्शन भी उनका उपेक्षित विषय नहीं है। शीर्षस्थ वैज्ञानिक भी अब विश्व पर दार्शनिक भाव-भाषा में सोचने-बोलने लगे हैं। इस स्थिति में यह हम आज न भी कहें कि भारत दर्शन के क्षेत्र में भी पिछड़ गया, पर कल वह नहीं पिछड़ जायेगा, यह कहे बिना भी नहीं रहा जासकता।

अध्यात्म का दूसरा पक्ष उपासना व आचार का है। यहाँ मंदिरों व धर्मस्थानों में उपासना होती है। पश्चिम के चर्चों में भी वैसी ही भीड़-भाड़ होती है। प्रार्थना कितनी शांति व एकाग्रता से हो, यह शायद भारतीयों को वहां से सीखना पड़े। धर्म-प्रचार में ईसाई लोग कितने दक्ष व सक्रिय हैं, यह अज्ञात नहीं है। आज ईसाई धर्म विश्व का सबसे बड़ा धर्म बन गया है। भारतीय लोग धर्म का ढ़िढोरा पीटते हैं, पर अपने धर्मों का बढ़ावा तो दूर, संरक्षण भी नहीं कर पाते। भारत में भी दिन दहाड़े कितने भारतीय ईसाई बन गये और बन रहे हैं।

आचार पक्ष को लें, धर्म के नाम पर या मानवता के नाम पर पश्चिम का नैतिक पक्ष भारतीयों की अपेक्षा निस्सीम ऊपर उठ गया है। भारत में झूठा तोल-माप, मिलावट, चोर बाजारी, रिश्वत आदि असाध्य रोग हो गये हैं। पश्चिम के लोग अपने जीवन से इन बातों को बहुत कुछ मिटा ही चुके हैं। अन्य बुराइयां जो शेष हैं, उन्हें मिटाने में वे प्रगति के पथ पर हैं। इस स्थिति में पता नहीं, भारतीय लोग किस आधार पर सोचते हैं, अध्यात्मिक विकास में भारतीय अब भी सबसे आगे हैं।

भारतीयों के मन में यह एक भ्रान्त धारणा है कि पश्चिम तो केवल भौतिक प्रगति ही कर रहा है। बड़े-बड़े शो-रूमों में लाखों का माल पड़ा है। पृथक्-पृथक् वस्तुओं के मूल्य लिखे पड़े हैं। कोई रखवाला नहीं, कोई भाव बताने वाला नहीं। ग्राहक मन चाही वस्तुएं बटोरता है, कोने में बैठे विक्रेता के पास आकर सही-सही बिल बनवाकर सही-सही पेमेण्ट करता है। क्या यह भी भौतिक प्रगति है ? यदि ऐसा ही है, तो बताएं नैतिक प्रगति फिर क्या होगी ?

पश्चिम को सोचने की व कार्यकरने की एक वैज्ञानिक पद्धति मिली है। विज्ञान स्वयं केवल जड़ का ही उपासक नहीं रहा है। नैतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, ये सब चेतन पक्ष भी उसके अंग बन गये हैं। मानव पक्ष से सम्बद्ध अन्य अनेक धाराएं और उसमें जुड़ती जा रही हैं।

भारतीय लोग अपने अतीत के ज्ञान, विज्ञान और कौशल का कितना ही गर्व करें, पर वस्तुस्थिति यह है कि इतिहास और पुरातत्व के अन्वेषण की पश्चिमी पद्धतियाँ यहाँ न आई होती तो विगत ढाई हजार वर्षों का इतिहास भी वे अपना खो देते। पश्चिमी विद्वानों ने ही मुख्यतः भारतीय इतिहास का अनुसंधान किया है। कैसे और क्यों, के उत्तर में एक उदाहरण पर्याप्त होगा। सन् १३५६ में देहली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक को प्राचीन लेखों वाले दो विशाल स्तंभ मिले। वे बड़े कष्ट से देहली लाये गये। सुल्तान के मन में, उनमें क्या लिखा है, यह जानने की तीव्र उत्कण्ठा थी। विद्वानों व विशेषज्ञों को एकत्रित किया गया। कोई पढ़ नहीं सके, बादशाह अकबर ने उन्हें पढ़ाने का प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली। भारत में अंग्रेज लोग आये। पश्चिमी प्रणालियों से पुरातत्व और इतिहास के अन्वेषण का कार्य आगे बढ़ा। गुप्त, खरोष्ठी, ब्राह्मी आदि लिपियाँ पढ़ी गईं। तब पता चला यह सम्राट अशोक के शिला लेख हैं, ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। शताब्दियों पूर्व भारतीय जिन लिपियों को भूल गये थे, आज उन लिपियों की असीम श्रम से वर्णमालाएं तैयार कर ली गई हैं। उपलब्ध ताम्रपत्र, सिक्के, शिलालेख आदि पढ़ लिये गये हैं, मोहंजोदड़ो और हड़प्पा की वर्णमाला पकड़ने का प्रयत्न चल रहा है। अस्तु ज्ञान-विज्ञान की पश्चिमी पद्धतियों को केवल भौतिक कहकर हम उनके साथ तो न्याय करते ही नहीं, प्रत्युत उनसे दूर रहकर स्वयं को भी उसके लाभों से वंचित रखते हैं।

प्रस्तुत लेख का अभिप्रेत भारतवर्ष की गर्हा का नहीं है और न भौतिक प्रेरणा व पश्चिम की श्लाघा का ही। भारत में कोई विशेषता ही नहीं है तथा पश्चिम में कोई न्यूनता ही नहीं है, ऐसा भी अभिप्रेत इस लेख का नहीं है। लेख का अभिप्रेत मात्र दृष्टि-परिमार्जन का है। यथार्थ दृष्टि सम्यग् दर्शन है, अयथार्थदृष्टि मिथ्यात्व है। अतीतवाद और इतिवाद के आवर्त से निकल कर ही भारत की नावा नैतिक, बौद्धिक व अन्य अपेक्षित विकास की मंजिलों को तय कर सकती है। अज्ञानमूलक दरिद्रता व अकर्मण्यता का नाम अध्यात्म व निवृत्ति नहीं है।

●

० डा. बशिष्ठ नारायण सिन्हा,
पी-एच्० डी०

शास्त्र प्रतिबद्धता या सत्य प्रतिबद्धता

शास्त्र :

०

सामान्य तौर से ज्ञान के चार साधन माने गये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द। वस्तुओं का इन्द्रिओं के साथ सीधा सम्पर्क होना प्रत्यक्षीकरण कहा जाता है और उससे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। पूर्व निर्धारित ज्ञान-मान्यता को आधार मानकर वर्तमान में उपस्थित वस्तु के संबंध में एक अन्दाज लगाना या जानकारी प्राप्त करना अनुमान समझा जाता है। जिस वस्तु के संबंध में अच्छी तरह जानकारी है उससे किसी दूसरी वस्तु की तुलना करके उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना उपमान कहा जाता है। आप्त पुरुषों के वचन जो ग्रन्थों में संकलित होते हैं और शास्त्र के रूप में जाने जाते हैं, जिन पर श्रद्धा रखकर और विश्वास करके हम जिन्हें सब तरह से प्रमाणित समझते हैं, वे शब्द कहे जाते हैं। अर्थात् शास्त्र ज्ञान के साधनों में से एक है।

शास्त्रों के सबंध में पौरुषेयता और अपौरुषेयता का प्रश्न उठता है। जैन एवं बौद्ध मतावलम्बी यह मानते हैं कि उनके शास्त्र क्रमश: आगम एवं पिटक पौरुषेय हैं अर्थात् मानवकृत हैं। क्योंकि आगमों में महावीर के वचनों का संकलन किया गया है तथा पिटकों में बुद्ध के वचनों का। किन्तु वेद, बाइबिल, कुरान आदि को मानने वाले लोग इन सबों को अपौरुपेय मानते हैं। वेदों के सम्बन्ध में कुछ लोगों का मत है कि इनकी रचना किसी अलौकिक शक्ति के द्वारा हुई है। वैदिक काल के ऋषिगण तो केवल देखने वाले थे, रचना करने वाले नहीं—'**ऋषयो मंत्रद्रष्टारः, न तु कर्त्तारः।**' दूसरा मत पाश्चात्य विचारकों का है। वे लोग मानते हैं कि वैदिक काल के लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों से डरकर उनकी प्रार्थना, पूजा आदि शुरू की ताकि उनसे उनका कोई अहित न हो और उन्हीं प्रार्थना एवं पूजा की पद्धतियों को वेदों में संकलित कर दिया गया। किन्तु इन दोनों ही मतों का खण्डन करते हुए डा० चन्द्रधरशर्मा ने कहा है कि—वेदों में प्राप्त सिद्धान्त न तो अपौरुपेय हैं और न भय के कारण रचे गये हैं, बल्कि वैदिककाल के उन

तीक्ष्ण मेधा वाले महान् साधक एवं सुचिन्तक ऋषियों के दिमाग की उपज हैं, जिन लोगों ने साधना एवं तप के बल पर सत्य का साक्षात्कार किया था।[1] इस तरह शास्त्रों के सम्बंध में पौरुषेयता और अपौरुषेयता की समस्या बहुत ही जटिल है जिसे सुलझाना असंभव सा हो गया है।

किन्तु जहाँ शास्त्रों को पौरूषेय माना गया है, वहाँ भी कोई समस्या न हो ऐसी बात नहीं। यदि शास्त्र पौरुषेय हैं तो प्रश्न उठता है कि वे सात्विक हैं अथवा असात्विक, सच्चे हैं या झूठे। यह समस्या वहाँ नहीं उठ खड़ी होती, जहाँ यह मान लिया जाता है कि शास्त्र अपौरुषेय हैं, क्योंकि अपौरुषेयता को प्राप्त करना शास्त्र के लिए एक ऐसा वरदान हो जाता है जिससे उसके सारे दोष दूर हो जाते हैं। (किन्तु यथा संभव पौरुषेय शास्त्र के संबंध में ही) महाभारत में कहा गया है—चतुर्वर्ग अर्थात् **धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष** के साधन तथा इनकी राह पर आने वाले बाधकों को दूर करने के उपाय को दर्शाने वाला ही सच्चा शास्त्र है।[2] इसके विपरीत, जो ग्रन्थ धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष से सम्बंध नहीं रखता उसे शास्त्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। डा० भगवानदास जी ने भी कहा है—'**सात्विक बुद्धि** से निर्णीत, निश्चित, जीवनोपयोगी, उपकारक बातों का प्रतिपादक ग्रन्थ **सात्विक शास्त्र** हैं। **राजस-तामस् बुद्धि** से प्रतिपादित, जीवन-व्यवहार-बाधक, **राजस-तामस-शास्त्र**'।[3]

वैदिक परम्परा को मानने वाले कहते हैं कि वेद ही सबसे प्राचीन एवं सब में प्रधान शास्त्र है; जैन मतावलम्बी समझते हैं कि आगम सर्वोत्कृष्ट शास्त्र हैं; बौद्ध-धर्मानुयायियों के अनुसार पिटकों में प्राप्त ज्ञान राशि ही सब कुछ है; ईसाई कहते हैं एक मात्र शास्त्र बाइबिल है; इसलाम को मानने वालों की नजर में कुरान ही सबसे

---

1. The root fallacy in the western interpretation lies in the mistaken belief that the Vedic seers were simply inspired by primitive wonder and awe fowards the torces of nature. On the other extreme is the orthodox xiew that the Vedas are authorless and eternal, which too cannot be philosophically sustained. The correct position seems to be that the Vedic sages were greatly intellectual and intensely spiritual personages who in their mystic moments came face to face with Reality and this mystic experience this direct intutive spiritual insight overflew in litarature as the Vedic hymns.—Indian Philosophy, Dr. C. D. Sharma.

२. यास्ति यत् साधनोपायं चतुर्वर्गस्य निर्मलम्,
तथा तद् बाधनोपायं, एषा शास्त्रस्य शास्त्रता।
—महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय-१४१

३. शास्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद,–डा० भगवानदास, पृ०-११

महत्वपूर्ण शास्त्र है। फिर कैसे कहा जाये कि कौन सा शास्त्र सही अथवा कौन सा गलत है ?

शास्त्र का संबंध धर्म से होता है। धर्म देश और काल के अनुसार बदलता रहता है,[४] यानी धर्म स्थायी या अटल नहीं होता। इस पर स्थान का प्रभाव पड़ता है और समय या वातावरण का भी। उदाहरण स्वरूप ठंढे प्रदेश के लोगों के लिए माँस, मदिरा आदि का सेवन करना आवश्यक समझा जाता है, क्योंकि इनसे उनके जीवन की पुष्टि होती है, पर यही चीजें गर्म देशवालों के लिए अनावश्यक समझी जाती हैं और इनका सेवन करना सदाचार के दायरे से बाहर माना जाता है। इसी तरह सामान्य स्थिति में किसी का घात करना दोष या अधर्म माना गया है, क्योंकि इससे हिंसा होती है। किन्तु जब कोई व्यक्ति चोर अथवा डाकुओं के सामने आ गया हो तो उस समय उसका कर्त्तव्य होता है कि वह अपनी रक्षा करे, भलेही उसे अपने शत्रुओं की हिंसा ही क्यों न करनी पड़े। जब धर्म देश और काल के अनुसार बदलता रहता है और शास्त्र धर्म से संबंधित है, इसका मतलब होता है कि शास्त्र की मान्यताएं भी देश और काल के अनुसार बदलती रहती हैं।

शास्त्र का विवेक से भी गहरा लगाव है; क्योंकि विवेक ही यह निर्णय देता है कि कौन-सा शास्त्र कितना महत्वपूर्ण है। किसकी उपयोगिता है और कहाँ तक है ? जैसा कि डा० भगवानदासजी के मत से भी जाहिर होता है। जिस शास्त्र का महत्व जितना ही अधिक होता है वह उतने ही दिनों तक समाज में ठहर पाता है। अर्थात् शास्त्र की मौलिकता ही जो उसकी उपयोगिता पर आधारित होती है, उसके स्थायित्व को कायम रखने में समर्थ होती है।

सत्य :

किसी वस्तु का ठीक उसी रूप में वर्णन करना जिस रूप में वह है, अथवा किसी बात को बिना किसी रद्दोबदल के प्रस्तुत करना सत्य कहलाता है।[५] कार्य क्षेत्र में जैसा कहना वैसा करना सत्य समझा जाता है। इसके विपरीत कहना कुछ और करना कुछ असत्य कहा जाता है।[६] सत्य के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है और असत्य के प्रति घृणा। धार्मिक दृष्टिकोण से देखने पर सत्य पुण्यजनक है और असत्य पापजनक। सत्य

---

४. देश-काल-निमित्तानां भेदैधर्मो विभिद्यते।
अन्यो धर्मः समस्थस्य, विषमस्य चापरः॥
न त्वेवैकान्तिको धर्मः, धर्मेहि-आवस्थिकः स्मृतः।
—महा० भारत० शा० पर्व०

५. सत्य की खोज—महात्मा भगवानदीन, पृष्ठ-१

६. अन्नं भासइ अन्नं करेइ त्ति मुसावाओ-निशीथ चूर्णि ३९८८

अमृत प्रदान करने वाला होता है किन्तु असत्य मृत्यु लाने वाला होता है। सत्य प्रकाशमय होता है और असत्य अन्धकारमय। सत्य भाषण करने वाले स्वर्ग प्राप्त करते हैं और असत्य भाषी नरक को जाते हैं।

किन्तु इतना जानने के बाद भी सत्य और असत्य का मूलतः अन्तर स्पष्ट हो गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रश्न उठता है कि सत्य ज्ञान का जैसा का तैसा वर्णन करना सत्य है अथवा असत्य ज्ञान का भी जैसा का तैसा वर्णन करना सत्य है? उदाहरण के लिए मेरे सामने एक कलम पड़ी है और मैं समझता हूँ, कि यह कलम है यानी कलम के विषय में मेरी जानकारी सत्य हैं और दूसरे से जब मैं वर्णन करता हूँ तो इसका वर्णन एक कलम के रूप में ही करता हूँ। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि मेरे सामने जो कलम पड़ी है इसका सही ज्ञान मुझे न हो, मैं इसे कलम न समझकर पेन्सिल समझता होऊँ और दूसरे से इसका वर्णन एक पेन्सिल के रूप में ही करूँ। अब, यहाँ पर पहला वर्णन सत्य समझा जाना चाहिए अथवा दूसरा? ऐसी स्थिति में दो चीजें हमारे सामने आती हैं—(१) वस्तु का ज्ञान और (२) वस्तु का वर्णन। यदि कलम की जानकारी कलम के रूप में है और वर्णन भी कलम के रूप में हो रहा है तो यहाँ पर ज्ञान सत्य है और वर्णन भी सत्य है। लेकिन यदि कलम की जानकारी पेन्सिल के रूप है और वर्णन भी पेन्सिल के रूप में ही हो रहा है तो यहाँ पर ज्ञान असत्य होगा, पर वर्णन सत्य। इस प्रकार जहाँ ज्ञान और वर्णन दोनों ही सत्य होते हैं, वहाँ पूर्ण सत्यता होती है, किन्तु जहाँ ज्ञान असत्य है और वर्णन सत्य वहाँ पर आंशिक सत्यता होती है।

सत्य की महिमा बड़े ऊँचे स्वर में तथा विभिन्न शब्दों में गाई गई है। वैदिक परम्परा में कहा गया है—

"सत्य पर आकाश टिका हुआ है; समस्त संसार और उसके सभी जीव-जन्तु सत्य के आश्रय में ही हैं; सत्य के कारण दिन में प्रकाश होता है, क्योंकि सूर्य में रोशनी तथा जल में प्रवाह लाने वाला सत्य ही होता है।[७] सत्य पर ही पृथ्वी ठहरी हुई है, इसमें (पृथ्वी में) जो भी सम्पन्नता है वह सत्य के कारण ही है।[८] सत्य ही देव है;[९] सत्य ही ब्रह्म है;[१०]

---

७. सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो,
द्यावा च यत्र ततनन्न हानि च ॥
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति,
विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥
—ऋग्वेद १०/३७/२

८. सत्येनोत्तभिता भूमिः। —ऋग्वेद १०/८५/१

९. सत्यमेव देवाः। शतपथ ब्राह्मण १/१/१/४

१०. सत्यमेव ब्रह्म। शा० ब्रा० २/१/३/६

सत्य श्री है यानी सत्य शोभा है, लक्ष्मी है और सत्य ही ज्योति है;[११] सत्य ब्रह्म में प्रतिष्ठित है और ब्रह्म तप में[१२] अर्थात् सत्य सबसे ऊपर है; सत्य श्रेष्ठ है और श्रेष्ठ सत्य है;[१३] सत्य ही एक मात्र ब्रह्म है। सत्य में धर्म प्रतिष्ठित है;[१४] सत्य ईश्वर है, सत्य में धर्म है, सत्य सभी अच्छाइयों का मूल है, सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है;[१५] सत्य के समान कोई धर्म नही है;[१६] सत्य से धर्म की रक्षा होती है;[१७] जिसमें सत्य नहीं वह धर्म नहीं।[१८]"

जैन परम्परा में कहा गया है—सत्य समस्त पदार्थों को प्रकाशित एवं प्रभावित करने वाला है। सत्य भगवान है। संसार का सार एक मात्र सत्य ही है। इसमें समुद्र की गंभीरता है। यह सौम्यता में चन्द्रमा से और तेज में सूर्य से भी आगे है।[१९]

इसी तरह बौद्ध, ईशाई, इसलाम आदि विभिन्न परम्पराओं तथा रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महात्मागांधी, विनोवाभावे आदि आधुनिक मनीषिओं ने भी सत्य को बड़ा ऊँचा स्थान दिया है।

प्रतिबद्धता :

शास्त्र और सत्य दोनों के ही रूप अब सामने आ गये। अतः देखना यह है कि उनमें से किसे कोई व्यक्ति अपने जीवन का पथ प्रदर्शक बना सकता है। इन दोनों में से कौन ऐसा है जिसका नियंत्रण मानवीय जीवन के लिए अपेक्षित है। शास्त्र का सम्बंध

---

११. सत्यं वै श्रीर्ज्योतिः। —श० ब्रा० ५/१/५/२८
१२. सत्यं ब्रह्मणि, ब्रह्म तपसि। गोपथ ब्राह्मण २/३/२
१३. सत्यं परं, परं सत्यं'... .... —तैत्तिरीय आरण्यक नारायणोपनिषद् १०/८
१४. सत्यमेक पदं ब्रह्म, सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः। —वाल्मीकि रामायण १४/७
१५. सत्यमेवेश्वरो लोके, सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परं पदम्॥ —वा० रा० ११०/२८
१६. नास्ति सत्य समो धर्मो, न स्याद् विद्यते परम्। —महाभारत, आदि पर्व, ७४/१०५
१७. सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते। — महाभारत, उद्योग पर्व ३४/३६
१८. ......नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,....... —म० उ० प० ३५/५८
१९. सच्चं..............पभासगं भव पइ, सव्वभावाण
तं सच्चं भगवं...............................
—२।१ प्रश्न व्याकरण सूत्र
तं लोगम्मि सारभूयं, गंभीरयरं महासमुद्दाओ,
थिरयरगं मेरुपव्वयाओ, सोमयरगं चंदमंडलाओ,
दित्तयरं सूरमंडलाओ................ २।२ प्र० व्या०
(प्रश्न व्याकरण सूत्र) संवर द्वार अध्ययन-२ पूर्णतः देखें।

धर्म से है। वह पौरुषेय हो अथवा अपौरुषेय पर धर्म सम्बंधी विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, जिन पर श्रद्धा और विश्वास करके व्यक्ति चलता है। गुरु के अभाव में शास्त्र ही गुरु का काम करता है। इसी दृष्टिकोण से सिक्ख धर्म में ग्रन्थों के साथ गुरु विशेषण लगाया जाता है। जैन धर्म में सम्यक् दर्शन का तात्पर्य ही होता है शास्त्र एवं गुरुओं के प्रति श्रद्धा का भाव रखना। ज्ञात या अज्ञात रूप में यह बात सभी धर्मों में मानी जाती है। इसका मतलब है कि शास्त्र धर्म को प्रस्तुत करने या प्रसारित करने का साधन है, भलेही वह देश और काल के अनुसार क्यों न बदलता रहे। दूसरी बात यह कही गई है कि वह धर्म, धर्म नहीं कहा जा सकता जिसमें सत्य नहीं, अर्थात् सत्य धर्म का प्राण है। या यों कहें कि शास्त्र धर्म का शरीर है और सत्य प्राण है। सत्य के अभाव में शास्त्र की वही स्थिति समझी जा सकती है जो स्थिति प्राण के बिना किसी व्यक्ति के शरीर की होती है। फिर क्यों न सत्य को ही प्रधानता दी जाये।

सत्य के भी दो रूप होते हैं—(१) वह सत्य, जिसे व्यक्ति स्वयं भोग चुका होता है यानी जिसका अनुभव वह स्वयं किए होता है और (२) वह सत्य जिसे व्यक्ति दूसरों के द्वारा पाता है यानी दूसरा व्यक्ति अपने अनुभव को उसके सामने रखता है। शास्त्र में वही सत्य होता है जिसे दूसरे ऋषि-मुनि आदि अनुभव किए होते हैं। हम उनके अनुभव पर विश्वास करते हैं। किन्तु वास्तव में वह सत्य श्रेयष्कर होता है जिसका अनुभव व्यक्ति स्वयं करता है। यदि दूसरे संत या महापुरुष अपने अनुभव को किसी के सामने रखते हैं तो वह मात्र मानने और विश्वास करने की बात होती है। क्योंकि अनुभव का सही रूप में आदान-प्रदान नहीं होता। किन्तु संतों की बातों पर या शास्त्रों पर विश्वास इसलिए करना पड़ता है कि वे सत्य की ओर ले जाते हैं। शास्त्रों में सत्य की महिमा को पढ़कर ही हम उसकी ओर आकृष्ट होते हैं और फिर सत्य की प्राप्ति या सत्य को अनुभव करने का प्रयास करते हैं। अतः शास्त्र की प्रतिबद्धता वहाँ तक सही है जहाँ तक वह सत्य को प्राप्त करने में साधन का काम करता है अर्थात् शास्त्र की प्रतिबद्धता सीमित है और परिवर्तनशील भी, क्योंकि धर्म के साथ-साथ देश-कालनुसार शास्त्र भी बदलता रहता है। किन्तु सत्य की प्रतिबद्धता तो सीमा से परे तथा स्थायी है, क्योंकि सत्य साध्य है और शाश्वत भी।

जिस जीवन में आदर्श के प्रति निष्ठा और चरित्र में दृढ़ता नहीं होती, वह जीवन, प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ नहीं सकता।

जीवन गतिशील है। मानव का मन-मस्तिष्क निरन्तर सक्रिय रहता है। उसमें एक क्षण के लिए निष्क्रियता नहीं आती। उसमें चिन्तन-मनन का प्रवाह सदा प्रवहमान रहता है। इसलिए वह एक समय के लिए भी ठहरता नहीं, प्रत्युत प्रति-क्षण परिवर्तित होता रहता है, और अपने विचारों की तेजस्विता को प्रकट करता रहता है। प्रबुद्ध विचारक अपनी विचार-चेतना के द्वारा रूढ़ आवरणों को हटाकर सत्य-तथ्य को समझने, परखने एवं आचरण में उतारने का प्रयत्न करता है। और जो परम्पराएं एवं धारणाएं जर्जरित हो चुकी हैं, निष्प्राण हो चुकी हैं, उन्हें जीवन के मानचित्र पर से हटाने का सबल प्रयत्न करता है। जिसके परिणाम स्वरूप जीवन बहुत-कुछ बदल जाता है, और सब-कुछ नया लगता है।
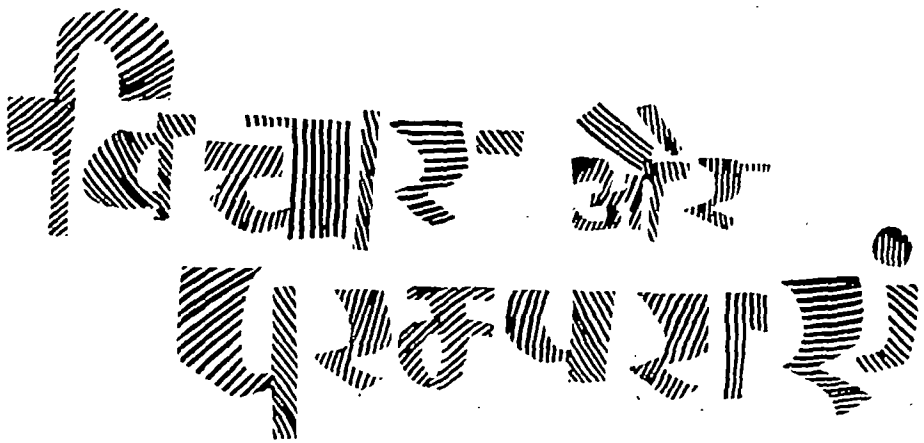
० मुनि श्री समदर्शी, प्रभाकर

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है, कि जीवन में एवं विश्व में कितना परिवर्तन आ चुका है। आज हम इतिहास के उन स्वर्णिम एवं महान् युगों में से एक ऐसे युग में सांस ले रहे, जब विचार-क्रांति के क्षेत्र में मानव-मस्तिष्क एक लम्बी छलांग मारने का प्रयत्न कर रहा है, और वह अपने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रिय तथा धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, व्यवहारों एवं रीति-रिवाजों को जड़ मूल से बदलने का प्रयास कर रहा है। भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में रहने वाले मानव के विचार और आचार में इतना अधिक परिवर्तन आया है, जितना कि सम्भवत: पाँच-सहस्र वर्षों में भी नहीं आया। भौतिक क्षेत्र में ही नहीं, आध्यात्मिक क्षेत्र में भी मानव अपने चिन्तन की दिशा में कदम बढ़ा रहा है। हम आज ऐसे युग में गति-प्रगति कर रहे हैं, एवं अपने मनन-चिन्तन

और ज्ञान-चेतना को बढ़ा रहे हैं, जिसमें मानव इतिहास के पृष्ठों में एक नया अध्याय जोड़ने जा रहा है। पुरातन धारणाएँ, रूढ़ मान्यताएँ और निष्प्राण परम्पराएँ तेजी से विघटित हो रही हैं। मानव-मस्तिष्क के द्वारा बनाए गए संकीर्ण घेरे, और साम्प्रदायिक दीवारें ढह रही हैं।

विचार और परम्पराएँ :

विचार क्या है ? परम्पराएँ क्या हैं ? विचार और परम्पराओं का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? विचार के अनुरूप परम्पराएँ हैं अथवा परम्पराओं के आधार पर विचारों का उद्भव एवं विकास हुआ है ? परम्पराएँ विचार-जन्य हैं, या विचार परम्परा जन्य है ?

इन प्रश्नों के समाधान के लिए जब आगम-साहित्य का अनुशीलन करते हैं, और अपने चिन्तन की गहराई में उतरते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि जीवन में परम्परा की नहीं, विचारों की, ज्ञान की, विवेक की और चिन्तन की प्रधानता रही है। परम्परा से विचारों का उद्भव नहीं हुआ है, प्रत्युत विचारों से ही परम्पराओं का अवतरण हुआ है। जैन-आगम एवं जैन-दर्शन के अनुसार विचार अथवा ज्ञान आत्मा का गुण है, परन्तु परम्परा आत्मा का गुण एवं स्वभाव नहीं है। ज्ञान सचेतन है और उसका परिणमन आत्मा में होता है, वह सदा-सर्वदा आत्मा में ही रहता है, परन्तु परम्पराओं का परिणमन पुद्गलों में होता है, वे सदा आत्मा के साथ नहीं रहती। इतना ही नहीं, एक भव में विद्यमान परम्पराएँ आगामी भव में भी साथ नहीं जाती। परम्पराओं का प्रवाह वर्तमान भव तक ही रहता है। परन्तु ज्ञान एवं विचार एक भव से दूसरे भव में भी साथ रहते हैं, और संसार से मुक्त होने पर भी ज्ञान साथ रहता है। इसलिए ज्ञान अनन्त है और परम्पराएँ सान्त हैं। अतः जीवन में ज्ञान का, विचार का एवं विवेक का ही सर्वोच्च स्थान है।

यह निश्चित है, कि ज्ञान संसारी और सिद्ध दोनों अवस्थाओं में रहता है, परन्तु परंपराएँ एवं क्रिया-कांड संसारी में ही रहता है, सिद्ध अवस्था में नहीं। क्योंकि संसार में परिभ्रमण करने वाली आत्मा वैभाविक परिणति के कारण कर्म से आबद्ध है, और अपने कर्मों के अनुरूप मन, वचन और काय-योग को प्राप्त करता है। जब तक योगों का आत्मा के साथ संयोग सम्बन्ध रहता है, तब तक उनमें स्पन्दन, हलन-चलन एवं क्रियाएँ होती रहती है। और जो क्रियाएँ आत्म-विकास में सहायक होती हैं, उन्हें आचार, क्रिया एवं संयम कहते हैं। और युग-युगान्तर से चली आ रही उन क्रियाओं को ही परम्परा कहते अतः आचार, संयम, क्रिया-काण्ड एवं परम्पराओं का सम्बन्ध योगों से है, मन, वचन काय-योग की प्रवृत्ति से है, पुद्गलों के संयोग से बने हुए साधनों से है। इसलिए जब आत्मा के साथ पुद्गलों का संयोग रहता है, तब तक क्रियाएँ एवं परम्पराएँ रह जब साधक चवदहवें गुणस्थान में पहुँचकर योगों का निरोध कर लेता है, तब वह

परम्पराओं से भी मुक्त हो जाता है, सभी क्रियाएँ—भले ही वे लोकोत्तर अथवा आध्यात्मिक हों या लौकिक, आत्मा से छूट जाती हैं। और इन सबसे मुक्त होना यही आत्मा का मूल लक्ष्य एवं उद्देश्य है, और यही आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य है।

परम्पराओं की स्थापना :

०

यह तो सर्व-मान्य सत्य है, कि ज्ञान एवं विचार आत्मा का स्वभाव है, निज-गुण है, और वह सदा आत्मा में रहता है। आचारांग सूत्र में कहा है—"जो आत्मा है, वह विज्ञाता है, और जो विज्ञाता है, वही आत्मा है।" आत्मा ज्ञान-स्वरूप है। परन्तु वह क्रिया-स्वरूप नहीं है। ये बाह्य क्रियाएँ आत्मा में नहीं, आत्मा से सम्बद्ध पौद्गलिक योगों में होती हैं, और उनकी परिणति भी उन्हीं में होती है, आत्म-स्वभाव में नहीं होती। क्योंकि क्रियाएँ, आचार-परम्पराएँ स्वभाव से आत्मा की नहीं है, प्रबुद्ध विचारकों द्वारा संस्थापित हैं। इसलिए वे युग के अनुरूप तथा विचारों के अनुरूप परिवर्तित भी होती रहती हैं।

ज्ञान एवं विचार आत्मा का गुण है। वह पर्याय की अपेक्षा से शुद्ध और अशुद्ध अथवा सम्यक् और मिथ्या दो प्रकार का कहा गया है। जब पर-संयोग के कारण आत्मा वैभाविक भावों में, राग-द्वेष एवं मोह में परिणति करता है, तब ज्ञान की अशुद्ध पर्याय रहती है। जिसे आगम की भाषा में मिथ्या-ज्ञान या अज्ञान कहते हैं। और जब आत्मा स्व-पर के स्वरूप को समझकर स्व में परिणति करता है, तब उस के ज्ञान की पर्याय शुद्ध

आज परम्पराएं तो चल रही है, परन्तु विवेक के अभाव में हम उनके मूल को भूलते जा रहे हैं इसी कारण कभी-कभी साधना-पथ से भटक भी जाते हैं।

होती है जिसे आगम की भाषा में सम्यक्-ज्ञान कहते हैं। ज्ञान अपनी शुद्ध अथवा अशुद्ध, सम्यक् [illegible] के कारण शुद्ध एवं सम्यक् अथवा अशुद्ध एवं मिथ्या होता है। परन्तु क्रिया-काण्ड एवं परम्पराएँ न तो अपने आप में सम्यक् हैं, और न मिथ्या ही हैं। वास्तव में उनके सम्यक् और मिथ्या होने का आधार स्वयं परम्पराएँ नहीं है—भले ही वे लोकोत्तर हों या लौकिक, वीतराग भगवान द्वारा उपदिष्ट, प्ररूपित एवं स्थापित हों, या अन्य आचार्यों एवं विचारकों द्वारा। उनके सम्यक् एवं मिथ्या होने का आधार है—ज्ञान, विचार और विवेक। विवेकपूर्वक अथवा ज्ञान की शुद्ध-पर्याय-सम्यक्-ज्ञान पूर्वक की जाने वाली क्रिया अथवा परम्परा को सम्यक् और अविवेक पूर्वक एवं अज्ञान पूर्वक की जाने वाली क्रिया एवं परम्परा को असम्यक् एवं मिथ्या-क्रिया कहते हैं। ज्ञान की पर्यायों में होने वाली परिणति के अनुरूप परम्पराएँ सम्यक् एवं मिथ्या कही जाती हैं। इसलिए अमुक परम्परा का परिपालन सम्यक् है, और अमुक का मिथ्या है, यह कथन

सत्य नहीं है। भगवान महावीर की भाषा में वही परम्परा सम्यक् है, जिसके साथ ज्ञान, विवेक एवं विचार-ज्योति प्रज्वलित है। ज्ञान एवं विवेक से रहित की जाने वाली समस्त क्रियाएँ मिथ्या हैं, और किए जाने वाले समस्त प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान हैं।[1]

परम्पराओं का उद्देश्य :

०

संसारी आत्मा कर्मों से आबद्ध होने के कारण मन, वचन और काय योग से मुक्त है। योगों में क्रिया होती ही है। जब तक योगों का सम्बन्ध रहेगा, तब तक कोई भी व्यक्ति-भले ही तेरहवें गुणस्थान में स्थित सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग भगवान भी क्यों न हो, निष्क्रिय नहीं रह सकता। इसलिए जैन-दर्शन एवं जैन-आगम में क्रिया करने का निषेध नहीं किया है। और न कोई प्रबुद्ध विचारक क्रिया का पूर्णतः निषेध ही करता है। परन्तु इतना अवश्य है, कि क्रिया के साथ विवेक अवश्य होना चाहिए। विवेक की आँखों को बन्द करके की जाने वाली, तथा आसक्ति, मोह, ममता, राग-द्वेष एव विकारों को जागृत करने वाली अथवा संसार को बढ़ाने वाली क्रिया साधक के लिए विकास का नहीं, पतन का कारण है। इसलिए आत्मा को अपने स्वभाव में रहने में जो क्रिया एवं आचार सहायक होता है, आगम में उसी का उपदेश दिया गया है। क्रिया का उपदेश देने का उद्देश्य इतना ही है, कि समस्त क्रियाओं से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने का लक्ष्य सामने रखकर शरीर एवं आत्म-साधना में सहायक क्रियाओं को अनासक्त भाव से करते हुए अथवा क्रियामय बनकर के न करते हुए, अपने स्वभाव में स्थित रहने का प्रयत्न करे। इसी मार्ग को आगम में आचार, संयम एवं चारित्र भी कहा है। आगम-युग से एवं उत्तर कालीन आचार्यों द्वारा समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार बनाए गए नियमों को, जो उस युग से आज तक चले आ रहे हैं, उन्हें परम्परा कहते हैं। अपने-अपने युग में बनाए गए प्रत्येक नियम-उपनियम अथवा परम्परा का एक ही उद्देश्य रहा है कि व्यक्ति क्रियाओं एवं परम्पराओं में आसक्त न होकर अपने विवेक को जागृत रखकर गति करे।

बन्ध, निर्जरा और मोक्ष :

०

आत्मा का पुद्गलों के साथ संयोग सम्बन्ध होना बन्ध है, पुद्गलों से विमुक्त होना मोक्ष है। आत्मा और पुद्गल दोनों का स्वभाव भिन्न है। दोनों की अपने-अपने स्वभाव में परिणति होती है। आत्मा पुद्गलों के साथ रहते हुए भी अपने चेतन एवं ज्ञानमय स्वभाव को छोड़कर कदापि जड़ नहीं बनता, और जड़ पुद्गल कभी भी चेतन नहीं न आत्मा पुद्गलों का निर्माता है, और न पुद्गल आत्मा को बनाता है। फिर संयोग सम्बन्ध कैसे होता है? और क्यों होता है? यह एक प्रश्न है।

---

१. भगवती सूत्र, ७, २

आत्मा पर-संयोग से जड़ पर-भाव अथवा विभाव में परिणति करता है, तब वह कर्मों से आबद्ध होता है। राग-द्वेष, मोह-ममता आदि विकारीभावों को विभाव कहते हैं। जब तक शरीर एवं इन्द्रियों से होने वाली क्रिया के साथ राग-द्वेष के भाव नहीं जुड़ते, तब तक कार्मण-वर्गणा के आए हुए पुद्गलों का आत्मा के साथ वन्ध नहीं होता। क्रिया से अथवा योगों में स्पन्दन एवं गति होने से कार्मण-वर्गणा के पुद्गल पुद्गलों से आकर्षित होकर आते अवश्य हैं, परन्तु क्रिया मात्र से उनका वन्ध नहीं होता। वन्ध का कारण क्रिया नहीं, राग-द्वेष युक्त भाव हैं। यदि केवल क्रिया से ही वन्ध माने, तव तो तेरहवें गुणस्थान में भी वन्ध मानना होगा, फिर तो कोई भी आत्मा वन्ध की परम्परा से मुक्त नहीं हो सकेगा। परन्तु तेरहवें गुणस्थान में वन्ध नहीं होता। क्योंकि वहां राग द्वेष नहीं है। इसलिए क्रिया से कर्म आते हैं, और एक समय रहकर आत्मा से अलग हो जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है, कि राग-द्वेष मोह एवं आसक्ति वन्ध का कारण है। इसलिए आगम में स्पष्ट शब्दों में कहा है—"**परिणामे वन्ध**"—वन्ध परिणामों से, भावों से होता है। आचार्यों ने भी यही बात कही है—भाव ही वन्ध और मोक्ष के कारण हैं—

"मन एव मनुष्याणां, कारणं वन्ध-मोक्षयोः"

जिस कारण से बन्ध का कार्य होता है, उसी कारण से निर्जरा एवं मोक्ष होता है। अन्तर केवल इतना ही है, कि बन्ध भावों की अशुद्ध पर्याय से होता है, और निर्जरा एवं मोक्ष शुद्ध-पर्याय से। जब भावों में, परिणामों में राग-द्वेष की धारा प्रवहमान रहती है, तब बन्ध होता है, और जब आत्मा राग-द्वेष से ऊपर उठकर वीतराग भाव में परिणमन करती है, तब कर्मों की निर्जरा होती है, और कर्मों की पूर्णतः निर्जरा करने पर वह मोक्ष पर्याय को प्रकट कर लेती है। संसार और मोक्ष दोनों पर्यायें हैं। पर-भाव में रमण करना संसार-पर्याय में रहना है, और स्व-भाव में रमण करना मोक्ष-पर्याय को प्राप्त करना है। इसका अभिप्राय यही है, कि पर-भाव एवं राग-द्वेष को छोड़कर स्व-भाव एवं वीतराग-भाव में स्थित होना ही कर्मों की निर्जरा करना अथवा कर्मों से मुक्त होना है।

> जिन परम्पराओं में से विवेक, विचार एवं चिन्तन की चेतना निकल गई है, उन्हें बदलना ही होगा। वर्ना उनके शव हमारे साधना मंदिर को श्मशान घाट का रूप दे देगें.........

क्रिया—जिसे हम आचार एवं संयम कहते हैं, निर्जरा का कारण नहीं है। उससे कर्म आते हैं, परन्तु यदि क्रियाओं का परिपालन करते समय उनमें राग-द्वेष एवं आसक्ति नहीं, वीतराग-भाव एवं विवेक जागृत है, तो उससे वन्ध नहीं होगा, प्रत्युत पूर्व-आवद्ध कर्मों की निर्जरा ही होगी। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए आगम में संयम के साथ दो विशेषण लगाए गए हैं—सराग-संयम और वीतराग-संयम। संयम के साथ, जो राग-भाव है, सरागता है, वह वन्ध का कारण है, उससे शुभ कर्मों का वन्ध होता है, स्वर्ग की प्राप्ति होती है। परन्तु संयम के साथ वीतरागता, स्व-भाव में

स्थिरता आने पर बन्ध नहीं, एकान्त रूप से निर्जरा ही होती है, और उससे स्वर्ग की नहीं, मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए निर्जरा और मोक्ष क्रिया-काण्ड में नहीं, आत्म-भाव में है।

धर्म, पुण्य और पाप :

०

धर्म का स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में जैन-आगम एवं जैन-दर्शन की मान्यता यह है—"**वत्थु सहावो धम्मो**—वस्तु का स्वभाव ही धर्म है।" धर्म कोई बाहर में रहने वाली अथवा बाहर से प्राप्त की जाने वाली वस्तु नहीं है। आत्मा का अपना जो स्वभाव है, वही धर्म है, और वह आत्मा में ही निहित है, अन्यत्र नहीं। इसलिए स्व-स्वभाव में स्थित होना धर्म है। और जो क्रियाएँ इसमें सहायक एवं निमित्त रूप बनती हैं, उन्हें धर्म का साधन माना है, परन्तु धर्म नहीं। आगम में सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-चारित्र को धर्म एवं मोक्ष-मार्ग कहा है। आत्म-स्वरूप को जानना सम्यक्-ज्ञान है, उस पर श्रद्धा एवं विश्वास रखना सम्यक्-दर्शन है, और उसमें स्थिर होना सम्यक्,चारित्र है। इसलिए भगवती सूत्र में सामायिक एवं उसका अर्थ क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रमण भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—"आत्मा ही सामायिक है, और आत्मा ही सामायिक का अर्थ है।' समभाव, वीतराग-भाव एवं आत्म-भाव में स्थित रहना ही सामायिक है। क्योंकि वैषम्य एवं सरागता पर-भाव में ही रहती है, स्व-भाव में नहीं। इसलिए धर्म, संवर एवं चारित्र क्रिया काण्ड में नहीं, आत्म-स्वभाव में ही है।

कुछ व्यक्ति धर्म एवं संयम को क्रिया-काण्ड एवं परम्पराओं के गज से नापते हैं, और क्रिया-काण्ड करना ही धर्म मानते हैं। यह विचार नहीं करते कि क्रिया क्या है? उसे किस प्रकार करना चाहिए? विचार, चिन्तन एवं विवेक के द्वार को बन्द करके केवल क्रिया करते रहने का जैन-आगम में कहीं भी विधान एवं उल्लेख नहीं है, और यह भी उल्लेख नहीं है, कि क्रिया ही धर्म है। क्रिया धर्म का साधन एवं निमित्त बन सकती है, परन्तु धर्म नहीं। क्योंकि क्रिया पर-द्रव्य के संयोग से होती है। पर-द्रव्य के संयोग के अभाव में कदापि क्रिया नहीं होती। और पर-द्रव्य के संयोग से होने वाला कार्य धर्म नहीं पुण्य एवं पाप हो सकता है। धर्म स्व-द्रव्य में स्थित रहने में है, पर-द्रव्य में रमण करने में नहीं। दशवैकालिक सूत्र में स्पष्ट कहा है—"जो साधक विवेक पूर्वक चलता फिरता है, उठता बैठता है, शयन करता है, खाता-पीता और बोलता है, वह पाप कर्म का बन्ध नहीं करता।" इससे स्पष्ट है, कि क्रिया से कर्म आते हैं, परन्तु यदि विवेक की आँख खुली हो तो उन आगत कर्मों का बन्ध नहीं होता। शुभ कर्म तेरहवें गुण स्थान तक जाते हैं—भले ही वे एक समय ही क्यों न रहे। परन्तु वहाँ राग-भाव नहीं होने के कारण उनका बन्ध नहीं होता। किन्तु छठे से दसवें गुणस्थान तक राग भाव रहता है, इसलिए उन गुणस्थानों में शुभ कर्मों का बन्ध भी होता है। परन्तु जब साधक स्व-स्वरूप को समझकर पर-द्रव्य में और उसके संयोग से होने वाली क्रियाओं में राग भाव नहीं रखता है, और अपने वीतराग भाव में स्थित रहता है, तब उसे शुभ और अशुभ कर्मों का बन्ध नहीं होता,

प्रत्युत वह पूर्व-आबद्ध शुभ और अशुभ कर्मों की निर्जरा करता है, और यह शुद्ध-उपयोग अथवा वीतराग भाव ही धर्म है, क्रियाएँ नहीं। क्योंकि क्रियाओं के सम्बन्ध में आचारांग सूत्र में कहा है—"जो आस्रव के स्थान हैं, आस्रव निमित्त हैं, आस्रव के साधन हैं, वे संवर के, धर्म के कारण बन सकते हैं, और जो संवर के स्थान, साधन एवं निमित्त हैं, वे आस्रव के कारण बन सकते हैं।" जब साधक स्व-द्रव्यमें स्थित रहता है, तब वह कहीं भी रहे और साधन भी कैसे भी क्यों न हो, वह संवर एवं निर्जरा के ही कारण बनते हैं, और पर-द्रव्य में रमण करने वाला व्यक्ति आगमोक्त क्रियाएँ और गणधर गौतम जैसे बाह्य आचार का भी पालन क्यों न करे, उससे कर्म का ही बन्ध होता है। इसलिए क्रिया-काण्ड में ही अटक कर रहना धर्म नहीं है। उससे पुण्य की, शुभ कर्म की प्राप्ति हो सकती है। वैदिक-परंपरा में पूर्व-मीमांसा दर्शन है, जो केवल क्रिया-काण्ड को ही महत्व देता है। क्योंकि उसका लक्ष्य एवं उद्देश्य केवल स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करना है। परन्तु जैन-दर्शन एवं जैन-धर्म का उद्देश्य स्वर्ग को प्राप्त करना नहीं, मुक्ति को प्राप्त करना है, शुभ कर्मों से भी मुक्त होकर शुद्ध-स्वरूप को प्राप्त करना है। इसलिए जैन-धर्म ने क्रिया पर नहीं, ज्ञान एवं विवेक को महत्व दिया है। जब तक योग है, तब तक क्रिया करने का निषेध नहीं किया है, परन्तु क्रिया को ही सब-कुछ समझने का निषेध किया है। क्योंकि जब व्यक्ति अपने चिन्तन को भूलकर केवल क्रियाओं में ही उलझ जाता है, तब उनमें से प्राण-शक्ति निकल जाती है, केवल उनका निष्प्राण कंकाल रह जाता है अथवा रूढ़-परंपराएँ मात्र रह जाती हैं, जिससे साधना में तेजस्विता नहीं आ पाती। आज परंपराएँ तो चल रही हैं, परन्तु विवेक के अभाव में हम उनके मूल को भूलते जा रहे हैं। इसी कारण कभी-कभी साध[illegible] भी जाते [illegible]

विह[illegible]

साधना को गतिशी[illegible] [illegible]र को [illegible] लिए आहार, विहार एवं निहार [illegible] जो नियम बनाए गए थे, वे अ[illegible] शुद्ध रहती है? यह विवेक र[illegible] में किए गए विधान एवं उस सम[illegible] अनुकूल संभव नहीं है। प्रत्येक यु[illegible] होता रहा है। और आज भी [illegible] विवेक के साथ उनमें परिवर्तन [illegible] सकता है, परन्तु मूल व्रत सुरक्षित [illegible]

आगम में [illegible]—चातुर्मास और शेष आठ मास में अधिक से अ[illegible] मास, विहार का उल्ले[illegible]

है, कि वर्षा के कारण जीवों की उत्पत्ति अधिक होती है, पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है, नदी-नालों में पानी भर जाने से मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं, और वर्षा में अप्कायिक जीवों की हिंसा भी होती है। आगम-युग में आज की तरह सड़कों की तथा नदी-नालों पर पुलों की व्यवस्था नहीं थी। इसलिए जीवों की हिंसा से बचने के लिए वर्षा ऋतु में विहार करने का निषेध किया गया। परन्तु इसके साथ साधु-साध्वी इस बात का भी ध्यान रखते थे, कि यदि वर्षा एक महीने पहले शुरू हो जाती अथवा कार्तिक पूर्णिमा के बाद भी वर्षा चलती रहती अथवा जीवों की उत्पत्ति अधिक दिखाई देती, तो वे एक महीने पहले ही विहार बन्द कर देते थे, अथवा वर्षावास के बाद एक महीना और अधिक ठहर जाते थे। परन्तु आज वर्षावास एक रूढ़ परम्परा मात्र रह गई। कई प्रान्तों में आषाढ में ही वर्षा प्रारंभ हो जाती है, फिर भी सन्तों की विहार यात्रा चालू रहती है। आषाढ़-पूर्णिमा को वर्षावास प्रारंभ होता है, उसके बाद नहीं चलना है, परन्तु उसके पहले वर्षा बरसे या और कुछ हो उनका अपने निर्धारित स्थान पर पहुँचना संयम में बाधक नहीं है। क्योंकि परम्परा में चातुर्मासी बैठने के बाद विहार करने का निषेध है। आश्विन और कार्तिक में भले ही वर्षा न हो, सड़कों एवं पुलों के कारण जीवों की विराधना भी न हो, फिर भी सन्त विहार नहीं कर सकते। क्योंकि परम्परा में इस का विधान नहीं है।

इसी तरह निहार के सम्बन्ध में साधु के लिए यह नियम है, कि साधु ऐसे स्थान में मल-मूत्र का विसर्जन करे, जहाँ कोई आता-जाता एवं देखता न हो, जीव-जन्तु एवं हरियाली तथा बीज आदि न हों। जब तक साधु गाँव एवं शहर के बाहर उद्यानों में ठहरते थे, तब तक यह परम्परा ठीक थी, परन्तु आज साधु-साध्वी शहरों में ठहरते हैं, और सड़क एवं आम-रास्तों पर मल-मूत्र फैंक देते हैं। क्योंकि परम्परा स्थानक में बनाए हुए स्थान में करने की नहीं, बाहर फैंकने की है। परन्तु यह नहीं सोचते, कि इससे प्रथम तो भगवान की आज्ञा का लोप करते हैं और दूसरे में सरकार की चोरी करते हैं, और तीसरे जनता के स्वास्थ्य को खराब करते हैं। भगवान महावीर ने आगम में ऐसे स्थान में परठने का निषेध किया है, कि जहाँ लोगों का आवागमन न हो और लोग देखते न हों। सड़कों एवं आम रास्तों पर लोग आते-जाते और देखते रहते हैं। इसलिए यह परम्परा आगम विरुद्ध है। आम रास्ते पर परठने के लिए म्युनिसपल-बोर्ड की अनुमति नहीं है। उसकी बिना अनुमति के ऐसे स्थानों पर परठना सरकार की चोरी है। और आम-रास्तों पर परठने से वायु दूषित होती है, और इससे जनता का स्वास्थ्य बिगड़ता है। इस प्रकार इस परम्परा के पालन में महाव्रतों का भंग होता है, और जनता में निन्दा भी होती है। सडकों पर मल-मूत्र के विसर्जन के प्रकरण को लेकर कलकत्ता में कुछ वर्ष पहले एक सम्प्रदाय के बहुत बड़े आचार्य के विरुद्ध आन्दोलन एवं सत्याग्रह भी किया था। बड़े-बड़े शहरों में विचरने वाले साधुओं के लिए यह विचारणीय प्रश्न है, कि मल-मूत्र के त्याग में परम्परा का आग्रह न

> आचार एवं परम्परा के पथ पर चलने से पूर्व विवेक एवं विचार का दीपक जलाना चाहिए। ताकि हमारी जीवन यात्रा सही दिशा में चल सके।

प्रत्युत वह पूर्व-आवद्ध शुभ और अशुभ कर्मों की निर्जरा करता है, और यह शुद्ध-उपयोग अथवा वीतराग भाव ही धर्म है, क्रियाएं नहीं। क्योंकि क्रियाओं के सम्बन्ध में आचारांग सूत्र में कहा है—"जो आस्रव के स्थान हैं, आस्रव निमित्त हैं, आस्रव के साधन हैं, वे संवर के, धर्म के कारण बन सकते हैं, और जो संवर के स्थान, साधन एवं निमित्त हैं, वे आस्रव के कारण बन सकते हैं।" जब साधक स्व-द्रव्यमें स्थित रहता है, तब वह कहीं भी रहे और साधन भी कैसे भी क्यों न हो, वह संवर एवं निर्जरा के ही कारण बनते हैं, और पर-द्रव्य में रमण करने वाला व्यक्ति आगमोक्त क्रियाएं और गणधर गौतम जैसे बाह्य आचार का भी पालन क्यों न करे, उससे कर्म का ही बन्ध होता है। इसलिए क्रिया-काण्ड में ही अटक कर रहना धर्म नहीं है। उससे पुण्य की, शुभ कर्म की प्राप्ति हो सकती है। वैदिक-परंपरा में पूर्व-मीमांसा दर्शन है, जो केवल क्रिया-काण्ड को ही महत्व देता है। क्योंकि उसका लक्ष्य एवं उद्देश्य केवल स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करना है। परन्तु जैन-दर्शन एवं जैन-धर्म का उद्देश्य स्वर्ग को प्राप्त करना नहीं, मुक्ति को प्राप्त करना है, शुभ कर्मों से भी मुक्त होकर शुद्ध-स्वरूप को प्राप्त करना है। इसलिए जैन-धर्म ने क्रिया पर नहीं, ज्ञान एवं विवेक को महत्व दिया है। जब तक योग है, तब तक क्रिया करने का निषेध नहीं किया है, परन्तु क्रिया को ही सब-कुछ समझने का निषेध किया है। क्योंकि जब व्यक्ति अपने चिन्तन को भूलकर केवल क्रियाओं में ही उलझ जाता है, तब उनमें से प्राण-शक्ति निकल जाती है, केवल उनका निष्प्राण कंकाल रह जाता है अथवा रूढ़-परंपराएं मात्र रह जाती हैं, जिससे साधना में तेजस्विता नहीं आ पाती। आज परंपराएं तो चल रही हैं, परन्तु विवेक के अभाव में हम उनके मूल को भूलते जा रहे हैं। इसी कारण कभी-कभी साधना-पथ से भटक भी जाते हैं।

आहार, विहार की विधियां :

साधना को गतिशील रखने एवं साधना के साधन रूप शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आहार, विहार एवं निहार की क्रियाएं आवश्यक हैं। परन्तु इनके लिए जिस समय में जो नियम बनाए गए थे, वे आज के युग में कितने उपयुक्त हैं? और उससे साधना कितनी शुद्ध रहती है? यह विवेक रखना साधक का परम कर्तव्य है। आगम-युग की परिस्थितियों में किए गए विधान एवं उस समय स्थापित की गई परम्पराएं वर्तमान युग में पूर्ण रूप से अनुकूल संभव नहीं है। प्रत्येक युग में अपने-अपने युग के अनुरूप परम्पराओं में परिवर्तन होता रहा है। और आज भी बहुत-सी परम्पराएं परिवर्तित हुई और हो रही हैं। यदि विवेक के साथ उनमें परिवर्तन नहीं किया, तो उन रूढ़ परम्पराओं का पालन तो हो सकता है, परन्तु मूल व्रत सुरक्षित नहीं रह सकेंगे।

आगम में नव-कल्पी—चातुर्मास में चार महीने एक स्थान पर रहने का एक कल्प और शेष आठ मास में अधिक से अधिक एक महीने तक एक स्थान पर ठहरने के आठ कल्प, विहार का उल्लेख मिलता है। चातुर्मास में विहार का निषेध इसलिए किया गया

है, कि वर्षा के कारण जीवों की उत्पत्ति अधिक होती है, पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है, नदी-नालों में पानी भर जाने से मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं, और वर्षा में अप्कायिक जीवों की हिंसा भी होती है। आगम-युग में आज की तरह सड़कों की तथा नदी-नालों पर पुलों की व्यवस्था नहीं थी। इसलिए जीवों की हिंसा से बचने के लिए वर्षा ऋतु में विहार करने का निषेध किया गया। परन्तु इसके साथ साधु-साध्वी इस बात का भी ध्यान रखते थे, कि यदि वर्षा एक महीने पहले शुरू हो जाती अथवा कार्तिक पूर्णिमा के बाद भी वर्षा चलती रहती अथवा जीवों की उत्पत्ति अधिक दिखाई देती, तो वे एक महीने पहले ही विहार बन्द कर देते थे, अथवा वर्षावास के बाद एक महीना और अधिक ठहर जाते थे। परन्तु आज वर्षावास एक रूढ़ परम्परा मात्र रह गई। कई प्रान्तों में आषाढ में ही वर्षा प्रारंभ हो जाती है, फिर भी सन्तों की विहार यात्रा चालू रहती है। आषाढ़-पूर्णिमा को वर्षावास प्रारंभ होता है, उसके बाद नहीं चलना है, परन्तु उसके पहले वर्षा बरसे या और कुछ हो उनका अपने निर्धारित स्थान पर पहुँचना संयम में बाधक नहीं है। क्योंकि परम्परा में चातुर्मासी बैठने के बाद विहार करने का निषेध है। आश्विन और कार्तिक में भले ही वर्षा न हो, सड़कों एवं पुलों के कारण जीवों की विराधना भी न हो, फिर भी सन्त विहार नहीं कर सकते। क्योंकि परम्परा में इस का विधान नहीं है।

इसी तरह निहार के सम्बन्ध में साधु के लिए यह नियम है, कि साधु ऐसे स्थान में मल-मूत्र का विसर्जन करे, जहाँ कोई आता-जाता एवं देखता न हो, जीव-जन्तु एवं हरियाली तथा बीज आदि न हों। जब तक साधु गाँव एवं शहर के बाहर उद्यानों में ठहरते थे, तब तक यह परम्परा ठीक थी, परन्तु आज साधु-साध्वी शहरों में ठहरते हैं, और सड़क एवं आम-रास्तों पर मल-मूत्र फैंक देते हैं। क्योंकि परम्परा स्थानक में बनाए हुए स्थान में करने की नहीं, बाहर फैंकने की है। परन्तु यह नहीं सोचते, कि इससे प्रथम तो भगवान की आज्ञा का लोप करते हैं और दूसरे में सरकार की चोरी करते हैं, और तीसरे जनता के स्वास्थ्य को खराब करते हैं। भगवान महावीर ने आगम में ऐसे स्थान में परठने का निषेध किया है, कि जहाँ लोगों का आवागमन न हो और लोग देखते न हों। सड़कों एवं आम रास्तों पर लोग आते-जाते और देखते रहते हैं। इसलिए यह परम्परा आगम विरुद्ध है।

> आचार एवं परम्परा के पथ पर चलने से पूर्व विवेक एवं विचार का दीपक जलाना चाहिए। ताकि हमारी जीवन यात्रा सही दिशा में चल सके।

आम रास्ते पर परठने के लिए म्युनिस्पल-बोर्ड की अनुमित नहीं है। उसकी बिना अनुमति के ऐसे स्थानों पर परठना सरकार की चोरी है। और आम-रास्तों पर परठने से वायु दूषित होती है, और इससे जनता का स्वास्थ्य बिगड़ता है। इस प्रकार इस परम्परा के पालन में महाव्रतों का भंग होता है, और जनता में निन्दा भी होती है। सड़कों पर मल-मूत्र के विसर्जन के प्रकरण को लेकर कलकत्ता में कुछ वर्ष पहले एक सम्प्रदाय के बहुत बड़े आचार्य के विरुद्ध आन्दोलन एवं सत्याग्रह भी किया था। बड़े-बड़े शहरों में विचरने वाले साधुओं के लिए यह विचारणीय प्रश्न है, कि मल-मूत्र के त्याग में परम्परा का आग्रह न

रख कर विवेक से काम लिया जाय। जिससे मूल व्रत सुरक्षित रह सके, साधना का पथ प्रशस्त बना रहे, और जन-जन के मन में घृणा, नफरत एवं विरोध की भावना न पनपने पाए।

इसी प्रकार और भी अनेक परम्पराएँ हैं, जो केवल रूढ़ि के रूप में रह गई हैं। उन में से विवेक, विचार एवं चिन्तन की चेतना निकल गई हैं। ऐसी परम्पराओं को बदलना ही होगा आगम के नाम पर विवेक की आँखें वन्द करके, और साधना के महत्व एवं उद्देश्य को समझे बिना केवल निष्प्राण रूढ़ियों, परम्पराओं के कंकाल का बोझा ढोते रहना न धर्म है, और न संयम है।

संयम-साधना को तेजस्वी बनाने के लिए तथा आत्म-ज्योति को जागृत करने के लिए विचार, चिन्तन एवं विवेक को जागृत करना ही होगा। विचार एवं विवेक पूर्वक पालन किया जाने वाला आचार ही जीवन में एवं साधना में तेजस्विता ला सकता है। इसलिए आचार एवं परम्परा के पहले विचार एवं विवेक का होना परमावश्यक है। मैं क्रिया एवं परम्परा का विरोधी नहीं हूँ। जब तक स्व-द्रव्य के साथ पर द्रव्य का संयोग हैं, आत्मा के साथ योगों का सम्बन्ध है, तब तक क्रिया एवं आचार-परम्परा रहेगी ही। परन्तु उसका परिपालन रूढ़ियों के रूप में नहीं, विवेक एवं विचार पूर्वक रहे। और उसी को धर्म समझ कर उसका आग्रह-दुराग्रह रखकर विचार एवं चिन्तन के द्वार को वन्द न करे। क्रिया-काण्ड एवं परम्पराओं में आसक्त न बनें, प्रत्युत उन से ऊपर-उठकर अपने स्वरूप में, अपने विचार, चिन्तन में एवं वीतराग-भाव में स्थित होने का प्रयत्न करें और इसके लिए विचारों की ज्योति को जागृत करना, एवं चिन्तन को बढ़ाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। ●

●●

जैन धर्म का मर्म

०

जैन धर्म शरीरवादियों का धर्म नहीं है। अष्टावक्र ऋषि के शब्दों में कहूँ तो वह 'चर्मवादी' धर्म नहीं है। वह शरीर, जाति या वंश के भौतिक आधार चलने वाला 'पोला धर्म' नहीं है। अध्यात्म की ठोस भूमिका पर खड़ा है। वह यह नहीं देखता है कि कौन भंगी है, कौन चमार है और कौन आज किस कर्म तथा किस व्यवसाय में जुड़ा है? वह तो व्यक्ति के चरित्र को देखता है। पुरुषार्थ को देखता है और देखता है उसकी आत्मिक पवित्रता को।

—अमर डायरी

●●

० श्री केदारनाथ जी

धर्म निर्णय के लिए धर्माचरण आवश्यक

पूज्य केदारनाथ जी भारतीय संस्कृति एवं धर्म के मूर्धन्य चितकों की प्रथम श्रेणी में है। धर्म एवं अध्यात्म विषयों पर उनका ज्ञान जितना तलस्पर्शी है, अनुभव उससे भी गहरा है। स्व० कि० घ० मश्रुवाल उन्हें अपना गुरु मानते थे। उनका लेख श्री रिषभदास रांका के सौजन्य से गुजराती से अनूदित होकर प्राप्त हुआ तदर्थ हार्दिक धन्यवाद।

कई दिनों से कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक विषयों पर संवाद के रूप में बातचीत करने के अवसर आए। आज के युद्धजन्य वातावरण के विषय में भी चर्चा होती रहती है। इन सब विषयों के मूल में आध्यात्मिक मानी गई बातों का सम्बन्ध आता है, और अधिकतर उन विषयों की श्रद्धा को प्राधान्य देने की ओर चर्चा तथा निर्णयों का झुकाव होता है। जैसे हिंसा-अहिंसा का प्रश्न हो तो इस विषय का विचार करते समय कोई बुद्ध को, कोई महावीर को, कोई गीता यानी श्रीकृष्ण को, कोई भागवत को, कोई रामायण को प्रमाण मानकर चर्चा करता है और निर्णय का प्रयत्न करता है। लेकिन मुझे यह बात योग्य नहीं लगती।

प्राचीन काल में जीवन के विषय में सूक्ष्मतापूर्वक, गहराई और व्यापक दृष्टि से सबके हित का खयाल कर अनेक महापुरुषों ने विचार किया है। आज की प्रचलित समस्याओं तथा संकट के अवसर पर उनके निर्णयों के विषय में भी विचार करना चाहिये। किन्तु वैसा करते समय उन व्यक्तियों के समय की सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक कल्पनाएं, मान्यताएं तथा संस्कारों के साथ-साथ उस समय की भिन्न परिस्थितियों का भी विचार होना चाहिये। उन्होंने जो विचार किये वे आज के जगत् के कितने बड़े हिस्से को दृष्टि के सम्मुख रखकर किये थे? वैसे ही उन विचारों का सम्बन्ध व्यक्ति या समाज के प्रचलित जीवन के साथ ही, या पुनर्जन्म की मान्यता के कारण भूत भविष्य के जन्मों के साथ वे उसका संबंध जोड़ते थे? उनके विचारों का क्षेत्र इस लोक तक सीमित था या परलोक तक व्यापक था? यद्यपि आज हम सामाजिक व राजनैतिक विषयों का विचार कुछ [illegible] दृष्टि से करने लगे हैं, फिर भी हमारे मूल संस्कार, श्रद्धा और समझ में पूर्ण परिवर्तन हुआ हो ऐसा नहीं दिखाई देता इसलिए हमारे विचारों में अनेक [illegible]

और श्रद्धा का मिश्रण है। जिससे आज की समस्याओं का ठीक निर्णय करने में कठिनाई होती है।

हिंसा अहिंसा का प्रश्न उठते ही श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर के वचनों का आधार लेकर निर्णय करने का हम प्रयत्न करते हैं। पुनर्जन्म माननेवाले और न माननेवाले, परलोक माननेवाले या न माननेवाले, कर्म सिद्धान्त माननेवाले या न माननेवालों के निर्णय में कुछ अन्तर आये विना नहीं रहता। दूसरी वात यह है कि जीवन विषयक महत्वपूर्ण किसी भी तत्व की समझ, मान्यता और श्रद्धा होना और उस विषय की निष्ठा होना यह प्रत्येक बात की बौद्धिक और मानसिक स्थिति में वहुत अन्तर होता है। समझ और मान्यता का सम्बन्ध कुछ बौद्धिक और कुछ मानसिक संस्कार और परम्परा के साथ होता है। श्रद्धा का केवल बौद्धिकसम्बन्ध न होकर वह मानसिक और विशिष्ट परम्परा के साथ होता है। निष्ठा दीर्घकालीन श्रद्धा और अनुभव के साथ होती है। ऐसी निष्ठा बहुत कम देखने में आती है। चर्चा या वाद के समय मनुष्य अपने संस्कारों के अनुसार बोलता है फिर भी प्रतिपादन संबंधी दृढ़ता, तीव्रता आदि का प्रमाण ऊपर बताई मनःस्थिति पर अवलंबित होता है।

बुद्ध या महावीर के समय में, या उससे पहले आध्यात्मिक दृष्टि से हिंसा-अहिंसा के संबंध में विचार करते समय कर्म सिद्धान्त के तत्व को प्रधान रूप से माना जाता था। कर्म सिद्धान्त मानने पर पुनर्जन्म, परलोक, मोक्ष यह मानना ही पड़ता है। लेकिन आज हिंसा-अहिंसा के विचार को हमें इहलोक—इस जन्म और मानव जाति के कल्याण, स्वास्थ्य,

---

कोई धार्मिक या तात्विक प्रश्न निर्माण होने पर हर पंथ व संप्रदाय वाला अपने मूल प्रवर्तक के वचनों में उनका हल ढूंढने की कोशिश करता है।........इससे वर्तमान जीवन की परिस्थितियों के उपयुक्त प्रगतिशील एवं कल्याण प्रद निर्णय नहीं प्राप्त किया जा सकता है?

सुरक्षितता को प्रमुख मानकर करना चाहिए। और वही आज की संसार की परिस्थिति के अनुसार योग्य है। इसलिये श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि क्या कहते थे इसकी शोध करते रहें तो भी संभव है हम योग्य निर्णय नहीं कर सकेंगे। उसके लिए तो आज की परिस्थिति ध्यान में रखकर ही हमें मानव जाति की शांति की समस्या सुलझानी चाहिए।

ऐसा माना जाता है कि भारत में धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों की वृद्धि बहुत अधिक हुई है। विचार करने पर मालूम होता है कि एक तरफ धार्मिकता के नाम पर केवल बाह्य क्रियाकाण्ड और उसके कारण कामना पूर्ति की अभिलाषा दिखाई देती है और

दूसरी तरफ आध्यात्मिकता के नाम पर अपने मत, संप्रदाय और पंथ को श्रेष्ठ बताने के लिए ममत्व और अभिमान के कारण होने वाले वाद, प्रवचन और ग्रंथों की वृद्धि होती हुई दिखाई देती है। वास्तव में सत्य, प्रामाणिकता, संयम, न्यायवृत्ति, सेवा तथा सहयोग की भावना अहिंसा आदि प्रमुख नैतिक गुणों का आधार किसी भी धार्मिक क्रिया के लिए होना चाहिए। और कोई भी गूढ़, गहन, सूक्ष्म तथा अज्ञात मानी हुई आध्यात्मिकता के विषय में खोजे हुये तात्विक विचारों को सच्चे नीतिप्रधान आचार का ही आधार होना चाहिये, और उन विचारों से धार्मिक निष्ठा को बल मिलना चाहिये। हमारे भौतिक व्यवहार अधिक सुसंगत, व्यवस्थित और कल्याणप्रद होने चाहिये अर्थात् धर्म, अध्यात्म या कोई भी गूढ़वाद, गूढ़शक्ति या उसकी सिद्धि की परीक्षा व्यवहार शुद्धि, उनकी सरलता और निरुपाधिकता आदि से होनी चाहिये।

हमारा समाज धार्मिक है और धर्म या तत्वज्ञान का विकास हम में बहुत हुआ है, ऐसी हमारी समझ है और सारे संसार को वह जनकारी कराने का हम अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करते हैं। लेकिन ऊपर कहा वैसी धार्मिकता का स्वरूप क्रियाकांडात्मक या कामनापूर्ति तक ही मर्यादित है, उसमें नीति-निष्ठा को प्रधान स्थान नहीं है और ऊपर लिखे तत्वज्ञान का परिणाम वाद, व्याख्यान, प्रवचन, लेख और ग्रंथों से अधिक नहीं होता इसलिये दैनिक जीवन व्यवहार में धार्मिकता, नीति और तत्वनिष्ठा का संबंध नहीं आता और उनका आग्रहपूर्वक आचार न होने से इस विषय का संशोधन तथा विकास नहीं हो पाता। कोई धार्मिक या तात्विक प्रश्न निर्माण हो तो उसका निर्णय अपने माने हुये धार्मिक संस्कारों और परम्परा के अनुसार करने का रिवाज-सा बन गया है। जिससे ऐसा लगता है कि इसका कारण आचरण करने पर प्राप्त होने वाले स्वानुभवयुक्त ज्ञान का अभाव है।

ऐसे अवसरों पर हिन्दू गीता या दूसरे उनके शास्त्रों में क्या कहा है, यह ढूंढता है। जैन यह देखता है कि भगवान महावीर ने इस प्रश्न के विषय में क्या कहा था और बौद्ध देखते हैं कि बुद्ध ने क्या कहा था। इस प्रकार हर पंथ वाला, संप्रदाय और धर्म वाला अपने मूल प्रवर्तक या उनके प्राचीन अनुयायियों के वचन ढूंढने लगते हैं। जिससे धार्मिक या तात्विक प्रश्नों का विचार संशोधनात्मक दृष्टि से नहीं होता और वर्तमान स्थिति के लिये उपयुक्त प्रगतिशील और कल्याणप्रद निर्णय प्राप्त नहीं किया जा सकता।

दो तीन हजार वर्ष पहले की या उसके बाद हजार, पांच सौ या दो सौ या सौ वर्ष पूर्व की दुनियांकी स्थिति अब नहीं रही। भिन्न-भिन्न धर्म, राष्ट्र और समाजों की स्थिति में इतने वर्षो में परिवर्तन हो गया, इतना ही नहीं वह तेजी से बदलती जा रही है। तब प्राचीन समय के महापुरुषों के केवल वचनों से योग्य निर्णय करना संभव नहीं है। उस समय की दुनियां और मानव जाति, उसके परम्परा संबंध, परस्पर के ज्ञान-अज्ञान तथा आज की हमारी स्थिति में बहुत अन्तर आ गया है। सामाजिक या राष्ट्रीय दृष्टि से किसी महत्वपूर्ण या कठिन प्रश्न के निर्माण होने पर प्राचीनकाल का इतिहास अवश्य देखना चाहिये। उस समय की घटनाओं को तथा परिणामों को ध्यान में लेना चाहिये। इन सब

बातों को समझकर उनसे बोध लेकर हमें वर्तमान संसार की स्थिति तथा हम सबके कल्याण का विचार कर ऐसे प्रश्नों के निर्णय करने पर जोर देना चाहिये।

लेकिन गीता की हिंसा-अहिंसा, धर्म-अधर्म, पिंडोदक, पितृ की अधोगति, सद्गति, निष्काम कर्म, मोक्ष आदि विषयों के निर्णयों को या उस विषय के विचारों को प्रमाण मानकर उन्हें ही आज की स्थिति में योग्य मानने की ओर मनोवृत्ति पाई जाती है। उन विचारों और श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति हमारी श्रद्धा है, ऐसा हम विकट प्रसंग उपस्थित होने पर कहते हैं, किन्तु हमारा दैनिक जीवन उनके वचनों को एक ओर रखकर-या उनके वचनों का अपनी सुविधानुसार अर्थ कर बिताते हैं। जिस आचार को हम धर्म समझते हैं उसमें मानव जाति का सर्वांगीण विकास करने की शक्ति है या नहीं, यह हम आचरण द्वारा, अनुभवात्मक मार्ग ढूंढकर नहीं देखते। ऐसी संशोधन वृत्ति और पद्धति हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में न होने से हमारी धर्म कल्पनाएं जीवन विकास में सहायक बनती है या नहीं उसका सच्चा ज्ञान नहीं होता। इसलिये समाज के ज्ञानी और कल्याणेच्छुक पुरुषों को धार्मिक आचार-विचार और तत्वज्ञान के विषय में कहां भूल हो रही हैं, उसे ढूंढने का प्रयत्न करना चाहिये। धर्म और तत्वज्ञान का आधाररूप नैतिकता और सद्गुणों पर निष्ठा है। केवल परम्परा से चले आये क्रिया-काण्डों को ही करते रहने से समाज में संशोधन के प्रसंग ही नहीं आते। सच्चे धार्मिक आचरण के बिना उनके सुपरिणाम या उनके फल का यथार्थ ज्ञान हमें कैसे हो सकता है? और परिणाम न दिखाई दे तो उसका संशोधन और विकास कैसे हो सकता है? यदि आरोग्य के नियमों का पालन न करते हुये या वैद्य की सलाह न मान कर कोई रोगमुक्त होने की इच्छा करे, तो वैद्य क्या करे? और इस तरह के बर्ताव से शास्त्र का संशोधन और विकास कैसे हो सकता है? वैसे ही धर्म-संकट आने पर अनेक वर्षों पहले रखे हुये ग्रंथों में से उपाय ढूंढने से वे कैसे मिल सकते हैं? वर्तमान परिस्थितियों को पहचान कर आज के उपलब्ध ज्ञान और पुरुषार्थ द्वारा हमें अपनी समस्याओं को सुलझाना चाहिये। सच्चे धर्म का आचरण करने में ही हमें आज की स्थिति के योग्य मार्ग मिल सकता है। पृथ्वी का नक्सा बना कर उसकी प्रदक्षिणा करने से पृथ्वी-प्रदक्षिणा का पुण्य या लाभ नहीं मिल सकता। इस अवसर पर एक सन्त के वचन का स्मरण हो आता है:--

संन्यास की नकल की जा सकती है, लेकिन वैराग्य नहीं आ सकता।
सैनिक की नकल की जा सकती है, लेकिन शौर्य नहीं लाया जा सकता।
सूर्य का चित्र बनाया जा सकता है, पर उस से प्रकाश नहीं मिल सकता।

सन्त नामदेव कहते हैं—नाचकर, गाकर कीर्तन में रंग लाया जा सकता है, पर ईश्वर प्रेम नहीं लाया जा सकता।

यह बात आज के हमारे धर्म और तत्वज्ञान के विषय में लागू होती है। वास्तव में धर्माचरण के बिना धर्म संशोधन नहीं हो सकता। कर्तव्य निश्चित करने के लिये धर्मज्ञान आवश्यक है। पर बिना धर्माचरण के ठीक धर्म निर्णय नहीं किया जा सकता। ●

आत्मविकास की दिशा में अनेक महापुरुषों ने प्रयास किए। जैनागमों के अनुसार ऐसे महापुरुष अनन्त हुये हैं और इस काल में जो चौवीस महापुरुष हुये उनमें से अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर थे जिनके धर्मशासन में जैनी अपने को मानते हैं और उनके उपदेशों के अनुसार चलने का प्रयत्न करते हैं।

आत्मविकास का जो मार्ग उन्होंने वताया, उसका आचरण हर साधक ने अपनी पात्रता और क्षमता के अनुसार कर अपना विकास किया और करता है। उनके इन उपदेशों का संग्रह पूर्ण अंश में नहीं, किन्तु कुछ अंशों में मिलता है। पूर्ण संग्रह इसलिए उपलब्ध नहीं हैं, क्योंकि उस समय लेखन की प्रथा शुरु नहीं हुई थी। गुरु का उपदेश शिष्य कंठस्थ धारण करता था। जैनों के द्वादश अंगरूपी ग्रंथों को "गणि-पिटक" कहा गया है। गणि अर्थात् साधुओं के गण के समूह के नायक और उनके ज्ञान की पिटारी—"गणि-पिटक"।

शास्त्र वचनों की मर्यादा

० श्री रिषभदास रांका

भले ही इन ग्रंथों में वर्णित भगवान महावीर के उपदेश हों, पर वह प्रचलित गणधरों द्वारा ही संग्रहीत हुआ। उन उपदेशों को सूत्रवद्ध करने का काम पांचवें गणधर सुधर्मास्वामी ने किया। यों वे थे तो पांचवें, पर भगवान महावीर के संघ का संचालन उन्होंने ही किया। यों प्रथम गणधर भगवान महावीर के निर्वाण के वाद १२ साल जीवित रहे, पर केवली होने से संघ व्यवस्था में हिस्सा नहीं लिया। सुधर्मास्वामी ने १२ साल तक यह काम कर केवल ज्ञान होने पर जम्बूस्वामी को सौंप दिया। कइयों का कहना है कि वे अन्त तक संघ का दायित्व संभालते रहे।

जम्बूकुमार ने जव दीक्षा ग्रहण की तव अपने गुरु से विविध विषयों पर प्रश्न पूछे उनका उत्तर सुधर्मास्वामी ने दिया। जो विविध अंगों में संग्रहित है। जैन मान्यता के अनुसार जम्बूस्वामी अंतिम केवली थे। उनके वाद श्रुतकेवली ही हुये जो अपने गुरु से सुन कर ही भगवान महावीर के उपदेशों का ज्ञान पा सकते थे।

श्रुत केवली की परम्परा जम्बूस्वामी के वाद १०६ वर्ष तक चली भद्रबाहु श्रुतकेवली थे। इस समय उत्तर में भयानक अकाल पड़ा। चन्द्रगुप्त मौर्य तथा

स्वामी श्रमण संघ को लेकर दक्षिण में गये। उत्तर के आचार्य संभूतिविजय के शिष्य स्थूलिभद्र हुए ।

अकाल की अस्त-व्यस्त स्थिति में परम्परा से चला आया श्रुतज्ञान लुप्त-सा हो गया। इसलिए उसे लिपिवद्ध करने के लिए पाटलीपुत्र में संघ एकत्र हुआ। यह ईसा पूर्व ३०० वर्ष पहले की वात है। उक्त संघ में कोई १४ पूर्व का ज्ञानी नहीं था। भद्रवाहु स्वामी थे, पर उन्होंने महाप्राणव्रत नामक वारह साल चलने वाली तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी थी इसलिए वे संघ की परिषद् में नहीं आ सके। उनसे ज्ञान लेने स्थूलिभद्र को भेजा गया। उन्होंने दश पूर्व तक तो सीखा पर उन्हें ज्ञान का अहंकार हो जाने से भद्रवाहु स्वामी ने आगे ज्ञान देना वन्द कर दिया। वहुत अनुनय-विनय करने पर चार पूर्व सिखाये तो सही, पर उसका उपयोग करने की मनाही कर दी। इसलिए आगे के साधु दश पूर्वधारी कहलाये। आगे चल कर वह ज्ञान भी लुप्त हो गया और ग्यारह अंगों का हो ज्ञान उपलव्ध रहा।

पाटलीपुत्र के उत्तर संघ के साधुओं ने आगम ग्रंथों के संकलन का काम किया, वह दक्षिण के साधु संघ ने मान्य नहीं रखा। उनके मत से प्राचीन ग्रंथ पूर्व और अंग लुप्त हो गये इसलिए एकत्र किया हुआ वह उन्हें मान्य नहीं था। इसके वाद माथुरी वाचना, मथुरा में हुई और अन्त में ईसवी सन् ४५४ में वल्लभीपुर में देवर्द्धि-गणि की अध्यक्षता में आगमों का लिपिबद्ध करने का काम हुआ जो आज उपलब्ध है।

हम इन सब आचार्यों के प्रयत्नों के लिए अवश्य कृतज्ञ हैं, क्योंकि आज जो कुछ भी भगवान महवीर का उपदेश हमें उपलब्ध है वह उनके ही प्रयास का फल है। पर वह उपदेश जैसे भगवान महावीर ने कहा था वैसा ही है, ऐसा कहना कठिन है, क्योंकि उस पर समय, वातावरण और परिस्थिति का प्रभाव नहीं पड़ा होगा ऐसा नही कहा जा सकता। वस यही कह सकते हैं कि भगवान महावीर का जो उपदेश हमें उपलब्ध है वह वहुत अंशों में आगमों में मिलता है। पर उसे सर्वज्ञ वाणी मानकर उसका एक-एक अक्षर सर्वज्ञ के मुख से निकला है वैसा मानना विवेक के अनुकूल नहीं लगता।

जव हम आगमों की गाथाओं का अर्थ करते हैं तव वह सामग्री भगवान महावीर के जीवन व तत्वज्ञान के वहुत निकट ही लगती है। वह जैनियों की नहीं, पर सभी आत्म-विकास की इच्छा रखने वालों के लिए उपयोगी है। इस दृष्टि से उसका महत्व अवश्य है पर उसमें लिखी गई सभी वातें सत्य हैं, ऐसा मनाने पर हम उसका महत्व कम कर देते हैं।

हम देखते हैं कि आगमों में जैसे आत्मविकास के लिए प्रश्न पूछे गये हैं वैसे ही कुछ जिज्ञासा की तृप्ति के लिए भी पूछे गये हैं। ऐसा हमेशा होता आया है। एक कोई व्यक्ति किसी विशेष ज्ञान को हासिल कर लेता है तव उस विषय के ही नहीं, पर उसे ऐसे प्रश्न जिज्ञासावश पूछे जाते हैं कि जिनका आत्मविकास के साथ कोई सम्वन्ध न भी हो।

चन्द्रमा के विषय में आगमों में क्या कहा गया और आज विज्ञान क्या सिद्ध कर रहा है—यह जानना मानव मन की जिज्ञासा मात्र है, उसका आत्मविकास के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जिसे धर्म का पालन कर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य द्वारा अपने कषायों को मन्द कर विशुद्धि करनी है, उसके लिए इस बात को लेकर वितण्डावाद में पड़ना युक्त नहीं लगता। क्योंकि आत्मविकास मार्ग के पथिक को यह विवेक करना होता है कि कौनसी चीज को कितना महत्व दें। जिन्हें भौतिक ज्ञान को जानने की जिज्ञासा है, वह उस ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करें। अपनी जिज्ञासा की तृप्ति करें, लेकिन आत्मविकास के पथ के लिए आगमों में वर्णित चन्द्रमा और विज्ञान का अपनी यात्रा द्वारा उस पर पहुँचने से क्या अन्तर आने वाला है? शोध कर जिसने जो बात सिद्ध की, यदि वह उसे वैसी ही मानता हुआ अपने सद्गुणों का विकास कर विशुद्ध बनाता है और आत्मोन्नति करता है तो उसमें कैसे बाधा पड़ती है? यह समझना कठिन है।

आगम में बताये आत्मविकास का मार्ग आचरण कर कोई अपनी आत्मोन्नति करता है तो आगम की सभी बातों को मानने का आग्रह जैन सिद्धान्तों के बिलकुल प्रतिकूल है, क्योंकि हर व्यक्ति धर्म का आचरण भी तो अपनी पात्रता-क्षमता के अनुसार ही करता है। सभी तो एक-सा आचरण नहीं करते। इसलिए जिस तरह हम अधार्मिक नहीं वैसे ही आगम की किसी बात में श्रद्धा न रखने वाला कैसे अधार्मिक हो सकता है?

देश काल-परिस्थिति के अनुसार स्वयं तीर्थंकरों ने भी अपने उपदेशों में और धार्मिक परम्पराओं में परिवर्तन किया था और भगवान महावीर के बाद उनके आचार्यों ने भी परिवर्तन की प्रक्रिया चालू रखी है। भगवान महावीर ने देवदूष्य वस्त्र के बाद वस्त्र का उपयोग नहीं किया था। वे नग्न थे, पर आज हमारे साधु वस्त्र भी पहनते हैं। भगवान महावीर के समय में भी कुछ साधु वस्त्र पहनते थे पर वह वस्त्र पहनने की साधु को इजाजत दी थी जो जीर्ण शीर्ण हो, आगे चलकर तीन वस्त्र तक सीमा बढ़ी। और कई साधु उनसे भी अधिक रखते हैं, इसलिए यदि उनके आत्मविकास में बाधा नहीं पड़ती है तो उन सब मान्यताओं को जो बुद्धि को न जँचती हों, न मानने से कैसे बाधा पहुँच सकती है? आचार्य देश काल-परिस्थिति के अनुसार आचार में भी परिवर्तन करते आये हैं और वैसा करना आवश्यक भी होता है।

धर्म के बाह्य कलेवर को न पकड़ कर उसकी आत्मा को जानकर देश, काल, परिस्थिति के अनुसार आचार में अन्तर करना आवश्यक हो जाता है। जैसे परिग्रह की बात लें। परिग्रह में मूर्च्छा होने से आत्मविकास में बाधा पड़ती है, फिर वह परिग्रह चाहे विचारों का ही क्यों न हो, वस्तु का ममत्व, उसकी मूर्च्छा बंधनकर्ता है। वस्तु तो निर्जीव है।

इसलिए आगम के हार्द को—भगवान महावीर के उपदेश को समझकर उसे अपनाने में विवेक करना होगा। आगम ने सर्वस्व त्याग की बात कही है। पर हम उसे ८५ में रूपने आपको अशक्त पाते हैं, तो हम उतनी ही अपनाते हैं जितनी हमारी सामर्थ्य

इस विषय में आगम या शास्त्र की मर्यादा है । वह धर्म पालन की प्रेरणा देता है पर धर्मपालन तो हमें करना होता है । वह पालन करके ही अनुभव से अगला कदम उठाया जाय यही श्रेयस्कर होता है ।

इसलिए शास्त्रों के वचनों की मर्यादा को समझकर आत्मविकास के साधक को विवेकपूर्वक अपनाना आवश्यक हो जाता है । आप्त-वचनों के प्रति आदर रखकर उसका आत्मविकास में उपयोग कर लेना ही अधिक उपयुक्त है । न कि आगम के प्रत्येक शब्द को सर्वज्ञ प्रणीत मान कर उससे चिपके रहना ।

हमने जो कुछ लिखा है उस पर विद्वान और विचारक चिन्तन करेंगे ही, पर हमारी उन साधकों से प्रार्थना है कि जिन्होंने धर्म को चर्चा का क्षेत्र न मानकर उसे जीवन विकास का आधार बनाया है । जो धर्म का पालन आत्मविकास के लिए करते हैं । जो धार्मिक बताने से धार्मिक बनने में श्रेय मानते हैं, वे अपनी साधना के अनुभवों को निसंकोच व निर्भय बनकर बतावें । जिससे उस शास्त्रों पर चलने वाली काल्पनिक चर्चा से अधिक उपयोगी होंगे ।

हम श्रद्धा को जीवन विकास के लिए आवश्यक मानते हैं, पर श्रद्धा किस पर हो ? जो ध्रुव है, निश्चित है, सत्य है, उस धर्म पर निष्ठा और श्रद्धा होनी ही चाहिए पर धर्म के नाम पर जो कुछ लिखा गया है उसका श्रद्धा के नाम पर अंधानुकरण करना न हमारा श्रेय करता है और न ही हम सच्चे धार्मिक हो सकते हैं । फिर जिन आगम और शास्त्रों का हम भगवान महावीर सर्वज्ञ के वचन मानते हैं उसमें उनके वचन और उपदेश होते हुये भी वे संपूर्ण जैसे के तैसे सर्वज्ञ के द्वारा प्ररूपित न मानने में जो कारण हमने बताये हैं वे ऐतिहासिक तथ्य हैं । शास्त्र भगवान महावीर के समय नहीं लिखे गये । फिर श्रुत केवली ने भी अपना पूरा ज्ञान नहीं दिया था । वे लिखे गये तब दश पूर्व के ज्ञान के आधार पर, फिर वह ज्ञान भी नष्ट हुआ और आगे चलकर उसमें पाठान्तर हुये । उसके बाद भी दो वाचनाएं हुई । और आज जो आगम उपलब्ध हैं उनमें भी सबकी अर्थ के विषय में एकवाक्यता नहीं है । ऐसी स्थिति में आत्मविकास में जो अंश उपयोगी है उसे विवेकपूर्वक अपना कर आत्मोन्नति करनी चाहिए और आगमों को हम इसलिए भगवान महावीर के अधिकृत उपदेशित मानते हैं, कि उसी में हमें भगवान महावीर के वचनों का संग्रह प्राप्त है । इसलिए उनका उपयोग कर अपनी समस्याएं सुलझानी चाहिए अपना विकास करना चाहिए और जब हम सच्चे हृदय से विवेकपूर्वक उससे सार ढूंढेंगे तो वह अवश्य प्राप्त हो जावेगा । हमारे लिए वे विकास में सहायक होंगे । पर उन पर वाद-विवाद कर हम आग्रहग्रस्त बन कषायों की वृद्धि करेंगे तो निश्चित ही हमारी उन्नति के मार्ग में बाधक होंगे । ●

आइनस्टाइन ने कहा—"धर्म के अभाव में विज्ञान झूठा है, और विज्ञान को भुला देने से धर्म भी अंधा होता है। आइए, विज्ञान युग में धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप समझें...

भारत में अनादि काल से विचार परम्परा सदा बदलती रही है। वैदिक काल में भी हम देखते हैं, कि तीन प्रकार की विचारधाराएँ दिखाई देती हैं। अध्यात्मवृत्ति का परिपोष भी वैदिक काल की तृतीय सारिणी में नजर आता है। उस समय सुखासीनता के साथ बुद्धि की प्रधानता बदल गई और अन्तर्मुख होने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस अन्तर्मुखता में आध्यात्मिक वृत्ति की जड़ दृष्टिगोचर होती है। दार्शनिकता का जन्म भी इसी कालखण्ड में हुआ है। आध्यात्मिकता की प्रथमावस्था में मानव अपनी परिधि में दिखाई देने वाली चीजों के बारे में विचार करता था। आकाशस्थ दिव्य वस्तुएँ, जीवन में उपयुक्त होने वाली प्राकृतिक बातें एवं अदृश्य किन्तु जीवन पर परिणाम करने वाली अदृश्य दैवी चीजें—ये भी विचार के विषय रहे थे।

आगे चलकर समाज की स्थिति में जैसे परिवर्तन होता गया, वैसे आध्यात्मिकता का स्वरूप भी बदलता गया। वैचारिक भूमिका के साथ धर्म के नाम पर क्रिया-काण्ड, चमत्कृतियाँ, मन्त्र-तन्त्र, आदि बातें भी समाज-जीवन में प्रमुख स्थान पाने लगीं। आध्यात्मिकता का स्थान खिसकता चला गया और इन दिखावटी बातों का बोलबाला होने लगा। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर, एक गुट अन्य गुट पर, यहाँ तक कि समाज का एक अंग दूसरे अंग पर अपना रौब जमाने की चेष्टा में प्रयत्नशील हुआ। श्रेष्ठता—बौद्धिक श्रेष्ठता—प्रस्थापित करने की होड़-सी लगी रही। ब्राह्मण-वर्ग अन्य वर्णियों को अपने से निम्न श्रेणि के मानने लगे। यह अन्याय कहाँ तक चलता ? अन्ततः विद्रोह के बीज बोये गये और इसी में से फूट के लिए रास्ता मिल गया।
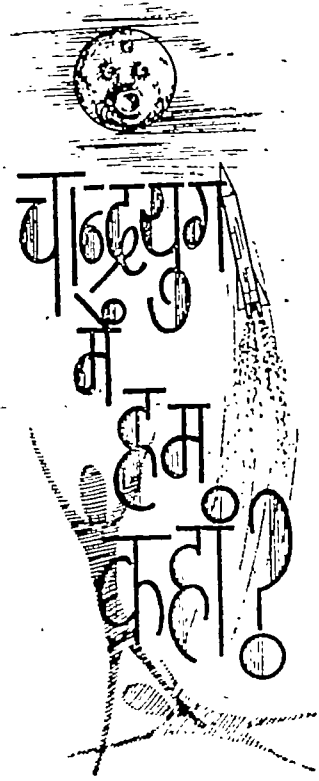
० श्री कनकमल मुनोत, एम० ए०

क्रिया-काण्ड को जरूरत से अधिक महत्त्व प्राप्त होने के कारण आध्यात्मिकता का मूल्य घटने लगा। पुरोहित इन्हीं दिखावटी बातों में धर्म बताने लगा। जन सामान्य का बुद्धि-भेद किया जाने लगा। फलतः विचारकों द्वारा अन्यान्य विचारधाराओं की निर्मित होती गयी। ईश्वर, आत्मा, मन आदि के बारे में विभिन्न विचार प्रस्तुत होते गये।

विचारों की विभिन्नता जरूर स्वागतार्ह है, किन्तु उसमें से यदि विचार-भेद के साथ विकार-भेद भी उत्पन्न होता हो तो वह समाज के लिए हानिकारक हो बैठता है। आध्यात्मिकता के बारे में यही हुआ। दार्शनिक आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। एक दूसरे का खण्डन-मण्डन करने लगे। विपरीत विचार वालों को मिथ्यात्वी कहकर उन्हें अपमानित एवं बहिष्कृत करने के प्रयत्न होने लगे। अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने एवं कायम रखने के लिए उन्हें अन्धेरे में रखना प्रारम्भ हुआ। अन्ध-श्रद्धा पर अधिक जोर दिया जाने लगा। इन्हीं अन्ध-श्रद्धालुओं द्वारा अपने से भिन्न विचार रखने वालों पर अत्याचार किए जाने लगे। धर्म-अध्यात्म के बारे में समाज की गलत धारणाएँ बना दी गईं।

जो बात भारत में हुई, वही यूनान में, अरब में, पश्चिमी जगत् में भी घटित हुई। धर्म गुरुओं के उपदेशों से विपरीत कोई भी विचार आगे लाने वाले का जीवन संकटाकीर्ण हो गया। पृथ्वी को नारंगी के आकार की बताने वाले को दुनिया में रहना मुश्किल हो गया। अपने अँश पर घूमती हुई यह पृथ्वी सूरज की भी परिक्रमा करती है, इस बात का संशोधन-प्रमाणित दुहाई देने वाला धर्म-विद्रोही करार हुआ। सूरज और चाँद को ग्रहण-काल में कवलित करने वाले राहू-केतु को झूठा बताने वाले नास्तिक मानकर समाज से बहिष्कृत हो गये। फिर भी आत्म-प्रत्यय के आधार पर विभिन्न शोध आगे आते ही गये। वैज्ञानिकों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती गई। प्राकृतिक शोधों से भी वैज्ञानिक खोज करने वाले आगे बढ़े। जीवनावश्यक वस्तुओं में सुगमता लाने के प्रयत्नों में भी वे सफलता पाते गये। यन्त्र चालित सुखोपभोग के साधन बढ़ते गये। परम्परागत धार्मिक विचारों का प्रभाव कम होता गया। मानव इन वैज्ञानिक खोजों को मस्तक पर उठाने में धार्मिक विचार धाराओं—अध्यात्मिक बातों-को भूलता गया। धर्म के प्रति विद्रोह की वृत्ति बलवत्तर होती गयी। धर्म गुरुओं की पकड़ ढीली पड़ती गयी। धर्म के नाम पर समाज में होने वाली मनमानी पर [illegible] लगी। अन्ध-श्रद्धा को बड़ी भारी ठेंस पहुँची। हर विचार बुद्धिवाद की कसौटी पर कसा जाने लगा। यहाँ तक ठीक था। इसमें समाज के श्रेयस् की भावना थी। समाज के उत्थान में धर्म का स्थान विज्ञान ने ले लिया।

परन्तु विचार क्रान्ति का यह पहलू कायम नहीं रहा। वैज्ञानिक शोधों के साथ ऐहिक सुखों के पीछे दौड़ प्रारम्भ हुई। सीदी-सादी समाजोपयोगी बातें भी अपमानित होने लगी। मानव यन्त्रों का गुलाम बन गया। स्वार्थ-साधन के पीछे नीति-अनीति का विवेक छूटता गया। धर्म अफीम की गुटिका माना जाने लगा। अध्यात्मिकता कर्म-काण्डी धर्म से कोई अलग चीज है, यह विचार करने की मनःस्थिति में मानव नहीं रहा। स्वार्थ-साधन ही सर्व-सर्वा माने जाने लगा। अपने स्वार्थ के पीछे दौड़ने वाला मानव मार्ग में

आने वाले हर एक को कुचलने में ही अपना धर्म मान बैठा। मानव-मानव का, समाज-समाज का, प्रान्त-प्रान्त का, राष्ट्र-राष्ट्र का दुश्मन बन गया। वैज्ञानिक खोज की दिशा भी स्वार्थ-परक हो गई। मानव कल्याण का स्थान स्वार्थ ने ले लिया। सुख की समूची कल्पना ही बँध गयी।

परिणामत: ऐहिक सुख के पीछे मानव की दौड़ शुरू हुई। यान्त्रिक आविष्कारों ने महत्त्वाकांक्षा बढ़ा दी। अतृप्ति के जोर में वृद्धि हुई। और सुख के बजाय अशान्ति, असमाधान, असन्तोष ने मानव मन में घर कर लिया। लाभ का स्थान लोभ ने लिया। संग्रह वृत्ति बढ़ गई। सन्तोष नष्ट हो गया। आन्तरिक भूख बढ़ती ही गई। ऐहिक सुख ही सच्चा सुख यह भावना भी गलत सिद्ध होने लगी। सच्चा सुख कुछ और ही है, यह विचार मन में घर करने लगा।

'Money cannot Buy happiness, But it enables one to be miserable in comfort—धन सुख को खरीद नहीं सकता, वल्कि आराम में दुःखी बनाने में वह सहायक बनता है। यह कहावत यथार्थ हुई। गान्धी जी ने भी कहा है—'That which impels man to do the right is God. The sum-total of all that lines is God.' ईश्वर क्या है ? मानव को योग्य कृति की प्रेरणा देने वाला ही ईश्वर है। जीवन-मात्र का सार-सर्वस्व ही तो ईश्वर है !

और आज बड़े बड़े विचारक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि केवल विज्ञानवाद में सुख नहीं है। और केवल आध्यात्मिकता भी मानव-जीवन के विकास में सम्पूर्ण स्थान नहीं पा सकती। विज्ञान की सहायता से ऐहिक प्रगति, सुख के साधन बटोरे जा सकते हैं। किन्तु मन की शान्ति के लिए, समाज-स्वास्थ्य के लिए विवेकपूर्ण आध्यात्मिकता की भी आवश्यकता है। सुविख्यात दार्शनिक आइनस्टाइन (Einstein) ने ठीक ही कहा है—

Science without religion is lame and relision withont science is blind,'—धर्म के अभाव में विज्ञान झूठा है और विज्ञान को भुला देने से धर्म भी अन्धा होता है। आज इस बात की परम आवश्यकता है कि विज्ञान और अध्यात्मिकता का योग्य समन्वय किया जाए। इस बात को हम ठीक रूप से समझ लें कि विज्ञान के साथ धर्म का हम सुयोग्य समन्वय हमारे जीवन में उतार लें तो वैज्ञानिक युग का सुख और आध्यात्मिक युग का मनःशान्ति अपने आप हमारे जीवन में उतर आएंगी। हम यथार्थ में सुख और समृद्धि के पात्र बनेंगे। अन्धता, अविचारिता, गतानुगतिकता का त्याग करके ही विवेकशीलता, नवागत विचारों को समझने की क्षमता, नई खोजों का स्वागत करने की उदारवृत्ति का हम पोषण कर पाएंगे। और चान्द्रयुग ही क्या; मंगल युग, शुक्र-युग और उससे भी बढ़कर आने वाले युग में रहने योग्य हम बन सकेंगे। ●

●●

भारतीय चिन्तन धारा ने सदा-सदा से अपनी पूर्ववर्ती चिन्तन-धारा को चुनौती दी है, और नयी चिन्तन-धारा को आदर के साथ ग्रहण किया है—यही उसके चिन्तन की समृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया रही है।

जैन आगम साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् वयोवृद्ध पं० बेचरदास जी दोशी ने जैन चिन्तन-धारामें आई विचार क्रांति का सप्रमाण ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

० पं० श्री बेचरदास जी दोशी

कविश्री अमरचन्द्रजी मुनिराज का कुछ समय पहले श्री अमर भारती में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका शीर्षक था—"क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है?"

उक्त लेख विशेष विचार प्रेरक था, उसे पढ़ कर मुझे प्रसन्नता हुई, हमारे अनेक मित्रों ने उसका अभिनन्दन किया। किंतु कुछ मित्रों को उस लेख से बड़ी परेशानी भी हुई, उनके मन और मस्तिष्क में हलचल मच गई।

जब लोक बुद्धि के द्वार बंद करके गडरिया प्रवाह में चलने लगते हैं, रूढ़ियों की तन्द्रा एवं संप्रदाय-मोह में घूर्णित होते हैं, तब कोई विशिष्ट प्रतिभा इस प्रकार की क्रांति का उद्घोष करके हमें झक-झोरने आती है—ऐसा मैं और मेरे साथी मानते आये हैं। मैं मानता हूं श्री अमर मुनि ने क्रांति का उद्घोष करके किसी नई परंपरा की स्थापना नहीं की है, अपितु जैनधर्म की उसी प्राचीन परंपरा की पुनरावृत्ति की है, जो सदा सदा से क्रांति पथ पर बढ़ती हुई अपने को नित-नये परिवेश में चिर रमणीय रखती आई है। जैन शासन में भगवान महावीर के युग से ही इस प्रकार के विचार उद्भूत होते आए हैं। इसकी संक्षिप्त ऐतिहासिक चर्चा मैं यहां करूंगा।

चतुर्याम : पंचयाम

०

भगवान पार्श्वनाथ के युग में चारयाम अर्थात चार महाव्रत थे। अब्रह्मचर्य विरमण नामक पांचवा याम तथा रात्रि भोजन निषेध उस समय के शास्त्रों में स्पष्ट शब्दों में विहित नहीं था। यद्यपि चार यामों में अब्रह्मचर्य विरमण एवं रात्रिभोजन निषेध का समावेश हो गया था, पर—'सव्वाओ मेहुणाओ विरमणं" तथा "सव्वाओ राइ भोयणाओ विरमणं"— इस प्रकार की शब्दावली में निर्देश नहीं था। परिणाम स्वरूप जो मुमुक्ष आत्मार्थी थे वे तो इस भावना को ग्रहण कर अपनी संयम साधना में स्थिर रहते, किंतु जो कुछ शिथिल वृत्ति के थे वे और अधिक शिथिल हुए और विचारने लगे कि स्त्री परिचय से हमारा 'अपरिग्रह-याम' तो खंडित नहीं होता, बल्कि हमारे परिचय से किसी को संतोष हो तो हमारा धर्म है कि हम उसे संतोष देवें, इससे अपरिग्रह-याम में क्या हानि पहुंच सकती है? इस विचार धारा का सूत्रकृतांग में भी निम्न निदर्शन मिलता है—

जहां गण्डं पिलागं वा परिपीलेज्ज मुहुत्तगं।
एवं विण्णवणित्थीसु दोसो तत्थ कओ सिया॥

—सूत्र कृतांग १।३।४ गा० १०-११-१२

—"जैसे किसी रोगी को कोई गांठ या फोड़ा हो गया हो तो उसे दबाने-सहलाने से कुछ काल थोड़ा बहुत आराम मिलता है, उसी प्रकार विनती करने वाली स्त्री को संतोष देने में क्या दोष है?"

इस गाथा की टिप्पण व वृत्ति में 'स्वयूथ्य पासत्थे' कहा गया है जिससे मालूम होता है —ये पासत्थ-पार्श्वापत्यीय-पार्श्वतीर्थीय ही होंगे। लगता है इस विचार धारा ने पार्श्वतीर्थ में अपना प्रभाव बढ़ाया हो और अनेक शिथिल श्रमण अपने चार यामों की रक्षा के साथ भ्रष्ट प्रवृत्ति करने लगे हों, जिसे देखकर श्रमण भगवान महावीर ने पार्श्वतीर्थीय शास्त्रों को चुनौती दी, कि पार्श्वापत्य शिथिल मुनि

अपने पार्श्वतीर्थीय आगमों को बराबर नहीं समझ रहे हैं, और उन आगम वचनों की आड़ में अति भ्रष्ट आचार में फँसे हुए हैं। अतः चार यामों की जगह पाँच यामों की योजना की गई। पार्श्वापत्यीय मुनि भोजन काल का भी अति क्रमण कर रहे थे, इस कारण भगवान महावीर ने चार याम के स्थान पर पाँच याम और रात्रि भोजन का निषेध विशेष रूप से किया जो उस समय की एक उल्लेखनीय घटना थी। सूत्र कृतांग में इन दोनों नियमों को महावीर की विशेष उपलब्धि के रूप में उल्लिखित करना कोई खास महत्व का सूचन करता है—

से वारिया इत्थि - सराइभत्तं
उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ।

—सूत्रकृतांग (वीर स्तुति ६।२८)

–उन्होंने (भगवान महावीर ने) स्त्री परिचय का वारण एवं रात्रि भोजन का निषेध किया।

जब पार्श्वापत्यीय श्रमण अपने आगमों के वचनों का आश्रय लेकर उन्मार्गगामी बनने लगे तब भगवान महावीर ने यह नहीं सोचा—अपने पूर्ववर्ती तीर्थंकर के शास्त्रों में कैसे परिवर्तन किया जाय? अथवा स्वयं नये शास्त्र कैसे बनाये जाय? यह भी प्रश्न नहीं उठा कि पूर्ववर्ती तीर्थंकर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे अतः उनके विधान में किस प्रकार परिवर्तन करें? यदि ये विचार भगवान महावीर को घेरे होते तो आज निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय किस परिस्थिति एवं किस रूप में होता? भगवान महावीर ने युग की आवश्यकता के अनुकूल अपने स्वतंत्र चिंतन से नया विधान दिया। और आचार की नई व्याख्या की।

सचेलक : अचेलक

०

भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में मुनिराज वस्त्रधारी थे, पर उनका वस्त्र धारण केवल संयमी जीवन की रक्षा के लिए ही था, अपरिग्रह याम का अतिक्रमण न हो इसका भी मुख्य लक्ष्य रहता था। परन्तु भ० महावीर के युग में पार्श्वापत्यीय मुनि अपने अपरिग्रह याम का अतिक्रमण कर रहे थे जो संयम विघातक प्रवृत्ति थी। उस स्थिति में भ० महावीर ने मुनि को वस्त्र रखना या नहीं, इस पर अपना स्वतंत्र निर्णय दिया और कहा कि—संयम की साधना प्रथम और प्रधान लक्ष्य है। वस्त्र रूप उपकरण सर्वथा गौण है। जो साधक वस्त्र के बिना ही संयम साधना कर सकता है, वह वस्त्र का ग्रहण न करे। और जो साधक किसी भी मानसिक या शारीरिक स्थिति के कारण वस्त्र की अपेक्षा रखता है, वह यथोचितता के साथ एक-दो-या तीन वस्त्र ले सकता है। ऐसा कहने पर भी दीक्षित होने के बाद स्वयं ने आजीवन वस्त्र धारण नहीं, किया यह बात विशेष ध्यान में रखने की है।

संयम की साधना की अपेक्षा से अचेलक तथा उक्त प्रकार से सचेलक दोनों समान आदर के पात्र हैं। उसमें अचेलक उत्तम है और सचेलक उससे कम उत्तम है ऐसा विचारना सर्वथा अनुचित है। यह बात आचारांग सूत्र के छठे अध्ययन को तटस्थता के साथ देखने पर स्पष्ट हो जाती है। आचार्य शीलांक कहते हैं—

अचेलोऽपि एक चेलादिकं नावमन्यते—यत उक्तम्—

जो वि दुवत्थ तिवत्थो,
एगेण अचेलओय संथरइ;
ण हु ते हीलंति परं,
सव्वे वि ते जिणाणाए॥

—(आचा० ६।३ वृत्ति, पृष्ठ २२२)

—जो कोई दो या तीन वस्त्र रखता है, वा एक वस्त्र रखता है, अथवा कोई सर्वथा वस्त्र नहीं रखता है, वे सब श्री जिन आज्ञा के अधीन रहकर संयम की अराधना करते हैं; वे परस्पर किसी की अवहेलना नहीं करते।

तात्पर्य यह है कि वस्त्र के सम्बन्ध में भगवान पार्श्वनाथ परंपरा के विधान की उपेक्षा करके भगवान महावीर ने अपना स्वतंत्र विधान किया। क्या यह पार्श्व-परंपरा को चुनौती नहीं थी?

शास्त्र-लेखन

०

'प्राणातिपात विरमण' महाव्रत की व्याख्या में आता है किसी प्रकार की हिंसा न करना, न करवाना और न तथाप्रकार की प्रवृत्ति में सम्मति देना। इस कल्प के अनुसार मुनि न तो पुस्तक अपने पास रख सकता है, न लिख सकता है, न लिखवा सकता है और न लिखने की प्रेरणा कर सकता है। पर पन्द्रह सौ वर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण ने जैन श्रुत को लिपिबद्ध करवाया। प्राप्त जैनश्रुत ताड़पत्र आदि पर लिखा, लिखवाया और श्रुत लेखन प्रवृत्ति को उत्तेजन दिया। क्या यह प्रवृत्ति आगम वचन को चुनौती नहीं थी?

इस बात को उत्सर्ग एवं अपवाद के प्रसंग से नहीं टाला जा सकता। अपवाद का विधान स्वयं भी शास्त्र वचन के प्रति एक तरह से चुनौती रूप ही है। शुद्ध बुद्धि से गंभीर विचारणा करने पर शास्त्र-वचन में असंगति का विचार आने के साथ उसकी संगति करने का विचार आना अथवा उसकी सत्यासत्यता का परीक्षण करना अथवा शास्त्र वचन से पर्याप्त अर्थ नहीं निकल सकता हो तो पर्याप्त अर्थ के लिए उसका परिवर्तन करना एवं शास्त्र वचन

यदि प्रत्यक्ष बाधित हो तो उसकी औचिती के सम्वंध में विचार करना—ये अपवाद विधियाँ हैं, और क्या ये चुनौती नहीं है ? इस दृष्टि से विचार करने पर आगमों को लिप्यारूढ़ करने की सामूहिक प्रवृत्ति भी एक चुनौती है।

मुख वस्त्रिका

०

सूत्रों में जहाँ-जहाँ दीक्षार्थी मुमुक्षु का वर्णन आता है, वहाँ सर्वत्र दीक्षार्थी के लिए रजोहरण तथा पात्र का निर्देश पाया गया है। किसी भी दीक्षार्थी ने 'मुख वस्त्रिका ग्रहण की' ऐसी बात का निर्देश उन दीक्षार्थियों के वर्णनों में नहीं मिलता। आचारांग (६।२) में किसी प्रसंग पर मुनि के उपकरणों का निर्देश मिलता है, उसमें वस्त्र, पात्र, केवल तथा पादप्रोंछन-इन चार का निर्देश मिलता है, मुंह पत्ती का निर्देश नहीं पाया जाता, तथा आचरांग में ही अन्य स्थल पर, वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण एवं कटासन का उल्लेख है, उसमें भी मुंहपत्ती का निर्देश नहीं है। कटासन का उल्लेख द्वितीय अध्ययन के पांचवे उद्देशक में है। इन दोनों स्थलों के विवरण में भी वृत्तिकार ने 'मुंहपत्ती' का निर्देश नहीं किया है। और एक बात यह भी है कि आचारांग सूत्र का द्वितीयश्रुतस्कंध जिसको स्थविर मुनियों ने वनाया है और मेरी कल्पना के अनुसार वह भाग महावीर निर्वाण के बाद भी बहुत पीछे से रचा गया है। उसमें वस्त्रैषणा तथा पात्रैषणा अध्ययन आया है, जिसमें मुनिओं को वस्त्र कैसा लेना, पात्र कैसा—इसकी खास चर्चा है किंतु उसमें भी कहीं मुंहपत्ति का नाम नहीं आया है। तथा जहाँ-जहाँ वत्थं पडिग्गहं आदि का उल्लेख आता है, वहाँ सब जगह 'पायपुंछण' का निर्देश तो आता है, परन्तु मुंहपत्ति का निर्देश कही नहीं पाया जाता। मैं मुंहपत्ति के निषेध में नही जाता, किंतु यह बताना चाहता हूं कि आगमों में मुंहपत्ती का कहीं भी निर्देश न होने पर भी आज वह अमुक संप्रदायों का मुख्य उपकरण बन गया है। क्या यह शास्त्र वचन को चुनौती रूप नहीं है ?

वैसे तो मुंहपत्ती का प्रचार विक्रम की आठवीं शताब्दी से पाये जाने के आसार मिलते हैं, पर इसका प्रारंभ किसने किया यह एक अनुसंधान का विषय है। शास्त्रोल्लिखित उपकरण को बढ़ाना—इसका क्या यह अर्थ नहीं कि शास्त्रीय उपकरणों की सूची अपूर्ण प्रतीत हुई होगी तभी उसमें एक नये उपकरण को और जोड़ा गया। यह भी तो प्रारंभ में शास्त्रों के प्रति एक चुनौती मानी गई होगी ?

ज्ञान-दर्शन का यौगपत्य

०

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने अपनी कुशाग्र एवं स्वतंत्र वुद्धि से चिन्तन करके कहा—'केवलज्ञानी को प्रथम ज्ञान और वाद में दर्शन' ऐसा क्रम नहीं हो सकता। तव आगम के शव्द का आग्रह रखने वाले आगमवादी आचार्य जिन-

भद्र ने कहा—सिद्धसेन का विचार आगम विरुद्ध है। इस का उत्तर देते हुए सिद्धसेन ने कहा—आगम के शब्दों को पकड़ कर रखने वाले आगम के शब्दों का अर्थ ही नहीं समझते। इसकी विस्तृत चर्चा सन्मति प्रकरण के द्वितीय कांड में आती है। मेरे विचार में अपनी स्वतंत्र विचार शक्ति का उपयोग करने वाले आचार्य सिद्धसेन का उक्त कथन भी शास्त्रों के प्रति एक चुनौती थी!

धर्मास्तिकाय-नैष्फल्य

आगम में सर्वत्र धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय इन दो स्वतंत्र द्रव्यों की चर्चा आती है। आचार्य सिद्धसेन ने अपनी निश्चय द्वात्रिंशिका के श्लोक ४ में ऐसा कहा मालूम होता है कि—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय नाम के दो तत्त्वों को मानसे से क्या लाभ है? वह श्लोक है—

प्रयोग - विस्रसा कर्म तदभावस्थितिस्तथा।
लोकानुभाववृत्तान्तः किं धर्माधर्मयोः फलम्?

मेरी कल्पना के अनुसार श्री सिद्धसेन जी ने उक्त पद्यों में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय संबंधी मान्यताओं में अपनी स्वतंत्र तर्क शक्ति का प्रयोग किया है। यह भी शास्त्रवचन के प्रति चुनौती ही थी।

अभिवचन

भगवती सूत्र (शतक २० उद्देशक २) मे प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण इत्यादि व्रतों को तथा क्रोधादि विवेक को भी धर्मास्तिकाय के अभिवचन-पर्यायवचन कहे हैं तथा प्राणातिपात मृषावाद आदि एवं क्रोधादि कषायों को भी अधर्मास्तिकाय के अभिवचन वताये हैं यह निर्देश भी शास्त्र-सम्मत धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय प्रतिपादक शास्त्रवचन का विरोधी है। अतः यह निर्देश स्वयं शास्त्र वचनों के प्रति एक चुनौती रूप है।

गौशालक-स्तुति

भगवती आदि अनेक सूत्रों में गौशालक की पेट भर के निन्दा की गई है। उसे गुरु द्रोही कहकर अनेक भव भ्रमण करने वाला वताया है। तथा उसके चरित्र का बड़ा ही हास्यास्पद वर्णन भी किया गया है। किन्तु 'इसिभासियाई' नामक विशेष श्रुत में गौशालक को अर्हत कह कर उसके वचनों का संग्रह किया गया है। तथा उसी 'इसिभासियाई' सूत्र में बुद्ध याज्ञवल्क मातंगऋषि और अंगिरस आदि के सुवचनों का संग्रह करके उन सब को अर्हत् पद से वोधित किया गया है। कहा जाता है—'इसि भासियाई' सूत्र के ऊपर श्री भद्रबाहु स्वामी ने निर्युक्ति भी बनाई है, किन्तु दुर्भाग्य से वह आज उपलब्ध नहीं है,

फिर भी इस श्रुति से 'इसिभासियाई' की प्राचीनता तो स्पष्ट हो जाती है। आगमों ने जिन व्यक्तियों के प्रति अनार्य, मिथ्यादृष्टि एवं मूढ आदि विशेषण प्रयुक्त किए उन्हें अर्हत् पद से सूचित करना—क्या शास्त्रवचन को चुनौती नहीं है ?

मिथ्यादृष्टि-सर्वज्ञ

शास्त्रों में स्थान-स्थान पर अन्यतीर्थिकों को मिथ्यादृष्टि, मन्द, मूढ आदि विशेषणों से सूचित किया है। आचार्य हरिभद्र ने अपने योगदृष्टि समुच्चय (श्लोक १३२) में अपनी तटस्थ दृष्टि से विशेष चिंतन व मनन करके कहा है कि—"भव व्याधि के उत्तम वैद्य समान बुद्ध तथा कपिल वगैरह भी सर्वज्ञ हैं" यह हारिभद्रीयवचन शास्त्र वचनों को एक चुनौती क्यों नहीं ?

गौशालक निन्दनीय नहीं

'चउप्पन्न महापुरिसचरियं' में आचार्य शीलांक सूरि ने भगवान महावीर के चरित्र में गौशालक का वर्णन भी किया है। किन्तु शास्त्रों में जो उसका जुगुप्सनीय तथा निन्दनीय रूप प्रदर्शित किया गया है, उस रूप को यहाँ बिल्कुल ही प्रदर्शित नहीं किया है। क्या गौशालक को निंदक बताने वाले शास्त्रों के प्रति यह वर्णन चुनौती नहीं माना जाय ?

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हमारे समक्ष आती हैं जिन पर तटस्थ अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन परम्परा में स्वतंत्र विचार एवं स्वतंत्र चिंतन की परम्परा का प्रवाह अतिप्राचीन काल से चला आ रहा है। किन्तु आगम ज्ञान से अनभिज्ञ हमारे धर्म गुरुओं एवं धार्मिकों को इस बात का कोई ज्ञान भी नहीं है। वे गतानुगतिक प्रवाह में चल रहे हैं और अमर भारती के एक लेख को शास्त्रों के प्रति चुनौती मानकर काफी उथल-पुथल मचा रहे हैं।

आज का वैज्ञानिक जब चन्द्र तक पहुँच चुका है, और वहाँ से संपर्क साध चुका है, तब भी हमारे मुनि व श्रावक यह कहते हैं कि यह बात आगम विरुद्ध होने से मान्य नहीं है। तर्क व न्याय शास्त्र का विद्वान् प्रत्यक्ष प्रमाण के समक्ष शब्द प्रमाण का प्रामाण्य कैसे मान सकता है ? आगम बने उस समय जो धारणा थी वह उनमें संकलित हुई, आज प्रत्यक्ष प्रमाणों ने उन्हें असत्य सिद्ध कर दिया, फिर भी उन प्राचीन धारणाओं का आग्रह रखना और उन पर कदाग्रह करना बुद्धिमानी नहीं है।

कुछ दिन पूर्व जम्बूद्वीप निर्माण योजना के आयोजक मुनि श्री अभय सागर जी मेरे पास आये और कहने लगे—चन्द्र तक पहुँचने की बात कैसे सही हो सकती है ? मैंने उनसे स्पष्ट कहा—प्रत्यक्ष सिद्ध बात में शंका-कुशंका करना व्यर्थ है। सच्चा उपाय तो यह है कि आप स्वयं तालीम (ट्रेनिंग) पाकर आकाश

यात्रा करें और वहाँ प्रत्यक्ष अनुभव करें कि पृथ्वी गोल है या चपटी ? स्थिर है या भ्रमण कर रही है ? चन्द्र आदि को भी प्रत्यक्ष देखें फिर आप अपना प्रत्यक्ष अनुभव सब श्रावकों को बताना।" मैंने उनसे यह भी कहा—प्रत्यक्ष के सामने परोक्ष रूप शब्द प्रमाण कोई महत्व नहीं रखता। चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि सूत्र भी आप जैसे स्थविर मुनियों की रचना है, अपने समय की प्रचलित मान्यताओं का निर्देश उनमें किया गया है और तीर्थंकर के नाम पर चढ़ा दिया गया है। आज भी प्रज्ञापना उपांग, श्राद्ध विधि, दीवालीकल्प आदि अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं, जिनके प्रणेता अमुक सूरिवर हैं, किंतु उन्होंने अपनी रचना—'महावीर बोले—गौतम पुछे'—इस ढंग से रच रखी है कि रचनाओं को पढ़कर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। छानबीन करने से मालूम होता है कि भगवान महावीर और गौतम का इन रचनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं हैं।

विचारणीय प्रश्न

०

वर्तमान विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रयोगों के सामने भारतीय प्राचीन शास्त्रों में निर्दिष्ट अनेक बातें आज प्रश्न बन गई हैं और वे परीक्षणीय हैं। इससे श्रद्धालु लोगों को घबराने की आवश्यकता नहीं। जिस समय जितना ज्ञान एवं अनुभव हो वह देश काल की परिस्थिति का अतिक्रमण नहीं कर सकता। उस समय के शास्त्र वचन तदनुसार ही हो सकते हैं, जब प्रत्यक्ष प्रयोग से नया ज्ञान एवं अनुभव बढ़ता है तब नई-नई हकीकतें सामने आती हैं, तब 'परेण पूर्वं बाधते'—इस न्याय से पूर्व की बात को छोड़कर परकाल की सिद्ध बात को सुज्ञ लोग स्वीकारते हैं।

आज भी कुछ ऐसे प्रश्न हमारे सामने हैं, जिनकी प्रचलित व्याख्याओं पर पुनर्विचार होना चाहिए और परमाणु विज्ञान, शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान के प्रकाश में उन पर नया चिन्तन करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर—कर्मवाद, स्वर्ग नरक वाद, इन्द्रिय स्वरूप विचार, इन्द्रियों के आकार प्रत्याकार, प्राप्यकारिता अप्राप्यकारिता, विषय ग्रहण सामर्थ्य आदि, गति सहायक धर्मास्ति काय तत्व, स्थिति सहायक अधर्मास्ति काय तत्व, परमाणु की सांशता व निरंशता, कार्य-कारण विचारणा की दृष्टि से वर्तमान काल की दीक्षा के पालन से स्वर्ग प्राप्ति, वर्तमान काल के ब्रह्मचर्य से भोग की प्राप्ति तथा प्रचलित विविध कर्म कांडों के साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक शुद्धि का सम्बन्ध, ग्रहों का पूजन देवों का आह्वान तथा दुःख सहन करने से स्वर्ग गमन आदि आदि प्रश्नों पर नई दृष्टि और नये चिन्तन के प्रकाश में सोचना होगा। यदि नहीं सोचेंगे तो हमारे सिद्धान्त जड़ और अवैज्ञानिक सिद्ध हो जायेंगे। अन्त में विज्ञ विचारकों को संबोधित करते भगवती सूत्र की वृत्ति में मुद्रित एक गाथा की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ—

जं जह सुत्ते भणियं,
तहेव जइ तं वियालणा णत्थि।
किं कालियाणुओगो,
दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ।।

सूत्र में जो बात जैसी कही गई है, उस बात के सम्बन्ध में यदि कोई विचारणा चिन्तन करने की अपेक्षा नहीं हो, तो फिर दृष्टि प्रधान पुरुषों ने कालिकानुयोग का उपदेश क्यों और किस लिए किया है ?

एक बार एक आचार्य के पास दो शिष्य आए ! प्रणामपूर्वक निवेदन किया—"भगवन् ! हमारा अध्ययन काल समाप्त हो रहा है, अब हमें अपने क्षेत्र का चुनाव करना है, हमें क्या करना चाहिए, क्या बनना चाहिए ?"

आचार्य अपने दोनों विद्वान शिष्यों को साथ लिए घूमते हुए एक उद्यान में पहुँचे। एक छोटी-सी सुनहली पांखों वाली मधु-मक्खी फूलों के आस-पास मंडरा रही थी, उसकी गुनगुनाहट से आचार्य और शिष्यों का ध्यान उसी पर केन्द्रित हो गया ! कुछ ही क्षण बाद गुनगुनाहट बन्द हो गई और मधुमक्खी फूलों पर चुपचाप बैठी रसपान कर रही थी।

आचार्य ने शिष्यों की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा—"भद्र ! क्या देख रहे हो ?"

पहले शिष्य ने कहा—"गुरुदेव ! सत्य की जिज्ञासा में हलचल होती है, किन्तु सत्य की अनुभूति मौन होती है।"

दूसरे शिष्य ने कहा—"भगवन् ! जब तक सत्ता का रस प्राप्त नहीं होता, बुद्धि जागृत रहती है, क्रांति में तीव्रता रहती है। पर सत्ता का रस मिलते ही बुद्धि पर नशा छा जाता है, चिन्तन मूक हो जाता है, क्रांति दब जाती है।"

गुरु ने प्रसन्नतापूर्वक दोनों शिष्यों के कन्धों पर हाथ रखा। पहले से कहा—'भद्र ! जाओ, दर्शन की गुत्थियां सुलझाओ ! तुम दार्शनिक हो।'

...."और तुम अपनी व्यावहारिक बुद्धि से जनता पर शासन करो। तुम्हारी राजनीति से देश को लाभ होगा।" आचार्य ने द्वितीय शिष्य को आशीर्वाद दिया।

— अमर डायरी

० मुनि श्री मधुकर जी

आगम भाव-रूप से शाश्वत है—इसका अभिप्राय इतना ही है कि आगम की भाव-धारा प्रत्येक समय में अन्तर्मुखी रही है, आगमों ने बाह्य को नहीं, अन्तर को अपना लक्ष्य माना है। अतः अन्तर् जागरण की प्रेरणा ही आगमों की शाश्वत ध्वनि है, त्रिकालाबाधित है। बाह्य वर्णनों की शैली-भाव-भाषा युग-युग में बदलती रही है, चूंकि शब्द को जैन-दर्शन आश्वत मानता है।....

भारत-वर्ष एक धर्म-प्रधान देश है, यहाँ पर शतशः धर्म-परम्पराएँ सदियों से अपने अस्तित्व का इतिहास बतला रही हैं,

उन धर्म-परम्पराओं में जो मुख्य धर्म-परम्पराएँ हैं, उनमें जैन धर्म-परम्परा और वैदिक धर्म-परम्परा मुख्यतम धर्म परम्परा है, ये दोनों धर्म-परम्पराएँ अपने को अनादि-निधन मान रही हैं।

जो भी धर्म परम्परा हो, उसका आधार-स्तम्भ एक न एक अवश्य होता ही है, आगम, श्रुति या सन्त-वाणी आदि धर्म-ग्रंथ ही धर्म-परम्पराओं के आधार-स्तम्भ माने गए हैं. इस प्रकार के आधार के विना किसी भी धर्म परंपरा का यथेष्ट प्रसार व प्रचार नहीं हो सकता और न वे सदियों तक प्रवाहित ही रह पाती है'

जैन धर्म परम्परा के आधार स्तम्भ हैं आगम और वैदिक धर्म परम्परा के आधार स्तम्भ हैं वेद (श्रुति शास्त्र)।

यहाँ एक यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आगम व वेदों का निर्माण किसने किया ?

वैदिक परम्परा के मानने वालों की ओर से इस प्रश्न का यह दिया गया कि वेदों का निर्माण किसी ने भी नहीं किया। वेद पहले भ

भी हैं और वे आगे भी रहेंगे। वेदों की न तो कभी भी आदि रही है और न उनका कभी भी अन्त ही होगा, वे शब्द रूपसे भी सदा इसी स्थिति में रहेंगे।

इसी मान्यता को लेकर वैदिकों का यह कथन है कि वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् वेदों का निर्माण किसी भी पुरुष द्वारा नहीं हुआ है,

वैदिकों की इस मान्यता का तथ्य यह है कि अपौरुषेय होने पर ही वेद काल त्रय की शाश्वत सम्पत्ति का रूप ले सकते हैं, अन्यथा वे किसी पुरुष विशेष की उक्ति होने पर उनका स्थायी रुप नहीं रह सकता, जब कि पुरुष स्वयं अशाश्वत है तो फिर उसकी उक्ति शाश्वत रूप कैसे ले सकती है, और अशाश्वत रूप होने पर वेदों का मूल्यांकन महत्त्व-पूर्ण नहीं रह सकता।

वेदों को सूक्त कहा जाता है, सु—उक्त-सूक्त अर्थात् अच्छा कहा हुआ, यह 'सूक्त' शब्द का अर्थ है। इस अर्थ पर यह प्रश्न अभी भी समाधान मांगता है कि अगर वेद सूक्त हैं, तो वे किस पुरुष विशेष के सूक्त हैं ?

वैदिक परम्परा के विपरीत जैन परम्परा की यह मान्यता है कि आगम शाश्वत भी हैं और अशाश्वत भी हैं।

शब्दों की अपेक्षा से आगम अशाश्वत हैं और भावों की अपेक्षा से आगम-शाश्वत हैं।

आगमों के शब्द काल त्रय में सदा वैसे के वैसे ही बने नहीं रहते, वे समय समय पर बदलते भी रहते हैं। शब्द अशाश्वत है।

सर्वज्ञ बनने के बाद ही प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् के मुखारविन्द से वाणी प्रस्फुटित होती है, वह सर्वज्ञ-वाणी ही आगम कहलाती है, आचारांग, सूत्रकृतांग आदि आगमों में उसी सर्वज्ञ-वाणी का संकलन है।

आज जो आगमों में शब्दावली सुरक्षित है, वह अनन्त काल पहले भी वैसी ही थी और अनागत काल में भी वैसी ही रहेगी-ऐसी मान्यता जैन-परम्परा की नहीं है, परन्तु इस मान्यता के साथ जैन परम्परा की यह भी एक निश्चित मान्यता है, कि आगमों का भाव-तत्त्व (अध्यात्म) तो सदा त्रिकाल अविच्छिन्न ही वना रहता है,

तीर्थंकरों की वाणी अर्थरूप में प्रकट होती है, और गणधर अपने-अपने तीर्थंकरों की वाणी को सूत्र रूप में ग्रथित करते रहते हैं, ऐसी स्थिति में शब्द रुप आगम कभी भी शाश्वत नहीं हो सकते।

यह भी एक वात है कि सभी तीर्थंकरों का कथन समय-सापेक्ष ही होता है, समय-निरपेक्ष नहीं, अतएव उनकी वाणी त्रिकालावाधित होती है,

भगवान ऋषभदेव और भगवान् महावीर के अपने-अपने शासन-युग में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रुप पंच याम धर्म का प्रतिपादन

किया तो मध्य युग के बावीस तीर्थंकरों ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह रूप चातुर्याम धर्म का ही निरूपण किया, एक ऐसा भी युग आया कि वहाँ सिर्फ अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह रूप त्रियाम धर्म ही सुरक्षित रहा।

ये सभी वर्णन इस बात के साक्षी हैं कि तीर्थंकर देव भी समय-सापेक्ष होकर ही अपने-अपने तीर्थ में विधि विधानों की रुपरेखा रखते हैं।

एक शब्द से अनेक आशयों को पकड़ने की विलक्षणता जब जन-जन में होती है तब विधि-विधानों में अल्प शब्दों का ही प्रयोग होता है और जब ऐसी विलक्षणता नहीं रहती है तथा जड़ता या वक्रता के कारण यथार्थ आशय की पकड़ जन समाज में नहीं रहती है तब विधि विधानों में शब्दों का प्रयोग अधिक रुप में होता है,

समय के अनुसार धर्म पंचयाम, चतुर्याम, या त्रियाम रूप भले ही रहे, परंतु तत्त्व की दृष्टि से उसमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आता, जहाँ चतुर्याम या त्रियाम रुप धर्म माना गया है, वहाँ अपरिग्रह में ही ब्रह्मचर्य और अस्तेय व्रत अन्तर्गत हो जाते हैं। वस्तुतः अब्रह्म और स्तेयवृत्ति परिग्रह रुप ही तो है, जब परिग्रह का त्याग हो जाता है तो ऐसी स्थिति में अब्रह्म और स्तेय वृत्ति का त्याग तो स्वयमेव हो जाता है,

उपर्युक्त विवेचना से यह बात सिद्ध हो जाती है कि जैन धर्म-परम्परा अपने आगमों को शाश्वत भी मानती है और अशाश्वत भी। इस मान्यता के आधार पर शब्द रूप से आगम अशाश्वत हैं और भाव रूप से आगम शाश्वत हैं।

यही वेदों के अपौरुषेयत्व और आगमों के सर्वज्ञ भाषित्व में अन्तर है। ●

भारत की मनोवृत्ति—भीड़ की मनोवृत्ति है। अतः यहां पर कोई भी सामान्य घटना, साधारण आन्दोलन बहुत जल्दी बल और व्यापकता प्राप्त कर लेता है।

मैं देखता हूं अमावस्या को सोमवार होना एक सामान्य-सा संयोग है, किन्तु उस दिन लाखों लोग दान-पुण्य करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं।

सूर्य चन्द्र का ग्रहण एक प्राकृतिक घटना है, परन्तु उस दिन करोड़ों लोग नदियों में स्नान करने को उमड़ पड़ते हैं।

यह भीड़ की मनोवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण है।

—अमर डायरी

० प्रज्ञापुरुष पं० सुखलाल जी

धर्म का आधार बुद्धि

आज तक किसी भी विचारक ने यह नहीं कहा कि धर्म का उत्पाद और विकास बुद्धि के सिवाय और भी किसी तत्त्व से हो सकता है। प्रत्येक धर्म संप्रदाय का इतिहास यही कहता है कि अमुक बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा ही उस धर्म की उत्पत्ति या शुद्धि हुई है। हरेक धर्म-संप्रदाय के पोषक धर्म गुरु और विद्वान इसी एक बात का स्थापन करने में गौरव समझते हैं कि उनका धर्म बुद्धि, तर्क, विचार और अनुभव-सिद्ध है। इस तरह धर्म के इतिहास और उसके संचालक के व्यावहारिक जीवन को देखकर हम केवल एक ही नतीजा निकाल सकते हैं कि बुद्धि तत्त्व ही धर्म का उत्पादक, उसका संशोधक, पोषक और प्रचारक रहा है और रह सकता है।

ऐसा होते हुए भी हम धर्मों के इतिहास में बराबर धर्म और बुद्धि तत्त्व का विरोध और पारस्परिक संघर्ष देखते हैं। केवल यहाँ के आर्य धर्म की शाखाओं में ही नहीं, बल्कि यूरोप आदि अन्य देशों के ईसाई, इस्लाम आदि अन्य धर्मों में भी हम भूतकालीन इतिहास तथा वर्तमान घटनाओं में देखते हैं कि जहाँ बुद्धि तत्त्व ने अपना काम शुरू किया कि धर्म के विषय में अनेक शङ्का-प्रतिशङ्का और तर्क-वितर्क पूर्ण प्रश्नावली उत्पन्न हो जाती है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि धर्म गुरु और धर्माचार्य जहाँ तक हो सकता है उस प्रश्नावली का, उस तर्क पूर्ण विचारणा का आदर करने के वजाय विरोध ही नहीं, सख्त विरोध करते हैं। उनके ऐसे विरोधी और संकुचित व्यवहार से तो यह जाहिर होता है कि अगर तर्क, शङ्का या विचार को जगह दी जाएगी, तो धर्म का अस्तित्व ही नहीं रह सकेगा अथवा वह विकृत होकर ही रहेगा। इस तरह जब हम चारों तरफ धर्म और विचारणा के बीच विरोध–सा देखते हैं तब हमारे मन में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्या धर्म और बुद्धि में विरोध है? इसके उत्तर में संक्षेप में इतना कहा जा सकता है उनके बीच कोई विरोध नहीं है और न हो सकता है। यदि सचमुच ही किसी धर्म में इनका विरोध माना जाए तो हम यही कहेंगे कि उस बुद्धि-विरोधी धर्म से हमें कोई मतलब नहीं। ऐसे धर्म को अंगीकार करने की अपेक्षा उसको अंगीकार न करने में ही जीवन सुखी और विकसित रह सकता है।

धर्म के दो रूप हैं, एक तो जीवन-शुद्धि और दूसरा बाह्य व्यवहार। क्षमा, नम्रता, सत्य, सन्तोष आदि जीवन-गत गुण पहिले रूप में आता है और स्नान,

तिलक, मूर्ति पूजन, यात्रा, गुरु सत्कार, देहदमनादि बाह्य व्यवहार दूसरे रूप में। सात्त्विक धर्म का इच्छुक मनुष्य जब अहिंसा का महत्व गाता हुआ भी पूर्वसंस्कार-वश कभी-कभी उसी धर्म की रक्षा के लिए हिंसा, पारस्परिक पक्षपात तथा विरोधी पर प्रहार करना भी आवश्यक बतलाता है, सत्य का हिमायती भी ऐन मौके पर जब सत्य की रक्षा के लिए असत्य की शरण लेता है, सबको सन्तुष्ट रहने का उपदेश देने वाला भी जब धर्म-समर्थन के लिए परिग्रह की आवश्यकता बतलाता है, तब बुद्धिमानों के दिल में प्रश्न होता है कि अधर्म स्वरूप समझे जाने वाले हिंसा आदि दोषों से जीवन-शुद्धि-रूप धर्म की रक्षा या पुष्टि कैसे हो सकती है ? फिर वही बुद्धिशाली वर्ग अपनी शङ्का को उन विपरीतगामी गुरुओं या पण्डितों के सामने रखता है। इसी तरह जब बुद्धिमान् वर्ग देखता है कि जीवन-शुद्धि का विचार किए बिना ही धर्मगुरु और पण्डित बाह्य क्रिया कांडों को ही धर्म कहकर उनके ऊपर ऐकान्तिक भार दे रहे हैं, और उन क्रिया-कांडों एवं नियत भाषा तथा वेश के बिना धर्म चला जाना, नष्ट हो जाना बतलाते हैं, तब वह अपनी शङ्का उन धर्म-गुरुओं, पंडितों आदि के सामने रखता है कि वे लोग जिन अस्थाई और परस्पर असंगत बाह्य व्यवहारों पर धर्म के नाम से पूरा भार देते हैं उनका सच्चे धर्म से क्या और कहाँ तक सम्बन्ध है ? प्राय: देखा जाता है कि जीवन-शुद्धि न होने पर, बल्कि अशुद्ध जीवन होने पर भी, ऐसे बाह्य-व्यवहार, अज्ञान, वहम, स्वार्थ एवं भोलेपन के कारण मनुष्य को धर्मात्मा समझ लिया जाता है। ऐसे बाह्य–व्यवहारों के कम होते हुए या दूसरे प्रकार के बाह्य–व्यवहार होने पर भी सात्त्विक धर्म का होना सम्भव हो सकता है। ऐसे प्रश्नों को सुनते ही उन धर्म गुरुओं और धर्म पण्डितों के मन में एक तरह की भीति पैदा हो जाती है। वे समझने लगते हैं कि ये प्रश्न करने वाले वास्तव में तात्त्विक धर्म वाले तो हैं नहीं, केवल निरी तर्क शक्ति से हम लोगों के द्वारा धर्म रूप से मनाये जाने वाले व्यवहारों को अधर्म बतलाते हैं। ऐसी दशा में धर्म का व्यवहारिक बाह्य रूप भी कैसे टिक सकेगा ? इन धर्म-गुरुओं की दृष्टि में ये लोग अवश्य ही धर्म-द्रोही या धर्म-विरोधी हैं, क्योंकि वे ऐसी स्थिति के प्रेरक हैं जिनमें न तो जीवन-शुद्धिरूपी असली धर्म ही रहेगा और न झूठा सच्चा व्यवहारिक धर्म ही। धर्म गुरुओं और धर्म-पंडितों के उक्त भय और तज्जन्य उलटी विचारणा में से एक प्रकार का द्वन्द्व शुरू होता है। वे सदा स्थाई जीवन-शुद्धिरूप तात्त्विक धर्म को पूरे विश्लेषण के साथ समझाने के बदले बाह्य-व्यवहारों को त्रिकालाबाधित कह कर उनके ऊपर यहां तक जोर देते हैं कि जिससे बुद्धिमान वर्ग उनकी दलीलों से ऊबकर, असन्तुष्ट होकर यही कह बैठता है कि गुरु और पंडितों का धर्म सिर्फ ढकोसला है–धोखे की टट्टी है। इस तरह धर्मोपदेशक और तर्कवादी बुद्धिमान् वर्ग के बीच प्रतिक्षण अन्तर और विरोध बढ़ता ही जाता है। उस दशा में धर्म का आधार विवेकशून्य श्रद्धा, अज्ञान या वहम ही रह जाता है और बुद्धि एवं तत्सम्बन्ध गुणों के साथ धर्म का एक प्रकार से विरोध दिखाई देता है।

यूरोप का इतिहास बताता है कि विज्ञान का जन्म होते ही उसका सबसे पहला प्रतिरोध ईसाई धर्म की ओर से हुआ। अन्त में इस प्रतिरोध से धर्म का ही सर्वथा नाश देखकर उसके उपदेशकोंने विज्ञान के मार्ग में प्रतिपक्षी भाव से आना ही छोड़ दिया। उन्होंने अपना क्षेत्र ऐसा बना लिया कि वे वैज्ञानिकों के मार्ग में बिना बाधा ही कुछ धर्म कार्य कर सकें। उधर वैज्ञानिकों का भी क्षेत्र ऐसा निष्कण्टक हो गया कि जिससे वे विज्ञान का विकाश और सम्वर्धन निर्वाध रूप से करते रहें। इसका एक सुन्दर और महत्त्व का परिणाम यह हुआ कि सामाजिक और अन्त में राजकीय क्षेत्र से भी धर्म का डेरा उठ गया और फलतः वहाँ की सामाजिक और राजकीय संस्थाऐं अपने ही गुण-दोषों पर बनने-बिगड़ने लगीं।

इस्लाम और हिन्दू धर्म की सभी शाखाओं की दशा इसके विपरीत है। इस्लामी दीन और धर्मों की अपेक्षा बुद्धि और तर्कवाद से अधिक घबड़ाता है। शायद इसीलिए वह धर्म अभी तक किसी अन्यतम महात्मा को पैदा नहीं कर सका और स्वयं स्वतन्त्रता के लिए उत्पन्न हो कर भी उसने अपने अनुयायियों को अनेक सामाजिक तथा राजकीय बन्धनों से जकड़ दिया। हिन्दू धर्म की शाखाओं का भी यही हाल है। वैदिक हो, बौद्ध हो या जैन, सभी धर्म स्वतन्त्रता का दावा तो बहुत करते हैं, फिर भी उनके अनुयायी जीवन के हरेक क्षेत्र में अधिक से अधिक गुलाम हैं। यह स्थिति अब विचारकों के दिल में खटकने लगी है। वे सोचते हैं कि जब तक बुद्धि, विचार और तर्क के साथ धर्म का विरोध समझा जाएगा तब तक उस धर्म से किसी का भला नहीं हो सकता। यही विचार आज-कल के युवकों की मानसिक क्रान्ति का एक प्रधान लक्षण है।

राजनीति, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, इतिहास और विज्ञान आदि का अभ्यास तथा चिन्तन इतना अधिक होने लगा है कि उससे युवकों के विचार में स्वतन्त्रता तथा उनके प्रकाशन में निर्भयता दिखाई देने लगी है। इधर धर्म गुरु और धर्म पण्डितों का उन नवीन विद्याओं से परिचय नहीं होता, इस कारण वे अपने पुराने, बहमी, संकुचित और भीरु खयालों में ही विचरते रहते हैं। ज्यों ही युवक वर्ग अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करने लगता है, त्यों ही धर्म-जीवी महात्मा घबड़ाने और कहने लगते हैं कि विद्या और विचार ने ही तो धर्म का नाश शुरू किया है। जैन समाज की ऐसी ही एक ताजी घटना है। अहमदावाद में एक ग्रेज्युएट वकील ने जो मध्य श्रेणी के निर्भय विचारक हैं, धर्म के व्यवहारिक स्वरूप पर कुछ विचार प्रकट किए कि चारों ओर से विचार के कब्रस्तानों से धर्म-गुरुओं की आत्मायें जाग पड़ीं। हलचल होने लग गई कि ऐसा विचार प्रक्ट क्यों किया गया और उस विचारक को जैनधर्मोचित सजा क्या और कितनी दी जाए ? सजा ऐसी हो कि हिंसात्मक भी न समझी जाय और हिंसात्मक सजा से अधिक कठोर भी सिद्ध हो, जिससे आगे कोई स्वतन्त्र और निर्भय भाव से

धार्मिक विषयों की समीक्षा न करे। हम जब जैन समाज की ऐसी ही पुरानी घटनाओं तथा आधुनिक घटनाओं पर विचार करते हैं तब हमें एक ही बात मालूम होती है और वह यह कि लोगों के ख्याल में धर्म विचार का विरोधी ही जँच गया है, इस जगह हमें थोड़ी गहराई से विचार-विश्लेषण करना होगा।

हम उन धर्मधुरंधरों से पूछना चाहते हैं कि क्या वे लोग तात्त्विक और व्यवहारिक धर्म के स्वरूप को अभिन्न या एक ही समझते हैं? और क्या व्यवहारिक स्वरूप या बंधारण को वे अपरिवर्तनीय साबित कर सकते हैं? व्यवहारिक धर्म का बन्धारण और स्वरूप अगर बदलता रहता है और बदलना चाहिए तो इस परिवर्तन के विषय में यदि कोई अभ्यासी और चिन्तनशील विचारक केवल अपना विचार प्रदर्शित करे, तो इसमें उनका क्या बिगड़ता है?

सत्य, अहिंसा, सन्तोष आदि तात्त्विक धर्म का तो कोई विचारक अनादर करता ही नहीं, बल्कि वह तो उस तात्त्विक धर्म की पुष्टि, विकास एवं उपयोगिता का स्वयं कायल होता है। वह जो कुछ आलोचना करता है, जो कुछ हेर-फेर या तोड़-फोड़ की आवश्यकता बताता है वह तो धर्म के व्यवहारिक स्वरूप के सम्बन्ध में है और उसका उद्देश्य धर्म की विशेष उपयोगिता एवं प्रतिष्ठा बढ़ाना है। ऐसी स्थिति में उस पर धर्म-विनाश का आरोप लगाना या उनका विरोध करना केवल यही साबित करना है कि या तो धर्म धुरंधर धर्म के वास्तविक स्वरूप और इतिहास को नहीं समझते या समझते हुए भी ऐसा पामर प्रयत्न करने में उनकी कोई परिस्थति कारण भूत है।

आम तौर से अनुयायी गृहस्थ वर्ग ही नहीं, बल्कि साधु वर्ग का बहुत बड़ा भाग भी किसी वस्तु का समुचित विश्लेषण करने और उसपर समतौलपन रखने में नितान्त असमर्थ है। इस स्थिति का फायदा उठाकर संकुचितमना साधु और उनके अनुयायी गृहस्थ भी एक स्वर से कहने लगते हैं कि ऐसा कहकर अमुक ने धर्मनाश कर दिया। बिचारे भोले-भाले लोग इस बात से अज्ञान के और भी गहरे गड्ढे में जा गिरते हैं। वास्तव में चाहिए तो यह कि कोई विचारक नए दृष्टि-बिन्दु से किसी विषय पर विचार प्रकट करें तो उनका सच्चे दिल से आदर करके विचार-स्वातंत्र्य को प्रोत्साहन दिया जाय। इसके बदले में उनका गला घोंटने का जो प्रयत्न चारों ओर देखा जाता है उसके मूल में मुझे दो तत्त्व मालूम होते हैं। एक तो उग्र विचारों को समझ कर उनकी गलती दिखाने का असामर्थ्य और दूसरा अकर्मण्यता की भित्ति के ऊपर अनायास मिलने वाली आराम-तलबी के विनाश का भय।

यदि किसी विचारक के विचारों में आंशिक या सर्वथा गलती हो, तो क्या उसे धर्मनेता समझ नहीं पाते? अगर वे समझ सकते हैं तो क्या उन गलती को वे जोरदार दलीलों के साथ दर्शाने में असमर्थ हैं? अगर वे समर्थ हैं तो उचित उत्तर देकर उस विचारक का प्रभाव लोगों में से नष्ट करने का न्यायमार्ग

क्यों नहीं लेते ? धर्म की रक्षा के बहाने वे अज्ञान और अधर्म संस्कार अपने में और समाज में पुष्ट करते हैं ? मुझे तो सच बात यही जान पड़ती है कि चिरकाल से शारीरिक और दूसरा जवाबदेहीपूर्ण परिश्रम किए बिना ही मखमली और रेशमी गद्दियों पर बैठकर दूसरों के पसीने पूर्ण परिश्रम का पूरा फल बड़ी भक्ति के साथ चखने की जो आदत पड़ गयी है, वही इन धर्मधुरंधरों से ऐसी उपहासास्पद प्रवृत्ति कराती है। ऐसा न होता तो प्रमोद-भावना और ज्ञान-पूजा की बात करने वाले ये धर्म-धुरन्धर विद्या, विज्ञान और विचार-स्वातन्त्र्यका आदर करते और विचारक युवकों से बड़ी उदारता से मिलकर उनके विचारगत दोषों को दिखाते और उनकी योग्यता की कद्र करके ऐसे युवकों को उत्पन्न करने वाले अपने समाज का गौरव करते। खैर, जो कुछ हो, पर अब दोनों पक्षों में प्रतिक्रया शुरू हो गई है। जहाँ एक पक्ष ज्ञात या अज्ञात रूप से यह स्थापित करता है कि धर्म और विचार में विरोध है, तो दूसरे पक्ष को भी यह अवसर मिल रहा है कि वह प्रमाणित करे कि विचार स्वातन्त्र्य आवश्यक है। यह पूर्ण रूप से समझ रखना चाहिए कि विचार स्वातन्त्र्य के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही अर्थ शून्य है। वास्तव में विचार तथा धर्म का विरोध नहीं, पर उनका पारस्परिक अनिवार्य सम्बन्ध है।

★★★

तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा।

—**बाइबिल**—(यूहन्ना ८.३२)

सत्य का स्वरूप…!

लोग पूछते हैं सत्य क्या है ? क्या वह कोई सिद्धान्त है ? क्या वह कोई सम्प्रदाय या संगठन है ? वस्तुत: सत्य न तो सिद्धान्त है और न कोई सम्प्रदाय।………सत्य सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि सिद्धान्त है मृत और सत्य है स्वयं जीवित ! वह शास्त्र भी नहीं है, क्योंकि सब शास्त्र मनुष्य-कृत हैं, और सत्य अकृत है, असृष्ट है। सत्य शब्द भी नहीं है, क्योंकि जहां शब्द पैदा होते हैं और काल क्रम से नष्ट भी होते है, वहां सत्य सनातन और शाश्वत है।....

—**आचार्य रजनीश**

★★★

"……धर्म वस्तुतः अध्यात्म साधना है, और अध्यात्म साधना में समत्व योग की महती आवश्यकता होती है। यह समत्व योग विवेक द्वारा श्रद्धायुक्त मन एवं तर्क-युक्त बुद्धि के द्वारा निष्पन्न होता है।……"

धर्म का प्रवेशद्वार : श्रद्धविवेक

○ डा० अजित शुकदेव शर्मा

एम० ए० पी-एच० डी०

व्यवहार को—विशेषतः नैतिक परिस्थितियों में आलोचनात्मक मूल्यांकन करने की क्षमता को विवेक कहते हैं, अर्थात् नैतिक व्यवहार में भले-बुरे का विवेचन करने की शक्ति ही विवेक है। अतः इसी क्षमता के कारण इसे–'ज्ञातोयं जलधर तावको विवेकः' अथवा 'काश्यापि यातस्तवापि च विवेकः' कहकर पुकारा गया है। अरस्तु ने भी इसे एक विशेष आन्तरिक इन्द्रिय की शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उसके अनुसार वह शक्ति मानव और कुछ अन्य उच्च श्रेणी के प्राणियों में ही विद्यमान होती है। मनोवैज्ञानिक अर्थ में भी इसका संकेत मन की उस क्षमता की ओर है, जिससे वह वस्तुओं और गुणों के प्रभेदों को समझ सके।

इस प्रकार विवेक वस्तुतः वह क्षमता है, जिसके द्वारा उचित-अनुचित का भेद करना सम्भव होता है और यह मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ गुण है। इसके बल पर ही मनुष्य अपने प्रत्येक क्रिया-कलापों में एक संगति अथवा सम्यक्ता का निर्वाह कर पाते हैं, जिससे उनका जीवन अनेक अवरोधों एवं भटकावों में भी सुनियोजित रूप में विकसित होता चलता है। अतः प्रत्येक क्रिया—वह सामाजिक हो अथवा राजनैतिक, धार्मिक हो अथवा आध्यात्मिक अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य को अपनी विवेकशीलता के सम्यक् उपयोग की अपेक्षा होती है, क्योंकि विवेक ही मनुष्य को उचित एवं गन्तव्य मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा देता है। इस संदर्भ में अमर मुनि जी ने ठीक ही कहा है—"जीवन की प्रत्येक क्रिया में,

फिर भले ही वह बड़ी हो अथवा छोटी हो, विवेक और विचार की बड़ी आवश्यकता रहती है। विवेकशील व्यक्ति पतन के अंधकार में से भी उत्थान के प्रकाश को खोज लेता है" (समाज और संस्कृति, पृष्ठ ४३)

अतः प्रत्येक धर्म का प्रवेश-द्वार विवेक ही है, क्योंकि विवेक ही श्रद्धायुक्त एवं भाव प्रवण मन तथा तर्कयुक्त बुद्धि को संतुलित करने में सक्षम होता है और जिससे धर्म का सच्चा अर्थ प्रतिपादित होता है। धर्म वस्तुतः अध्यात्म साधना है और अध्यात्म साधना में समत्वयोग की महती आवश्यकता होती है। यह समत्वयोग विवेक द्वारा ही श्रद्धा युक्त मन एवं तर्क युक्त बुद्धि के संतुलन से ही निष्पन्न होता है, क्योंकि "सीमाहीन श्रद्धा अन्धी और सीमाहीन तर्क पंगु होती है (समाज और संस्कृति, पृष्ठ १८)। दूसरे शब्दों में जिस बुद्धि के पीछे विवेक नहीं है, धर्म की पिपासा नहीं है, वह बुद्धि मनुष्य को मनुष्य न रहने देकर राक्षस बना देती है" (श्रमण-सूत्र, पृष्ठ २१)।

अतः धर्म के क्षेत्र में विवेक की महती आवश्यकता है। अगर धर्म में विवेक का सम्यक् स्थान न हो तो कोई भी धर्म में जीवन्तता एवं प्रगतिशीलता न रहेगी और वह धर्म विकास की अपेक्षा विनाश को प्राप्त करेगा। विवेक ही धर्म को बताता है कि वस्तुतः मौलिक रूप में क्या यथार्थ है क्या अयथार्थ, क्या उचित है—क्या अनुचित; क्या नैतिक है-क्या अनैतिक, आदि इसलिए विवेक धर्म को सुगठनता देता है, और विकलांगता को दूर करता है। विशेष श्रद्धा और भक्तिवश धर्म जहाँ पंगु बनने लगता है, वहाँ विवेक ही उसे ज्ञान देकर उचित राह पर अग्रसर होने की वह सलाह देता है। विवेकशील मनुष्य कभी भी अन्ध मोह जाल में नहीं फँसता। उसकी धार्मिक दृष्टि टकसाली होती है। वह सर्वदा धर्म को अपने विवेक की कसौटी पर परखता चलता है और धर्म को जंग लगने देने से बचाता रहता है। इस संदर्भ में सिद्धसेन दिवाकर की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। यथा—

> पुरातनैर्या नियता व्यवस्थितिस्तथैव सा किं परिचिन्त्य सेत्स्यति।
> तथेति वक्तुं मृतरूढगौरवादहं न जातः प्रथयन्तु विद्विषः॥

अर्थात् पुराने पुरुषों ने जो व्यवस्था निश्चित की है, वह विचार की कसौटी पर क्या वैसी ही सिद्ध होती है? यदि समीचीन सिद्ध हो तो, हम उसे समीचीनता के नाम पर मान सकते हैं, प्राचीनता के नाम पर नहीं। यदि वह समीचीन सिद्ध नहीं होती है, तो केवल मरे हुए पुरुषों के झूठे गौरव के कारण 'हाँ में हाँ' मिलाने के लिए मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। मेरी इस सत्य-प्रियता के कारण यदि विरोधी बढ़ते हैं तो बढ़ें।"

> बहु प्रकाराः स्थितयः परस्परं विरोध युक्ताः कथमाशु निश्चयः।
> विशेषसिद्धावियमेव नेति वा पुरातन-प्रेम जडस्य युज्यते॥

अर्थात्—पुरानी परम्पराएँ अनेक प्रकार की हैं। उनमें परस्पर विरोध भी हैं। अतः बिना समीक्षा किए प्राचीनता के नाम पर, यों ही झटपट निर्णय नहीं दिया जा

सकता। किसी कार्य विशेष की सिद्धि के लिए 'यही प्राचीन व्यवस्था ठीक है—अन्य नहीं, यह बात केवल पुरातन-प्रेमी जड़ ही कह सकते हैं।

इस प्रकार धर्म की तीक्ष्णता कायम रखने के लिए सद्विवेक आवश्यक है। सद्विवेक ही धर्म को दोनों रूपों—चिरन्तन एवं युगीन—को स्वस्थ रखता है और साथ ही श्रद्धा की अतिरकेता, अंधविश्वास, प्राचीनता के नाम पर विशेष भक्ति आदि घाव के रोगों से बचाता रहता है।

यह ठीक है कि विवेकी मनुष्य सत्यभाषी होता है और उसका प्रत्येक क्रिया-कलाप सत्य के द्वारा ही संपादित होता है, लेकिन उसे काँटों की राह भी तय करनी होती है। उपाध्याय अमर मुनिजी के शब्दों में—"सत्य की राह पर जाने वालों को शूलों की सेज मिलेगी और उन्हें अपना सारा जीवन काँटों की राह तय करते—करते गुजारना पड़ेगा।" (अहिंसा दर्शन, पृष्ठ २१५)

अन्त में, एक वाक्य में, यह कहा जा सकता है कि सद्विवेक वह चलनी है, जिसके द्वारा धर्म में आई गंदगी का परिहार होता है और सबल स्वास्थ्य कायम रहता है। ●

●●

तथागत बुद्ध ने एक बार ऐसे भिक्षु को देखा, जो धर्म की बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था, लोगों को इकट्ठा करके उपदेश दे रहा था, किन्तु वह स्वयं के जीवन में शील और सदाचार से शून्य था। तथागत ने कहा—"भिक्खु! क्या कोई ग्वाला, जो जनपद की गायों को गिनता रहता है, कभी उनका स्वामी कहला सकता है?"

"नहीं, भन्ते! गोप (ग्वाला) जनपद की गायों की संभाल रखने वाला परम दास है, गो-स्वामी नहीं हो सकता।"

तथागत ने गम्भीर होकर कहा—"भिक्षु! जो श्रमण सिर्फ धर्म गाथाओं के पाठ गिनता रहता है, वह कभी धर्मपथ का स्वामी नहीं हो सकता है धर्म को जिह्वा से नहीं जीवन से स्पर्श करो।"

●●

० डा० प्रेमसिंह राठौड़
एम० बी० बी० एस०
(भू० पू० स्वास्थ्य मंत्री—
मध्य भारत)

नवचिंतन के आलोक में

भगवान महावीर का उपदेश विक्रम पूर्व ५०० वर्ष में शुरू हुआ। तथा अन्तिम वाचना के आधार पर पुस्तक लेखन वल्लभी में विक्रम सं० ५१० या मतान्तर से ५२३ में हुआ। अतएव हम कह सकते हैं कि कोई भी शास्त्र विक्रम सं० ५२५ के बाद का नहीं हो सकता।

चद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति इन तीन उपांगों का समावेश दिगम्बरों ने दृष्टिवाद के प्रथम भेद परिकर्म में किया है। अतएव ये ग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर के भेद से प्राचीन होने चाहिये। इन ग्रन्थों का उल्लेख नंदीसूत्र में भी किया गया है, जिसकी रचना पूज्य देववाचकजी ने विक्रम की छठी शताब्दी से पूर्व की ऐसा अनुमान है। (देखो—आगम-युग का जैन दर्शन : लेखक पंडित दलसुख मालवणिया)।

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति निश्चित ही गणधरों की रचना नहीं है। प्राचीन उपनिषदों में भी चन्द्र की स्थिति सूर्य से काफी दूर ऊंची बतलाई गई है और चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति में भी चन्द्र की स्थिति सूर्य से काफी उंचाई पर वर्णित है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस काल में आम मत यही था कि चन्द्र की स्थिति सूर्य से काफी दूर ऊंची है। आज अगर चन्द्रलोक की यात्रा ने निर्विवाद यह सिद्ध कर दिया कि चन्द्र सूर्य से नीचे है और इस प्रकार पुरानी मान्यता गलत साबित हो गई तो इससे केवल यही सिद्ध हुआ कि प्राचीनकाल में जो सर्वमान्य मान्यता थी, वह ठीक नहीं थी।

इस भौगोलिक स्थिति के वर्णन को भगवान की सर्वज्ञता के साथ जोड़ने का जो दुराग्रह है, वह सर्वथा ही अनुचित है। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति गणधर रचित नहीं वरन् स्थविर रचित हैं और स्थविरों ने उस काल की जो मान्यता थी उस को आधार बना कर अपने ग्रन्थों की रचना की। स्थविर छद्मस्थ थे और अगर उस काल की कोई मान्यता—जिसका वर्णन जैनेतर उपनिषदों में भी मिलता है—आज

गलत साबित हो गई है तो किसी को आंसू बहाने की आवश्यकता नहीं है और न ही उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना कर भोली श्रद्धालु जनता को भ्रमित करने की आवश्यकता है। आवश्यकता तो सही मानों में इस बात की है कि भूगोल आदि के सम्बन्धी जितनी भी धारणाएं आज गलत साबित हो चुकी हैं, उन्हें अलग करके हमारे ग्रन्थों में संशोधन किया जाय, जिससे कि आज के बुद्धिजीवी वर्ग में धर्म तथा शास्त्रों के प्रति पुनः श्रद्धा उत्पन्न हो। इस संशोधन के लिये विद्वान साधुओं एवं गृहस्थों की गोष्ठी की जावे जिसमें संशोधन के कार्य को संपन्न करने की योजना बनाई जावें और उसे मूर्तरूप दिया जावे।●

● ●

उपदेश का तरीका

घटना बंगाल की है। मल्लिक सेठ बहुत बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। कभी झूठ नहीं बोलते थे। एक बार अपने चार जहाजों में माल भर कर समुद्र में जा रहे थे कि समुद्री डाकू चांचियों ने मध्यरात्रि में धावा बोलकर जहाजों को लूट लिया। चांचियों के सरदार ने पूछा—"सेठ! अब तुम्हारे पास और क्या है?"

"बस अब मेरे पास कुछ नहीं रहा।"

चांचिये सब माल लेकर जाने की तैयारी करने लगे कि सेठ की नजर अंगूठी की तरफ गई। कम से कम दस हजार की अंगूठी होगी वह।

सेठ का मन ग्लानि से भर उठा—आज अनजाने में झूठ बोल दिया कि मेरे पास कुछ नहीं रहा। उसने सरदार को पुकारा—"लो, यह अंगूठी भूल से मेरे पास रह गई थी, लेते जाओ इसे भी।"

सरदार ने अंगूठी हाथ में ली, घुमा-फिराकर देखा उसे। सब उसके साथ भी फिरने लगे, विचारधारा मोड़ खा गई—कहां यह सत्यवादी सेठ! और कहाँ हम पापी लुटेरे!! अपना सब कुछ चले जाने पर भी सेठ ने अपना सत्य नहीं छोड़ा, और कहां हम अपने पेट के लिए मानवता भी छोड़ देते हैं। डाका डालते हैं और हत्याएं करते हैं?

सरदार कुछ देर सोचता रहा, फिर सेठ के चरणों में गिर पड़ा। साथियों से [illegible] उसने—"सब माल लौटा दो। यह कच्चा पारा हजम नहीं है [illegible] का माल हम नहीं पचा सकेंगे।"

केवल भारतवर्ष ही नहीं, अपितु विश्व की दृष्टि से सन् १९६९ का वर्ष महत्वपूर्ण रहा है, सन् १९६९ में मानव जाति के अदम्य साहसी व्यक्तियों ने चन्द्र तल पर अपने चरण रखे, यह घटना अभूतपूर्व थी। सहस्राब्दियों से जो चन्द्रमा मानव जाति के लिए रहस्य पूर्ण था। मानव केवल धर्मशास्त्र के ग्रंथों से उसका चमत्कार पूर्ण वर्णन पढ़ या समझ, संतोष करता था अथवा कवियों द्वारा वर्णित उपमाओं से मनोरंजन कर लेता था। उसी चन्द्रमा का रहस्य मानव जाति के इन सपूतों ने उद्घाटित कर दिया। इस घटना से जैन तथा जैनेतर श्रद्धाशील समाज में यह प्रश्न विचारणीय हो गया कि धर्म ग्रंथों में चन्द्रमा के संबंध में जो वर्णन हम पढ़ते आ रहे थे वह आलंकारिक था या अतिशयोक्ति पूर्ण था या काल्पनिक ? जैन समाज के उद्भट विद्वान, कवि मुनि श्री अमरचन्द जी के प्रवचन के आधार पर "अमर भारती" मासिक के फरवरी १९६९ के अंक में **"क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है ?** शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था। उक्त प्रवचन लेख अत्यन्त सारगर्भित, तार्किक दृष्टि सम्पन्न, संतुलित विचारधारा पूर्ण था।

वैचारिक क्रान्ति तथा उसकी प्रक्रिया

० **श्री सौभाग्यमल जैन** एडवोकेट

जिसमें यह मत प्रतिपादित किया गया था कि जिन जैन ग्रंथों में सूर्य, चन्द्र सम्बन्धी वर्णन है, वह ग्रंथ है—उनको शास्त्र नहीं कहा जा सकता। उसमें आध्यात्मिकता नहीं है। शास्त्रों को चुनौती नहीं दी जा सकती। इस प्रवचन लेख से समाज के स्थितिपालक सज्जनों में खलबली मच गई और विभिन्न प्रकार की अनुकूल प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं हुई। मैंने उक्त प्रवचन लेख तथा अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रिया को सूक्ष्म रीति से अवलोकन किया। उसके पश्चात् कवि जी का एक लेख "अमर भारती" के सितम्बर ६९ के अंक में **"पर्युषण पर्व और केश लोच"** शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने सप्रमाण यह मान्यता प्रस्थापित की कि पर्युषण कब किया जाना चाहिए तथा क्या विशेष स्थिति

में भी केशलोच अनिवार्य है ? आदि उसके कुछ समय पश्चात, "अमर भारती" के नवम्बर ६९ अंक में "क्या विद्युत अग्नि है ? शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें बहुचर्चित ध्वनि वर्धक यंत्र के उपयोग के प्रश्न पर भी प्रकाश डाला गया। इन उपरोक्त लेखों ने समाज को झकझोर दिया, एक क्षेत्र में कवि जी के उपरोक्त विचारों की कटु आलोचना हुई, उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि वह समाज में धर्म शास्त्रों के प्रति अश्रद्धा फैला रहे हैं, दूसरे क्षेत्र में यह प्रतिक्रिया भी व्यक्त की गई, कि कवि जी के विचारों की छानवीन होकर उसका मूल्यांकन होना चाहिए, मुझे स्मरण आता है— यूरोप में ईसाई पादरियों की मान्यता के विरुद्ध जव वैज्ञानिकों ने सूर्य और पृथ्वी के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये थे उस समय उनको राज्य तक का कोप भाजन होना पड़ा था, क्योंकि राज्य पर ईसाई पादरियों का प्रभाव था। ऐसी दशा में कवि जी के सम्बन्ध में विपरीत प्रतिक्रिया होती है, तो आश्चर्य की वात नहीं है। मेरे अपने विचार में जिस प्रकार आज से लगभग ५०० वर्ष पूर्व जैन धर्मान्तर्गत गुजरात के सद्ग्रहस्थ लोंकाशाह ने तत्कालीन प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध मुख्यतः आचारक्रान्ति की थी, उसी प्रकार कवि जी के द्वारा प्रचलित मान्यताओं के सम्बन्ध में विचार तथा आचार क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है, और इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है, इसमें सन्देह नहीं है कि समाज का जो वर्ग निहित स्वार्थ का हामी है, अत्यन्त श्रद्धाशील है वह इस स्थिति से अत्यधिक बेचैन होते हैं। उनकी मान्यता है कि महापुरुषों के वचनों का जो तात्पर्य भूतकाल में समझा जाता रहा है, वही शाश्वत सत्य है, उसकी व्याख्या जो उसके हार्द के निकट ही क्यूँ न हो, करने से धार्मिक मान्यताएँ तहस-नहस हो जावेगीं। उन्होंने मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क का सामंजस्य करने का प्रयत्न नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं है कि मनुष्य जीवन में श्रद्धा का भी वहुत महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु श्रद्धा का तात्पर्य अंध-श्रद्धा या अन्ध विश्वास कदापि नहीं है। श्रद्धा जो पर्याप्त छानवीन के पश्चात मनुष्य के हृदय में स्थान पावे वही सच्ची श्रद्धा है, इसीलिए "सद्धा परमदुल्लहा" जैसे वाक्य का निर्माण हुआ। श्रद्धा परमदुर्लभ इसलिए है कि वह छानवीन करके प्राप्त की जाती है, छानवीन में मेहनत-मशक्कत करनी पड़ती है। केवल यह कह देने से काम नहीं चलेगा, कि "संशयात्मा विनश्यति" अथवा सम्यकत्व नष्ट हो जाने का हौआ खड़ा कर देने, पापभीरू व्यक्ति को परलोक विगड़ने का भय वता देने से आज का जिज्ञासु भय ग्रस्त नहीं होगा। जैसा कि एक विद्वान ने कहा था "धर्मस्य मूलं जिज्ञासा" धर्म का मूल जिज्ञासा है, वास्तव में श्रमण संस्कृति, जिसमें जैन, वौद्ध दोनों सम्मिलित हैं में सम्यक् शब्द वड़ा महत्वपूर्ण है, मेरी अल्पमति से सम्यक् शब्द से तात्पर्य जैसे का तैसा, दर्पणवत् है। यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को दर्पण में देखना चाहता है, तो दर्पण कोई पक्षपात नहीं करेगा, इसी प्रकार शुद्ध निष्पक्ष, निष्पक्षदृष्टि की अपेक्षा है, सम्यक् दृष्टि का महत्व वताते हुए एक जैनाचार्य ने ठीक ही कहा था—

"मिथ्यादृष्टिपरिगृहितं सम्यक् श्रुतमपि मिथ्याश्रुतं भवति"

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपनी प्रज्ञा का उपयोग करते रहना चाहिए, यह [illegible] है, इसी प्रकार जैनाचार्य ने यहाँ तक कहा कि—

अमर भारती-मार्च ६९

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिपु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

मनुष्य को दर्पण में किसी वस्तु का आकार देखने के लिए चक्षु की आवश्यकता होती है, वही मनुष्य की प्रज्ञा है। यदि चक्षु नहीं है, प्रज्ञा नहीं है तो मनुष्य वास्तविक तात्पर्य से वंचित रहेगा।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति ॥

शास्त्रकारों ने भी, मनुष्य से अपेक्षा की थी कि—

पन्ना समिक्खए धम्मं।

इस पृष्ठभूमि से हम अनुभव करेंगे की हमारे शास्त्रों के वचनों के नाम पर जो मान्यताएं समाज से श्रमरा वर्ग में प्रचलित है, उनमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता है।

वास्तविकता यह है कि सत्य एक अखण्ड, अनादि, अनन्त तत्व है, उसके दर्शन इस विश्व में होने वाले महापुरुषों को होते हैं, चाहे उसे अवतार तीर्थंकर, पैगम्बर कुछ भी कहा जावे। जो महापुरुष जिस देश में उत्पन्न होता है, उस देश की परिस्थिति, इतिहास, आदि सबका प्रभाव उसके मन-मस्तिष्क पर होता है। परिणामस्वरूप उसके उपदेश, उसके विचार भी उस स्थिति से प्रभावित होते हैं। इस कारण जिस महापुरुष के वचनों, उपदेश की व्याख्या उसका तात्पर्य समझना हो तो उस देश की स्थिति, इतिहास को भी ध्यान में रखना होगा। इसी स्थिति को जैन पारिभाषिक शब्दों में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कहा जाता है, इस सब के अतिरिक्त शाश्वत सत्य भी होता है जिस पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का कोई प्रभाव नहीं होता। महापुरुषों के उपदेशों व उनकी व्याख्या पर काल के कारण विकृति भी आ जाती है। जिस भावना से महापुरुषों ने उक्त उपदेश दिया था, वह भावना काल यापन के साथ समाप्त हो जाती है। या उसमें विकृति आ जाती है, इसी कारण श्रमण संस्कृति में शास्त्र वचन के स्थान पर उसके essence का अधिक महत्व है, तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि—

अत्थं भासई अरहा, सुत्तं गुंत्थति गणहरा निऊणा ॥

सहस्राब्दि पूर्व महापुरुषों के कहे हुए वचनों का जो तात्पर्य विकृति के कारण हमारी पुरानी या वर्तमान पीढ़ी समझ रही है। यदि हम उस विकृति को दूर न करें, या युगानुकूल व्याख्या न करे या उस उद्देश्य के हार्द को ध्यान में न रखकर केवल शब्दों का मोह रखे तो हम उस महापुरुष के साथ न्याय न कर सकेंगे, यदि कोई मकान ६ मास तक बन्द रखा जावे तो उसमें गर्द, गुबार ही इकट्ठा हो जावेगा, इसलिये यह महापुरुषों की इस धरोहर पर वैचारिक मन्थन सदैव होते रहना चाहिए।

भारतवर्ष में आज जो साहित्य उपलब्ध है, उस में प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद है, यह तथ्य भी सर्वविदित है कि ब्राह्मण संस्कृति के अनन्य पोषक वैदिक साहित्य है। वेद-कालीन साहित्य अथवा ब्राह्मण संस्कृति में यज्ञ याग, कर्मकांड तथा जन्मना वर्ण का प्राबल्य रहा है, यज्ञ में पशुओं को होम दिया जाना एक साधारण घटना थी, इसके लिये यज्ञ कर्त्ता राजा द्वारा देश में कृषि योग्य पशुओं तक को पकड़ लिया जाता तथा इस प्रकार कृषक वर्ग त्राहि-त्राहि कर रहा था। जन्मना वर्ण के नाम पर ब्राह्मण जाति का वर्चस्व शिखर पर था। ब्राह्मण उस काल में एक Prenal edged caste थी। इस स्थिति में वैचारिक क्रान्ति महर्षि दयानन्द ने की जो आज की पीढ़ी के अधिक निकट थे। उन्होंने तत्कालीन ब्राह्मण जाति तथा रूढिग्रस्त समाज का घोर विरोध सहन करके भी यज्ञ में अज की व्याख्या "अनाज परक" की तथा इस प्रकार अहिंसा की बात को पुष्ट किया, इसी प्रकार जन्मना जाति के आधार पर कर्मणा जाति के विचार को महत्व दिया, हालांकि इसके पूर्व भी उपनिषद् काल में भी इस प्रकार की वैचारिक क्रान्ति की गई। स्वयं महाभारत तथा गीता जिसे उपनिषदों का सार कहा जाता है, में भी इस प्रकार के विचार पल्लवित हुए हैं, किन्तु जिस तीव्रता के साथ महर्षि ने अपने विचार देश के सम्मुख रखे, तथा उन विचारों को प्रचार प्रसार तथा तदनुकूल आचरण के लिए समाज की स्थापना की उसके कारण महर्षि एक प्रकार से सक्रिय वैचारिक क्रान्ति के जन्म दाता सिद्ध हुए।

ब्राह्मण संस्कृति के अभिन्न कर्मकांड, यज्ञ, याग का महाभारत तथा श्री भगवद्-गीता में आत्मलक्षी अर्थ करके अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त किया गया, यही नहीं अपितु जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर तथा उसके पूर्ववर्ती २३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ ने भी यजन याग का आत्मलक्षी अर्थ करके जहां अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त किया, वहीं वैचारिक क्रान्ति का भी सूत्रपात किया। यह सब भलीभांति जानते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ के शासन काल में चातुर्याम धर्म था, जिसका तात्पर्य यह है कि चतुर्थ महाव्रत का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था, सम्भवतः स्त्री भी एक प्रकार से पुरुष की सम्पत्ति मान ली गई थी, या समाज में इस प्रकार की मान्यता थी, कि स्त्री एक सम्पत्ति है और इस प्रकार चतुर्थ व्रत का समावेश पंचम महाव्रत अपरिग्रह व्रत में कर लिया जाता था। आज की इस २० वीं शताब्दी के युग में चाहे यह विचार प्रतिगामी दकियानूसी लगे, किन्तु यह एक तथ्य था भगवान महावीर ने स्त्री के स्वाभिमान की रक्षा की और इस अमानुषिक विचार को तिलाञ्जली देकर उसके पृथक, स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार किया, तथा पंच महाव्रत का विधान किया, भगवान महावीर ने अपने संघ में स्त्री को समान दर्जा देकर महिला समाज के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित किया है, वह उनकी वैचारिक क्रान्ति का अपूर्व उदाहरण है। तत्कालीन सामाजिक मान्यता, तत्कालीन धर्मप्रचारक महात्मा गौतम बुद्ध का स्त्री जाति के प्रति आशंका का भाव इन सब विपरीत स्थिति के बाद भी भगवान महावीर का यह कदम साहस पूर्ण था, तात्पर्य यह कि वैचारिक क्रान्ति की प्रक्रिया शताब्दियों से हमारे इस देश में चल रही है।

इस वैज्ञानिक तर्क प्रधानयुग में कवि जी महाराज उन सभी विचारक लोगों की आशा के केन्द्र है, जो वैचारिक क्रान्ति के हामी है, और जो इस दिशा में कोई छानबीन के पश्चात् अपना मत निर्धारण करना चाहते हैं। आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित अन्धश्रद्धा, अन्ध विश्वास तथा तज्जनित अविचार पूर्ण मान्यताओं पर विचारक, शास्त्रज्ञ विद्ववर्ग पुर्नविचार करे तथा समाज को मार्ग दर्शन दे, ताकि समाज में व्याप्त वैचारिक जड़ता, अनुदार संकुचित वृत्ति का अंत हो सके और सारा देश निम्न विचारों का हामी हो सके।

विश्व समन्वय, अनेकांतपथ, सर्वोदय का प्रतिपल गान।
मैत्री, करुणा सब जीवों पर, विश्व धर्म जग ज्योति महान्॥ ●

सन्त की पद्धति

मैं दिल्ली में एक बार क्रिशमिस के समय गांधी जी से मिला। वे बहुत व्यस्त थे, बहुत थोड़े समय के लिए ही हमारी वार्ता का कार्यक्रम था। पर, जब बातचीत चली तो लगभग दो घंटे तक हम बैठे रहे, वार्ता की गहराई में उतरते रहे, फलतः समय की गति का न उन्हें पता रहा, न मुझे ही। अपनी कार्यपद्धति के प्रसंग में उन्होंने कहा—"मैं जो कर रहा हूँ, वह आप ही लोगों का काम है। मैं सबसे प्रेम करता हूँ, अपने विरोधी के प्रति मुझे घृणा नहीं, वस्तुतः मेरा कोई विरोधी है ही नहीं। एक दूसरे के मन को न समझने का ही यह सब द्वन्द है। मैं बाहर में नहीं, अंदर में देखता हूँ। अतः जो मेरे लिए कांटे बिछाता है, उसके लिए भी मेरा मन फूल बिछाता है। यह आप सन्तों की ही पद्धति है न? और बस यह आपकी पद्धति ही मेरी पद्धति है—और खिलखिलाकर अंत में कहा—क्यों ठीक हैं न? और इस तरह मैं आपका ही काम कर रहा हूँ?"

भारतीय संत परम्परा का आदर्श यही रहा है कि—संत किसी को विरोधी और दुश्मन मानता नहीं, यदि कोई इनसे विरोध और शत्रुता रखता भी है तो वे उसके लिए भी प्रेम एवं स्नेह की वर्षा करते हैं। कांटा बोने वाले के लिए भी वे फूल बिछाते हैं—

जो तोकूँ कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल

बुराई करने वाले की भी भलाई करना यही साधुता का लक्षण है।

संत के हृदय में संगम जैसे दुष्टों के प्रति भी दया, करुणा और प्रेम छलकता रहा है। विरोधी को विनोद पूर्वक विजय करना—यह संतों की पद्धति रही है। गांधी जी ने इसी संत पद्धति को शासन पद्धति के साथ भी जोड़ा। यति और भूपति के अन्तर को मिटाकर उन्होंने जीवन में यह दिखाया कि वस्तुतः यति ही भूपति बन सकता है। यह संत पद्धति ही मानव समाज की जीवन पद्धति बन सकती है।

—अमर डायरी

★ ● ★

क्या भारतीय धर्मग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा होनी चाहिए ?

० डॉ० चन्दनलाल पाराशर 'पीयूष'
एम० ए० पी-एच०, डी०
व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

**धर्मार्थ काममोक्षेषु, यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥**

मानव जीवन का चरमोद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-पदार्थ चतुष्टयी की प्राप्ति है। 'सत्यं वद'—'धर्मं चर' का सृष्टि के उषःकाल से महामनीषी महापुरुष उदात्त उद्घोष करते आ रहे हैं। धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा पारमार्थिक समुन्नति का स्रोत प्राप्त करने का प्रयत्न मानव का प्रारम्भ से चला आ रहा है। प्रारम्भतः लिखित ग्रन्थों के अभाव में भी वह उन कथित विचारों से प्रेरणा प्राप्त करता रहा है। उसकी सहजा प्रकृति ने इनकी ओर उसे सदैव आकृष्ट किया है। यही कारण है कि लेखन-कला के युग में आते-आते इन धार्मिक ग्रन्थों ने उसे सदैव प्रेरणा प्रदान की है। उसके जीवन की प्रक्रिया के विधान में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज भी हमारी मान्यताएं अधिकाधिक धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर ही चल रही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज के भौतिकता प्रधान युग में भी अधिकांशतः रीति-नीति निर्धारण के आधारस्तम्भ धार्मिक ग्रन्थ हैं। जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इन्हीं के विधि निषेधों को हम चुपचाप मूकवत् स्वीकार कर लेते हैं। विश्व में विशेष कर भारत में धार्मिक सम्प्रदायवाद का आधार भी धार्मिक ग्रन्थ ही है। देशकाल वातावरण और परिस्थिति के अनुसार मान्यताओं में परिवर्तन, परिवर्धन, तथा संशोधन भी होते रहे हैं। युग की पुकार का प्रभाव भी इन धार्मिक ग्रन्थों पर पड़ता रहा है। इनमें परम्परागत रूढ़ियों में भी आवश्यक सुधार सम्भव हुए हैं। इस प्रकार सार्वभौम समाज के निर्माण में धार्मिक ग्रन्थों की भूमिका सर्वथा महनीय रही है।

परिवर्तन प्रकृति का अपरिहार्य नियम है। जड़-चेतन, चर-अचर, सभी में परिवर्तन पाये जाते हैं। देशकाल, वातावरण के अनुसार परिवर्तन प्रधान प्रकृति मानव को अपनी मान्यताओं में पुनर्विचार के लिए विवश कर देती है। किसी युग में लिखित धार्मिक विचार वीथि उस युग के सर्वथा अनुकूल हो सकती है, किन्तु वह सर्वथा सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक नहीं हो सकती है। जीवन के कुछ सत्य अवश्य ऐसे हैं जो त्रैकालिक सत्य हैं, किन्तु कुछ विचार चर्चाएं ऐसी भी होती है जो तत्कालीन देश-काल की व्यवस्था को ध्यान में रखकर प्रयुक्त होती हैं। उनके ऊपर आने वाले युग की प्रत्यक्ष अनुभूति के आधार पर विचार करने की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है। यदि इस प्रत्यक्ष सत्य को हम आंख से ओझल करने लगें तो हमारी धार्मिकता उपहासमात्र रह जायगी। अतः धार्मिक ग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा होना अत्यन्त आवश्यक है।

यहाँ यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है—कि ग्रन्थ और शास्त्र दोनों का एक ही अर्थ नहीं है। यद्यपि कोशकारों ने इन दोनों को पर्यायवाची कहा है, किन्तु सभी पर्यायवाची एकार्थक नहीं होते, उनमें भिन्नता अवश्य होती है। ग्रन्थ का शाब्दिक अर्थ गूँथना है। विचारों का जोड़ना-गूँथना ही ग्रन्थ है। ग्रन्थ ही ग्रन्थि-गांठ है जिसमें विचार जोड़े जाते हैं। अतः देश-काल के अनुसार जोड़े गये इन विचारों वाले ग्रन्थों की समयानुसार वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक हो जाती है। यह आज की मान्यता ही नहीं, अपितु यह प्राचीन काल से समीक्षा के रूप में परिवर्तित होती रही है। इस नये युग की नयी वैचारिक क्रान्ति में वह क्यों नहीं होनी चाहिए ? ग्रन्थों में सर्वांश सत्य नहीं होता। इसके विपरीत शास्त्र वह है जो साक्षात् सत्य का दर्शन कराता है। शासन का अर्थ शास्त्र है। उसमें सत्यं शिवं सुन्दरं की अनुभूति होती है। शास्त्र का सम्बन्ध हमारे अन्तस् से है। यदि यह अर्थावगति हमें विदित हो जाय तो धर्म और विज्ञान में टकराव की भावना स्वतः समाप्त हो जाय।

हमारे जीवन के दो पक्ष हैं—अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग। हमारे अन्तरङ्ग जीवन का विकास अध्यात्म द्वारा सम्पन्न होता है और बाह्य जीवन का विकास विज्ञान द्वारा ही सम्भव है। जीवन के उभय पक्ष का उत्कर्ष वस्तुतः अध्यात्म और विज्ञान से पूर्णता को प्राप्त होता है। धार्मिक ग्रन्थ हमारी आध्यात्मिकता के आधारस्तम्भ अवश्य हैं, किन्तु उनमें देशकाल की परिवर्तित परिस्थिति के प्रक्षिप्तांशों की वैज्ञानिक समीक्षा से ही वास्तविकता का पता चलता है। कुछ विचार चर्चाएँ धार्मिक ग्रन्थों में किसी समय विरोध के लिए उपयोगी सिद्ध हुई भी हैं, लेकिन उनकी त्रैकालिक सत्य-सम्भूति सर्वथा सिद्ध नहीं हो सकती। उनकी वैज्ञानिक समीक्षा से ही जीवन के शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया जा सकता है। आज के इस तर्क प्रधान युग के लिए तो धार्मिक ग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर हमें यह सत्य सर्वथा स्वीकार करना होगा। केवल "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" से काम नहीं चलेगा। यह प्राचीन है—इसलिए अच्छा है और यह नवीन है—इसलिए अच्छा नहीं है, इससे सिद्धि सम्भव नहीं है। वस्तु स्थिति की विवेचना से ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है—मानव के चरम साध्य पदार्थ चतुष्टय हैं जिन्हें हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(१) अध्यात्म (२) विज्ञान। अध्यात्म में धर्म और मोक्ष का स्थान है, विज्ञान में अर्थ और काम का। दोनों वर्ग एक दूसरे के पूरक हैं। जीवन के विकास में दोनों की महती आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिकता को आध्यात्मिकता से कैसे अलग रखा जा सकता है। धार्मिक प्रभाव की वास्तविक स्थिरता वैज्ञानिक समीक्षा से प्राप्त होती है। आप सभी जानते हैं कि योग के लिए प्रयोग की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक जीवन का अन्तरङ्ग-पक्ष योग है। तथा भौतिक जीवन का वहिरङ्ग-पक्ष प्रयोग है। योग की संसिद्धि में प्रयोग ही निर्णायक स्थिति स्थापित करता है। इसी आधार पर यह सही है कि धार्मिक ग्रन्थों के इस योग में वैज्ञानिक समीक्षा का प्रयोग पूर्णत: कल्याणकारी है।

आज विज्ञान ने हमारे धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित अनेकानेक बहुचर्चित चर्चाओं पर पुनर्विचार के लिए हमें विवश कर दिया है। जिसमें भूगोल-खगोल सम्बन्धी भी विज्ञप्तियां विशेष हैं। हमें इन ग्रन्थों के पुनर्वीक्षण पर अधिक ध्यान देना पड़ेगा। समय की समागत इस चुनौती का हम वहिष्कार नहीं कर सकते। हमें तिरस्कृति की भावना छोड़कर स्वीकृति में रहना होगा। अन्यथा हमारे धार्मिक ग्रन्थों की सत्पक्षता पर भी पक्षपात होने लगेगा, अत: उनकी उपादेयता को सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक समीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

विज्ञान के इस नव प्रकाश में हमें 'हाँ' या 'ना' में स्पष्ट निर्णय लेना आवश्यक है। पौराणिक प्रतिवद्धता तथा आगमिक शाब्दिक व्यामोहता दूर करनी पड़ेगी। हमें वैज्ञानिक कसौटी पर धार्मिक ग्रन्थों की सत्पक्षता तथा असत्पक्षता को कसना होगा। यह धार्मिक स्थिरता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए जिस चिन्तन, मनन एवं अनुशीलन की आवश्यकता है वह तो हमारे अन्तर्जगत् से जागृत होता है। सत्य के प्रति आग्रह रहित जितनी उन्मुक्त दृष्टि होगी, चिन्तन जितना आत्ममुखीन होगा, उतना ही अधिक आध्यात्मिक विकास होगा। एतदर्थ भी वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक है। धार्मिक ग्रन्थों के प्रति हमारे मन में एक प्रकार का आग्रह है जिसे हठाग्रह कह सकते हैं, यह अधिक उत्पन्न हो गया है जिसके लिए वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक है। पूर्वाग्रहों से मुक्त मनुष्य का मानस सही निर्णय में समर्थ हो सकता है। समय की पुकार है कि हम नई मान्यताओं को स्वीकार करें। आज जीवन का कण-कण विज्ञान से प्रभावित हो रहा है। अत: ऐसे समय में धार्मिक ग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा करके ही हम अपनी धार्मिक सत्यता को सिद्ध कर सकते हैं।

ऊपर के विवेचन में शास्त्र और ग्रन्थ की चर्चा की जा चुकी है। यहां इतना कहना ही आवश्यक है—हम यह निर्णय करें कि शास्त्र अपनी परिभाषा के अनुकूल है या नहीं। वस्तुतः शास्त्र वह है जो तप, क्षमा एवं अहिंसा की प्रेरणा जगाकर आत्मदृष्टि को [illegible] करने वाला हो। इस परिभाषा के प्रतिकूल यदि कुछ पाया जाता है तो वे शास्त्र कैसे कहे जा सकते हैं? इसकी वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक है। वे शास्त्र न होकर ग्रन्थ ही हैं।

[illegible] १९७८

धार्मिक ग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा आज इसलिए भी आवश्यक प्रतीत होती है, क्योंकि धार्मिक ग्रन्थों के स्वरूप में प्रायः परिवर्तन होते रहे हैं। उदाहरण के लिए जो लघुकाय ग्रन्थ पहले 'जय' नाम से विख्यात था यथा "ततो जयमुदीरयेत्"। कुछ समय पश्चात् वह परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप में भारत नाम से प्रचलित हुआ। तदनन्तर पुनः परिवर्तित और परिवर्धित हुआ। आज वह वृहद् विशालकाय ग्रन्थ के रूप में महाभारत नाम से अभिहित किया जाता है।

अतः पहला आधार प्रक्षिप्तांशों की समीक्षा करना आवश्यक है। द्वितीय आधार यह भी सम्भव है कि धार्मिक ग्रन्थों में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थिति के अनुसार कोई वार्ता सामाजिक मान्यता के अनुसार उपयुक्त भले ही रही हो, लेकिन आज की बदली हुई परिस्थिति में प्रतिकूल ही प्रतीत होती है, अतः उसकी वैज्ञानिक समीक्षा अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसके हम अपने शाश्वत सिद्धान्तों की सत्ता को सुरक्षित नहीं रख सकते हैं। समय की उचित मांग की अवहेलना नहीं की जा सकती। केवल जड़मस्तिष्क से काम नहीं चलेगा हमारी श्रद्धा तर्क शून्य नहीं होनी चाहिए। सम्प्रति समागत ज्वलन्त समस्याओं के समाधान के लिए इन ग्रन्थों के समीक्षात्मक अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है।

"तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः" वाली वार्ता से काम सिद्ध नहीं होगा। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अध्यात्म और विज्ञान में प्रतिद्वन्द्विता नहीं है। जीवन की दो धाराएं हैं। दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। फिर वैज्ञानिक समीक्षा से हमें क्यों भयभीत होना चाहिए।

धर्म शास्त्र वस्तुतः वही हो सकता है जो आत्मा से परमात्मा होने का मार्ग दर्शन करता है। जीवन में शुचिता, संयमता तथा श्रेष्ठता का संचार करता है। जो हमारे जीवन की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को प्रतिबोधित करने वाला हो। जिससे जीवन की वहिर्मुखी प्रवृत्ति का प्रवेश द्वार प्रतिरुद्ध हो जाता है आत्मस्वरूप से परिचय कराता है। अज्ञानान्धकार से प्रकाश में खड़ा कराता है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' 'असतो मा सद्गमय मृत्योर्माअमृतं गमय' की ओर ले जाता है। जीवन के सत्य स्वरूप को प्राप्त कराने वाला शास्त्र ही धर्म शास्त्र है। इसके विपरीताचरण की ओर ले जाने वाले को क्या हम धर्म शास्त्र कहेंगे ? कदापि नहीं। लोगों ने भ्रमवश अथवा श्रद्धाधिक्य के कारण उन्हें धर्म शास्त्र की संज्ञा देदी हो, लेकिन वे धर्म शास्त्र नहीं हैं। उन्हें हम यत्रतत्र की विखरी हुई विचार चर्चाओं की सङ्कलना मात्र ग्रन्थ कह सकते हैं। इसीलिए आज ऐसे सङ्कलना मात्र ग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा आवश्यक है। अन्धकार से प्रकाश में आना अनिवार्य हो गया है। घिसी-पिटी आख्याओं से मानव के अन्तस् के अन्धकार को दूर नहीं किया जा सकता है। प्रारम्भिक भूलों को भूल न मानने वाला समाज कब तक अपने अस्तित्व को प्राणवान रख सकता है। जीवन की विगत भूलों से सबक लेना ही जीवन का विकास है।

हमारे इस उपर्युक्त समग्र विवेचन का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि हम धार्मिक ग्रन्थों की अवहेलना करने जा रहे हैं। मुझे अपने धार्मिक ग्रन्थों में अटूट श्रद्धा है। जीवन के सत्य पक्ष को उद्घाटित करने वाले विवेचनों में पूर्ण आस्था है। ऐसा भी नहीं है कि उनमें सब कुछ कपोल कल्पित ही है। किन्तु उनकी अक्षरश: बिना तर्क की कसौटी पर कसे हुए वार्ता को अन्धविश्वास के साथ स्वीकार करने में मेरी असमर्थता है। हम विवेक को जागृत रखकर जीवन की सत्यता को सिद्ध कर सकते हैं। आप्त वाक्य की प्रामाणिकता में किसी को क्यों सन्देह हो गया। कहा गया है "आप्तस्तु यथार्थवक्ता आप्त वाक्यं प्रमाणम्।" लेकिन इन धर्म ग्रन्थों में सभी आप्त वाक्य तो नहीं हैं। यदि आप आप्त वाक्य ही मानते हैं तो वे वैज्ञानिक कसौटी पर सर्वथा खरे उतरेंगे ही, इसलिए उनकी यदि इस रूप में समीक्षा की जाती है तो हमारी सत्यता तथा प्राभाविकता में और भी चार-चाँद लग जायेंगे। एक-एक मिलकर ग्यारह हो जायेंगे। इस समीक्षा से तो अग्नि-परीक्षा में तपकर हमारा कुन्दन और भी अधिक दीप्ति को प्राप्त करेगा। अब समीक्षा तो होनी ही चाहिए। इससे एक लाभ और यह होगा कि सत् और असत् का भेद भी सामने आ जायगा। असली-नकली की पहचान भी हो जायगी। अत: मेरा विचार है कि आज चोटी के सन्त विद्वान पण्डित मिलकर एक बार पुन: इन धार्मिक ग्रन्थों की वैज्ञानिक समीक्षा कर, आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन करें जिससे हमारी मान्यताएँ अत्यधिक दृढ़ता के साथ आने वाली चुनौतियों का सामना कर सकें। विश्व का कल्याण इसी में निहित है ऐसी हमारी ध्रुव धारणा है। अन्त में केवल निवेदन है—

धार्मिक ग्रन्थ वही प्रामाणिक,
जो प्रत्यक्ष सत्य से द्योतित।
जीवन के अन्तस् को पल-पल,
करे ज्योति से जगमग ज्योतित॥

●●

यदि हम विरोध पर प्रेम द्वारा विजय नहीं पा सकते तो एक ही उपाय बचता है, और वह है सहन करना। हमें या तो सहन करना होगा या पलायन करना होगा।

—राधाकृष्णन्

●●

सेवा परायण संस्थाएं

श्रद्धेय कवि श्री जी ने एक वार अपने प्रवचन में कहा था—"जैन धर्म ने अहिंसा के साथ सेवा एवं करुणा का सन्देश दिया है। विना सेवा एवं करुणा के अहिंसा की पूर्णता संभव नहीं है। रुग्ण, पीड़ित एवं असहाय की सेवा को अहिंसा के शिखर पर चढ़ाते हुए कहा गया है—"**जे गिलाणं पडियरई से धन्ने**"—जो रुग्ण एवं पीड़ित की सेवा करता है वह धन्य-धन्य है। वह तीर्थंकर भगवान की सेवा से भी अधिक महत्वपूर्ण है।"

कवि श्री जी के इन मानव सेवावादी उदात्त विचारों की साकार परिणति देखने को मिलती है जयपुर के दो सेवा संस्थानों में, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न है।

श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी, जयपुर

जयपुर के जैन समाज की ओर से सन् १९६१ से संचालित की जा रही है।

सोसाइटी का नवनिर्मित भवन

सोसाइटी की स्थापना में मुख्य स्तंभ थे उदारचेता स्व० श्री स्वरूपचन्द जी चोरडिया। वे असहाय, पीड़ित एवं रुग्ण मानव की सेवा में जीवन भर तन-मन-धन से जुटे रहे। उनके स्वप्नों को साकार करने में अव जयपुर के उदारचेता सेवानिष्ठ अनेक समाज सेवी संलग्न हैं। जिनमें चोरडिया परिवार के अतिरिक्त, श्रीमान सागरमल जी डागा (सोसाइटी के अध्यक्ष) श्री नवरतनमलजी रांका (मंत्री) श्री सिरहमलजी वम्व, श्री उमरावमल जी ढड्ढा एवं श्री पारसमल जी डागा आदि अनेक सज्जन शुद्ध सेवा भाव से कार्य कर रहे हैं।

सोसाइटी में प्राथमिक चिकित्सा से लेकर उच्चस्तरीय निदान परीक्षण एवं चिकित्सा, प्रसूति गृह, तथा शल्यचिकित्सा तक की सस्ती एवं सुन्दर व्यवस्था है। कुछ विशेष स्थितियों में रोगी की निःशुल्क चिकित्सा भी की जाती है। सन् १९६८ में लगभग एक लाख इकतालीस हजार रोगियों ने इससे लाभ प्राप्त किया। १९६९ में यह संख्या और भी बढ़ गई है। निकट भविष्य में सोसाइटी अपने नवनिर्मित विशाल भवन 'अमर भवन' (चौड़ा रास्ता) में स्थानांतरित हो जायेगी। जहाँ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के नवीनतम उपकरणों की व्यवस्था की जा रही है। मानव-सेवा में संलग्न सोसाइटी का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है। समाज के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है।

० श्री संतोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट : जयपुर

इस ट्रस्ट की स्थापना स्थानकवासी जैन समाज के सुप्रसिद्ध नेता स्व. श्री दुर्लभ जी भाई जौहरी के यशस्वी सुपुत्रों द्वारा अपनी माता श्री की नाम-स्मृति के साथ की गई है। ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं श्री खेलशंकर भाई दुर्लभजी।

समाज के एक ही सेवानिष्ठ समृद्ध परिवार ने मानव सेवा के लिए अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग जिस रूप में किया, व कर रहे हैं— वह समृद्धिशाली जैन परिवारों के लिए अनुकरणीय है। चिकित्सा, शिक्षा एवं अकाल पीड़ित सहायता—आदि अनेक स्रोतों में ट्रस्ट अपनी सेवा गति को बढ़ा रहा है। चिकित्सा क्षेत्र में अनेक प्रकार के बहुमूल्य वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा रोगियों की शीघ्र तथा सुव्यवस्थित सेवा जिस प्रकार की जाती है, वह सरकारी चिकित्सा केन्द्रों के लिए भी एक आदर्श है। वस्तुतः जैन समाज का मानवतावादी प्रबुद्ध मानस इस प्रकार की सेवा परायण वृत्तियों से न केवल जैन धर्म को ही, अपितु मानव जाति को भी गौरवान्वित कर रहा है। ●

श्री सुंदर सत्संग भवन

० हाथरस निवासी श्री महेन्द्रकुमार जैन एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी जैन के समाज सेवा के उदात्त ध्येय एवं आदर्श त्याग का सजीव प्रतीक है 'श्री सुन्दर सत्संग भवन' हाथरस। आदर्श दम्पती ने कुछ वर्ष पूर्व "समाज सेवा एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए एक सुन्दर भवन का निर्माण करने का संकल्प किया था। तदनुसार आज [illegible] की अनुकूलता होते ही उन्होंने अपना निजी मकान नहीं बनाकर सर्वप्रथम समाज सेवा के लिए यह भवन प्रस्तुत किया है। इस उदात्त एवं [illegible] आदर्श [illegible] भावना ने कवि श्री जी के मन को गद्गद्

[illegible]

कर दिया और अस्वस्थ होते हुए भी शीत लहरों का सामना करके कवि श्री जी भवन के उद्घाटन प्रसंग पर हाथरस पधारे।

श्रद्धेय कवि श्री जी ने 'सुन्दर सत्संग भवन' के उद्घाटन प्रसंग पर अपना प्रेरक संदेश दिया—"अपनी सुख सुविधा एवं आराम के लिए सभी कोई खर्च करते हैं, किन्तु समाज सेवा के सत्संकल्प से प्रेरित होकर जो अपने धन का सदुपयोग करता है वह एक आदर्श है, एक प्रेरणा है।....सत्संग भवन की प्राण प्रतिष्ठा रूप दैनिक प्रार्थना, स्वाध्याय एवं सामायिक आदि की प्रेरणा के साथ कवि श्री जी ने कहा—"पुस्तकालय से ऐसे भवन की उपयोगिता बढ़ती है, और हर धर्म की सुन्दर पुस्तकों से न केवल पुस्तकालय की, किन्तु जीवन की भी शोभा निखरती है। प्रत्येक धर्म मनुष्य को कुछ न कुछ नैतिक एवं धार्मिक खुराक देता है, सत्प्रेरणा करता है।"

श्री महावीर जैन पुस्तकालय का उद्घाटन करने से पूर्व सेठ अचलसिंहजी आदि कवि श्री जी से मंगल पाठ सुन रहे हैं।

कवि श्री जी के प्रवचन से प्रेरणा ग्रहण कर स्थानीय श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ के उत्साही कार्यकर्ताओं ने उसी क्षण पुस्तकालय के उद्घाटन की भी घोषणा करदी। और प्रार्थना हाल में सेठ अचलसिंह जी एम. पी. के कर कमलों द्वारा पुस्तकालय का उद्घाटन सम्पन्न हुआ। पुस्तकालय के मंत्री श्री चम्पालाल जी जैन का अत्यधिक उत्साह एवं अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग पुस्तकालय को एक आदर्श रूप प्रदान करेगा—ऐसा विश्वास करना चाहिए! ●

○ असंगिहीय परिजणस्स संगिण्हणयाए..........
गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए
अब्भुट्ठेयव्वं भवइ।

—भ० महावीर (स्थानांग सूत्र ८)

जो असहाय एवं अनाश्रित हैं उन्हें सहयोग एवं आश्रय देने में, तथा जो रोगी हैं उनकी परिचर्या करने में सदा तत्पर रहना चाहिए।

अभिनन्दन
एवं
शुभकामनाएँ
संस्थान एवं
– व्यापारिक प्रतिष्ठान

समता, शुचिता की साकार मूर्ति

श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती पर

हार्दिक शुभ कामनाएँ

पूनमचन्द बडेर परिवार

बडेर भवन

नथमलजी का चौक, जौहरी बाजार

जयपुर
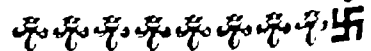
वंदना : शुभकामना : अभिनन्दन :

श्रद्धास्पद कवि श्री अमरचन्दजी महाराज के दीक्षा स्वर्णजयंती समारोह की सूचना पाकर हजारों श्रद्धालु सज्जनों में अपूर्व उत्साह उमड़ पड़ा है। इस पुनीत अवसर पर प्रकाशित होने वाले श्री अमर भारती के विचारक्रांति विशेषांक में प्रकाशनार्थ सैकड़ों लघु-लेख, कविताएं व श्रद्धापूर्ण भावाञ्जलियां प्राप्त हुई हैं, जिनमें हृदय की असीम श्रद्धा एवं सद्भावना हिलोरें ले रही हैं। यदि सभी शुभकामनाओं को सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित किया जाय तो संभव है विशेषांक हजार पृष्ठ का एक वृहत् अभिनन्दनग्रन्थ का रूप ग्रहण कर लेगा। स्थानाभाव व समयाभाव के कारण हमें विवश हो उनमें से बहुत सी सामग्री छोड़नी पड़ी है, जिसके लिए हम शुभकामना एवं अभिनन्दन प्रेषक समस्त सज्जनों से सविनय क्षमा चाहते हैं। व्यक्तिगत रूप से उनकी भावना कवि श्री जी की सेवा में पहुँचा दी जाएगी!

—सम्पादक

० मेरे पूज्य गुरुवर्य श्री ताराचन्द जी म. का एवं कवि श्री जी का चातुर्मास जयपुर में साथ-साथ हुआ था। फिर देहली-आगरा में भी कवि श्री जी की सेवा का सौभाग्य मिला। मैंने कविश्री जी के समान स्पष्ट एवं निर्भीक व्यक्ति बहुत कम देखे हैं। आध्यात्मिकता के साथ सामाजिकता, श्रद्धा के साथ बुद्धिवादिता एवं क्रांति के साथ शान्तिप्रियता का पाठ कविश्री जी ने हमें सिखाया है। उनकी दीक्षा स्वर्ण जयंती का आलोक युग-युग तक जगमगाता रहे—इसी शुभाशा के साथ वन्दना!

—हीरा मुनि 'हिमकर' बम्बई

[illegible] साधना एवं [illegible] अखण्ड [illegible] के सुखद संगम में कवि श्री ने हजारों लाखों भावुक भव्यों को आत्मदर्शन का अवसर प्रदान किया है। आज हम आपके पाद-पद्मों में श्रद्धावनत होकर आपके स्वस्थ-समृद्ध-चिरायु जीवन की मंगल कामना करते हैं।

—मुनि कन्हैयालाल "कमल"

० कविवर श्री अमरचन्द जी महाराज संपूर्ण जैन समाज के लिए एक गौरवमय विभूति है। कवि श्री में विद्या एवं त्याग, ज्ञान एवं चारित्र का अद्भुत संमिश्रण है। भारतीय साहित्य एवं संस्कृति को उन्होंने जो अपूर्व निधि प्रदान की है, उससे समग्र जैन समाज का मस्तक ऊंचा हुआ है। मद्रास श्री संघ हृदय से कामना करता है कि कवि श्री जी अपने ज्ञान एवं

तपोबल से चिरकाल तक मानवता का पथ दर्शन करते रहें।

—मोहनमल चोरड़िया
अध्यक्ष
श्री श्वे० स्थानकवासी जैन श्री संघ, मद्रास

० वि. संवत् २०१० में श्रद्धेय कवि श्री जी का जोधपुर (सिंहपोल) में संयुक्त चातुर्मास हुआ। कवि श्री जी का प्रवचन रविवार को होता, जिसे श्रवण करने अपार मानव-मेदिनी उमड़ पड़ती। अनेक जैन-जैनेतर विद्वान व जिज्ञासु जन कवि श्री जी से प्रश्नोत्तर करते रहते, पर कवि श्री जी कभी चिढ़ते नहीं, प्रेम पूर्वक उनका समाधान करते। मैंने अनेक विद्वानों व नवयुवकों को यह कहते सुना कि—यह कैसा संत है, इतना विद्वान फिर भी इतना विनम्र! मधुर! कभी चिढ़ता भी नहीं।"

वस्तुतः कवि श्री म. एक महान संत है, जो अपनी निन्दा से घबराते नहीं, और प्रशंसा से कभी फूलते नहीं! उनके दीघायु की कामना के साथ हार्दिक अभिनन्दन!

—माधोमल लोढा
मंत्री
श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ, जोधपुर

० श्रद्धेय श्री अमर मुनि जी म० इस कलिकाल के एक महान सत्पुरुष हैं। उनके जीवन में अदभुत निष्ठा है। उन जैसा ज्ञानवल एवं चरित्रवल वहुत कम संतों में मिलता है। उनके चिंतन-मनन का दीपक समाज को निरंतर कर्तव्यमार्ग दिखाता रहे, इसी भावना के साथ कोटि-कोटि शुभ कामना....।

—दुर्लभ जी के. खेताणी
घाटकोपर, वम्बई

० श्रद्धेय कवि श्री जी महाराज ने अपनी सारी जिन्दगी समाज सेवा एवं संगठन तथा एकता के लिए समर्पित करदी है। उन्होंने धर्म में आई जड़ता को मिटा कर एक क्रियाशीलता पैदा की है। उनके प्रवचन प्रेरणाप्रद हैं। समाज व देश को ऐसे संतों पर गर्व है। मेरी तथा पंजाव भ्रातृ सभा की हार्दिक शुभ कामनाएँ!

—शादीलाल जैन जे. पी.
वम्बई

० श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज नव युग के निर्माता हैं। इतने उच्चकोटि के विद्वान होकर भी साधारण जन-समाज के प्रति उनका स्नेह एवं वात्सल्य अपूर्व है। मेरे पूज्य पिताजी स्व. श्री प्यारेलाल जी चोरडिया श्रद्धेय पृथ्वीचन्द जी म. एवं उपाध्याय श्री जी के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते थे। कवि श्री जी अपने श्रद्धालुओं को भी श्रद्धा में विवेक रखने का सदा उपदेश करते रहे हैं। वीसवीं सदी के इस महिमाशाली व्यक्तित्व को शत-शत वन्दन!

—मोती [illegible] डिया, आगरा

० परमश्र[illegible] जी जैन जगत के [illegible]। उनके ज्ञानालोक से [illegible]त हो रहे हैं। शासन दे[illegible] जीवन की प्रार्थना है।

० जैन धर्म [illegible] मुनि ने जैन [illegible] विस्तृत विवेचना [illegible]

श्री अमर भ[illegible]

साहित्यिक कृतियों में प्रस्तुत की है उससे हमारे चिन्तन को नई प्रेरणा एवं नई दिशा मिली है। आपके उदात्त एवं व्यापक विचार, राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने वाली कविताएं पढ़कर लगता है, कवि श्री जी को जैन चिन्तक व जैन संत ही नहीं, किन्तु विश्वचिन्तक एवं 'राष्ट्रसंत' कहना चाहिए।""क्रान्त द्रष्टा को शत-शत प्रणाम !

—दुलहचन्द जैन तुरेंवाला
जोधपुर

० कवि श्री जी जैन समाज के एक प्रकाशस्तंभ हैं। उनकी लेखनी में मौलिकता एवं वाणी में हृदय-स्पर्शी चमत्कार भरा है। कवि श्री जी के साहित्य का विद्वान जगत् में बहुत सम्मान हुआ है। निशीथ सूत्र एवं 'सूक्ति त्रिवेणी' जैसे उच्च-स्तरीय संपादित ग्रन्थों की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। उनके क्रांतिकारी विचारों से समाज की जड़ता और अकर्मण्यता टूटेगी, और नया चिन्तन एवं नया उत्साह जगेगा, नया प्राण संचार होगा, इस आशा के साथ [illegible] वंदना !

—रामनारायन जैन, झांसी

० कवि श्री जी स्वतन्त्र विचार चेतना के धनी हैं। उनके क्रांतिकारी विचार [illegible] नयी, [illegible] नया पर्व फूंकते हैं।

० इस युग के महान् तपस्वी संत, अमर साहित्यकार दर्शन एवं धर्म के महान् व्याख्याकार कवि श्री जी के धर्म ऋण से स्थानकवासी समाज ही क्या, समग्र जैन समाज युग-युग तक ऋणी रहेगा। हम सब एक साथ मिलकर उनके पद-चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करें, इसी मंगल कामना के साथ दीक्षा स्वर्ण जयंती अवसर पर कोटि-कोटि अभिनन्दन !

—मानकचन्द चोरड़िया
सम्पादक—भाग्य प्रकाश एवं ओसवाल
अजमेर

० मुनि श्री अमरचन्द जी महाराज वर्तमान युग के महान विचारक एवं मानवता के दिव्य संदेश वाहक हैं। श्री अमर भारती के द्वारा आप उनकी वैचारिक चेतना का उद्घोष जन-जन तक पहुँचा रहे हैं, यह देश की महान् सेवा है कवि श्री जी के चरणों में मेरी श्रद्धा के दो शब्द-सुमन अर्पित हैं।

—राधेश्याम शर्मा
'अमर जगत' साप्ताहिक, आगरा

० कवि श्री जी संत महान्
जैसे क्षिति पर दीपित-भान !
दीक्षा-स्वर्ण जयंती दिन पर
अर्पित श्रद्धा का लघु-गान।

—रामस्वरूप जैन, आगरा

० श्रद्धेय श्री अमर मुनि जी के विचारों ने नई पीढ़ी में धार्मिक श्रद्धा जागृत की है। आज की नई पीढ़ी, कवि श्री जी को सुनना चाहती है, पढ़ना चाहती है। उसे कवि श्री जी के साहित्य एवं श्री अमर भारती में नई खुराक मिलती है। जैन धर्म एवं दर्शन के उद्भट व्याख्याकार कवि श्री जी को मेरी सविनय वंदना !

—तेजमल धाकड़
रामपुरा

० आज के युग में एक ऐसे विद्वान् विचारक, समाज सुधारक एवं युगप्रवर्तक मनीषी की आवश्यकता है, जिसके आध्यात्मिक चिंतन की अखण्ड ज्योति से भारत को ही नहीं, अपितु समस्त संसार को आलोक प्राप्त हो सके। ऐसा युग प्रवर्तक व्यक्तित्व है श्रद्धेय कवि श्री अमर मुनि जी ! पावन दीक्षा दिवस पर कोटि कोटि वन्दन !

—चंचल कुमारी डागा
जयपुर

० कवि श्री जी में कुछ अद्भुत गुणों का समन्वय है। वे किसी भी धर्म की अच्छाई को अपनाने में जितने उदार हैं, उतने ही दृढ़ हैं किसी भी धर्म की गलत परम्परा एवं बुराई को मिटाने में। उनकी वाणी में इतनी स्पष्ट एवं सरलता है कि वह सीधी हृदय को छू जाती है। मैंने बहुत निकट से देखा है, उनका जीवन एक आदर्श संत का जीवन है। हृदय की असीम श्रद्धा के साथ उनके सुदीर्घ स्वस्थ जीवन की मंगल कामना।

—गुनमाला जैन
आगरा,

श्रद्धेय श्री अमर मुनि जी की भागवती दीक्षा के गौरव पूर्ण पचास वर्ष की संपन्नता पर जैन समाज को एक गौरव की अनुभूति हो रही है।

विज्ञान युग में धर्म के संस्कार लुप्त होते जा रहे हैं। कवि श्री जी ने जिस वैज्ञानिक एवं सुबोध शैली में धर्म का हार्द समझाने का प्रयत्न किया है, उससे जिज्ञासु वर्ग और खासकर युवक वर्ग को मार्ग दर्शन मिला है। उनके प्रवचन एवं लेखों में प्रौढ़ वर्ग को रस आता है, नई पीढ़ी को समाधान मिलता है। इसी कारण समाज के समस्त वर्गों की श्रद्धा कवि श्री जी के प्रति है।

अंत में कवि श्री जी के तपोमय जीवन के प्रति आदराञ्जलि प्रस्तुत करते हुए वन्दन के साथ श्रीमद्राजचन्द्र का निम्न पद्य उद्धृत करता हूं जिसे कि कवि श्री जी के जीवन में चरितार्थ पा रहा हूँ—

देहछता जेहनी दशा
वर्ते देहातीत ।
ते ज्ञानी ना चरणमां
वन्दन हो अगणीत !

—हरिलाल जैचन्द दोशी, बम्बई

●●

मरुधर केशरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी महाराज

का

सं दे श

है विदित सारे विश्व में, विख्यात गरिमा आपकी ।
पाण्डित्यता की प्रौढ़ता, जन-जन सराहें आपकी ।।
तर्क की चाँचल्यता से, मुग्ध होते हैं घनें ।
है अमर वंदित, अमर वाणी, विमलता हिय में ठने ।। १

उत्साह तेरा है अथक, साहित्य-सर्जन में सदा ।
लालित्यता से है भरी, माधुर्य सरिता भी मुदा ।।
है देश और विदेश वारे, प्रेमी तेरे दर्श के,
सद्भाग्य गिनते हैं अहा ?, नित्य चरण तेरे स्पर्श के ।। २

वादी अरु प्रतिवादियों को, युक्तियें अनमोल दे ।
नास्तिक्यता जड़ से मिटादी, ज्ञान-अमृत घोल दे ।।
नव्य-मानव के लिये, मतिमान हो, धीमान हो ।
श्री श्रमण-गण के सूत्र धारक, ज्योति-पुञ्ज महान हो ।। ३

प्रेरणा देते समुज्ज्वल, उन्नति के प्रतीक हो ।
वक्तृत्व-शक्ति देख भूले, छद्मवेषी दम्भ को ।।
ज्ञान-गिरा के लिये, मन्दाकिनी सुन्दर बहे ।
[illegible] यह तुमको मिले, [illegible] अमर-कीर्ति जग रहे ।। ४

[illegible] नयन, मुस्कान आनन चन्द हो ।
[illegible] दीक्षा [illegible], [illegible] सानन्द हो ।।
[illegible] हो, आदर्श हो, सर्वाङ्गीण विकास हो ।
[illegible] का [illegible], [illegible] हो ।। ५

स्वर्ण-जयन्ति—शुभ-कामना

—श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

अमिताभान्वित आनन मंजुल,
विकसित वदन प्रशस्त ललाट।
प्रेम पयोनिधि चक्षु, दृष्टि शुभ—
तलस्पर्शी मृदुमयी विराट॥
सुधासार सी स्वर लहरी हृद
स्पर्शी भावाढ्या रस - सिक्त।
विस्तृत हृदय, आजानु बाहू, सुगठित
देह इसके अतिरिक्त॥
सुकोमल तन से कोमलतर,
हृदय प्रेम गांभीर्य लिये।
उसमें अधिकाधिक कोमलतम
भावोर्मियां सद्वीर्य लिये।
तन से भी मन स्वस्थ अधिक,
मस्तिष्क और भी शुचिमय है।
धवल स्वदेशी परिधान
अत्यल्प एक यह परिचय है॥
इस स्वर्णिम परिचय रेखा से
जो व्यक्तित्व उभरता है।
स्नेह और श्रद्धा से उसको
जनगण "कवि जी" कहता है॥
लघुतम इन दो शब्दों में हैं
कितनी मृदुता कितना प्यार।
जिसको सुनते ही जन जीवन
होने लगता है वलिहार।
ऐसी विरल विभूति, भारत
कभी कभी ही पाता है।
जिसको पाकर जन जीवन
ज्योतिर्मय वन मुस्काता है॥

गौरव - शाली जैन तत्व के
मूर्तिमन्त प्रतीक महान् ।
ज्ञान पयोनिधि, उपाध्याय पद
भूषित अनुपम प्रतिभावान ।।
नव साहित्य सु सर्जन अविरल
चिन्तन मनन चले प्रतिपल ।
श्रमपूर्ण श्रामण्ययुक्त
जीवन प्रगतिमय अविकल ।।
स्वर्णजयन्ति श्री, कान्ति, धृति
संयम का अभिनन्दन है ।
सफल रहे हीरक वन आए,
यही 'कुमुद' अन्तर्मन है ।।

★

उवज्झाय अमर का प्रेम भरा अभिनन्दन है।

—मुक्ता सुशिष्य रजत मुनि

अजेय है तर्क सुतरकसों से,
ज्ञान से समृद्ध हैं।
जैन - वंद्य योगी जिनके
कार्य भी सुविशुद्ध हैं ।।
सद्ज्ञान की दे शुभ्र ज्योति
"अमर" जिन का नाम हैं।
ऐसे श्री श्रद्धेय कवीन्द्र मुनि को,
नित कोटि-कोटि प्रणाम है ।।
पारावार प्रबल भव रन में,
उपदेश ही तुम्हारा स्यन्दन है।
अतएव वस्तुतः उवज्झाय अमर का,
प्रेम भरा अभिनन्दन है ।।

●

बधाइयां और बधाइयां

—कविरत्न श्री चन्दन मुनि (पंजाबी)

क्या बताएं आप अद्भुत, ज्ञान के भण्डार हो
अय उपाध्याय कवि वर ! संघ के शृंगार हो।

है अहिंसा, सत्य का झण्डा भुलाया आप ने
भावना है आपकी बस, सत्य का प्रचार हो।

लिख दिए हैं ग्रन्थ कितने, और लिखते जा रहे
कहना चाहिए सरस्वती के, आप तो अवतार हो।

पूज्य 'पृथ्वीचन्द्र' ने, चन्द्र बनाया आप को
ज्ञान—किरणों का चहुं दिश, अहर्निश प्रसार हो।

धीरता-गम्भीरता जो आप में, कहां और में
क्यों न फिर संसार सारा चरण पर वलिहार हो।

शान्ती के मेघ उमड़ें, आप के उपदेश से
राग जो अद्भुत निराला, आप वह मल्हार हो।

नाम से भी हो 'अमर' तो काम से भी हो 'अमर'
जो अमरता दे सभी को, वह सुधा की धार हो।

भिन्नता बाहर व भीतर में, नहीं है आपके
सत्यता की, सरलता की मूर्ति साकार हो।

और भी चमके सितारा; आप का संसार में
आप से संसार का उद्धार हो—उपकार हो।

हो सहस्र वर्ष आयु आपकी और भी
हर वर्ष की दिवस संख्या, भी पचास हजार हो।

आज 'दीक्षा-स्वर्ण-जयंती' के समय पर आप को
दे रहा 'चन्दन' वधाई, स-स्नेह स्वीकार हो।

●●

जिसने सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश को
सारे जैन समाज में बिखरा दिया !

ऐसे महा मनीषी, श्रद्धा योग्य,

उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

अवसर पर हम शत-शत अभिनन्दन करते हैं।

Phone 355221

श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन श्रावक संघ

170, कांदावाड़ी, बम्बई

अध्यक्ष—गिरधरलाल दामोदर दफ्तरी

मानद मंत्री—
[illegible]चन्द सुखलाल शाह
[illegible]लाल कस्तूरचन्द कोठारी

सहमंत्री—
छोटालाल पोपटभाई कामदार

विमल तुम्हारी जीवन दृष्टि,
विमलाचार विचार ।

जन-जीवन को विमल विशदतम,
देते नव संस्कार ।।

कवि श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती अवसर पर

हार्दिक अभिनन्दन

☎ 55-1260

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ
घाटकोपर, वम्बई

卐 श्री अमरमुनिजी दीक्षा स्वर्ण जयंती

श्री अमरमुनिजी दीक्षा स्वर्ण जयंती

मानवीय चेतना के प्रबुद्ध गायक,

समाज, धर्म, एवं राष्ट्र के ज्योतिष्मान नक्षत्र।

उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती — प्रसंग पर

शत-शत अभिनन्दन
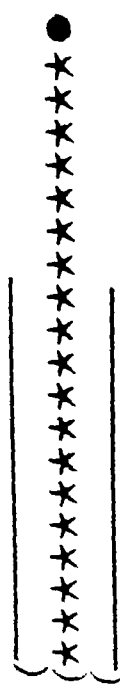
शादीलाल जैन

श्री अमरमुनिजी दीक्षा स्वर्ण जयंती

श्री अमरमुनिजी दीक्षा स्वर्ण जयंती 卐

Upadhyay Kavi

Sri Amar Chandji Maharaj

Diksha Swarna Jayanti

Ke

AWASHAR PAR

Sat Sat Abhinandan

Oswal **SPINNING & WEAVING MILLS Ltd.**

Manufacturers & Exporters—

- WOOLEN BLANKET
- WOOLEN LOI
- KNITTING WOOL
- MUFFLER
- LADIES COTTING
- SUITING

Regd. H. O.
Oswal Road, Industrial Area A.
LUDHIANA-3 (India.)

Telegram : Superyarn (M)
Telephone : 4120 (P B X)
4136, 4137
4819

Branch Office :-
597, Gali Bazazan, Sadar Bazar,
D E L H I-6

जिनके हृदय में जगत के प्रति असीम करुणा छलछला रही है

उन

उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती प्रसंग

पर
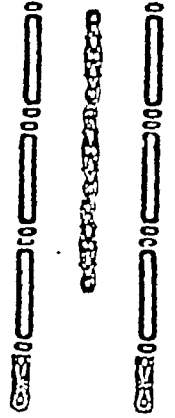
हार्दिक अभिनन्दन

कस्तूरीलाल जैन

सुरेन्द्रकुमार, कृष्णकुमार, नरेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार जैन

एवं

समस्त परिवार
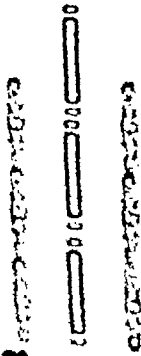
पोपुलर इलैक्ट्रिक वर्क्स

[illegible]

[illegible] ई. लैम्प, [illegible] वायर, उषा फैन

[illegible]

तार : इस्पात　　　　　　　　　　　　　　　　　　फोन : 72734

मै० नन्नेबाबू ओमप्रकाश जैन

लोहामण्डी, आगरा

भारत स्टील कार्पोरेशन
लोहामण्डी, आगरा

मुन्नालाल हजारीलाल जैन
लोहामण्डी, आगरा
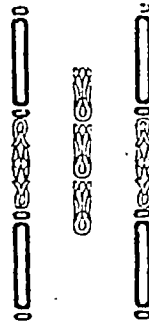
कमल ट्रेडिंग कार्पोरेशन
14/2, ओल्ड चायना बाजार स्ट्रीट
कलकत्ता-१

तार : नव स्पात　　　　　　　　　　　　　　　　　　फोन : 55-8023 ✲ 22-5929

जैन जगत के ज्योतिर्धर संत

उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती प्रसंग

पर

हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं
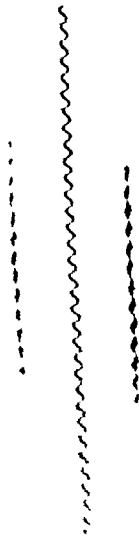
वर्द्धीशाह एण्ड सन्स

प्रज्ञा, प्रतिभा एवं पुरुषार्थ के मूर्तिमंत

उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती पर शत शत अभिनन्दन

हजारीलाल श्यामलाल जैन

लोहेवाले

	आगरा	कानपुर	नई दिल्ली	बम्बई	धनबाद
	लोहामण्डी	कुलीवाजार	मोतियाखान	44, लतीफ हाउस करनाक वन्दर	अम्बिका चेम्बर कतरास रोड
फोन :	74801 76730	67047 8155	262592	32-5203 53-6607	3645

तत्वद्रष्टा उपाध्याय कविरत्न

श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती प्रसंग पर

हार्दिक अभिनन्दन

सुराना परिवार

[illegible]

तत्त्वज्ञ मनीषी उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती प्रसंग पर

हार्दिक शुभ कामनाओं

के साथ
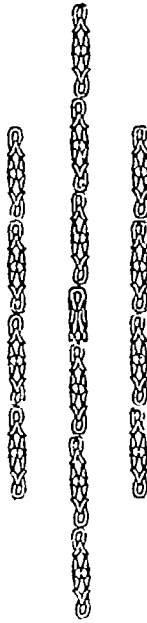
सरदारमल चोपड़ा एवं समस्त परिवार

बारह गणगौर का रास्ता

जौहरी बाजार

जयपुर

तपोधन श्री अमरचन्द जी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती प्रसंग पर

कोटि कोटि अभिनन्दन
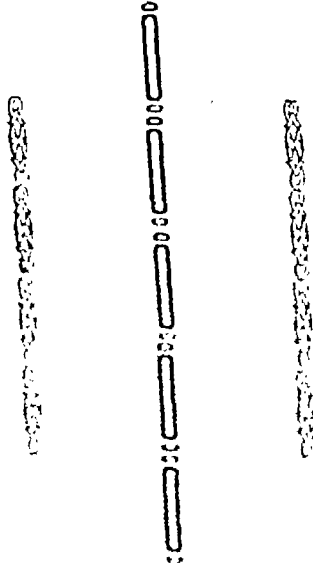
Ramsaran Das Prabhudayal Jain

शुभ कामनाएं
सज्जन तो होते हैं चन्दन
महक न निज कम करते हैं।
अंक-विदारक खर कुठार का,
मुख सुगंध से भरते हैं।
श्रद्धास्पद गुरुवर्य श्री अमरचन्द जी महाराज
के
दीक्षा स्वर्ण जयन्ती प्रसंग पर
शत शत अभिनन्दन
तार : BLEUDIMOND
फोन : घर 72469
आफिस 64698
धर्मचन्द पारसचन्द एण्ड कम्पनी
डाइमण्ड मर्चेन्ट
परतानियों का रास्ता, जौहरी वाजार
जयपुर
शाखाएं
फोन 679
डाइमंड मेन्युफेक्चरिंग आफिस
दुधिया तालाव रोड,
नवसारी, गुजरात
डाइमन्ड मर्चेण्ट
श्रीपाल नगर
९ वां माला, ८ वां ब्लाक
हार्कनसरोड, वम्बई-७
शुभ कामनाएं

जैन तत्व विद्या के प्रखर प्रवक्ता

उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्दजी महाराज

के

हाथरस नगर पदार्पण के अवसर पर

सेठ अचलसिंह जी एम० पी०

के कर कमलों द्वारा

श्री महावीर जैन पुस्तकालय की स्थापना

(स्थापना २२ जनवरी १९७०)

श्रद्धेय कविश्री जी की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के पावन प्रसंग पर

हमारी हार्दिक मंगल कामना

卐

श्री महावीर जैन पुस्तकालय

नूतन सत्संग भवन (बस स्टैण्ड)

हाथरस

श्री महावीर जैन पुस्तकालय

की

[illegible]

[illegible]

[illegible]

शुभ कामनायें

युग-युग जीओ क्रान्त मनीषी,
भरो तमस् में नव आलोक।
दीक्षा दिवस तुम्हारा पावन,
अभिनन्दन करते सब लोक।

घीसीलाल हिरावत एवं समस्त परिवार
परतानियों का रास्ता
जौहरी बाजार
जयपुर

सत्य एवं समन्वय के सूत्रधार

कवि श्री अमरचन्द्रजी महाराज

के

भागवती दीक्षा के गौरव पूर्ण पचास वर्ष की संपन्नता

एवं

एकावन वें वर्ष के मंगल प्रवेश अवसर पर

कोटि कोटि शुभ कामनाएं

नेम कुमार जैन

दौलतराम मक्खनलाल जैन

लोहामंडी, आगरा-२

जैन जगत के महान मनीषी, संत प्रवर

कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

के

हाथरस नगर में पदार्पण के अवसर पर

सत्संग एवं जन सेवा के लिए

श्री सुन्दर सत्संग भवन, हाथरस

का

उद्घाटन सम्पन्न हुआ

सुन्दर सत्संग भवन

श्री महेन्द्र कुमार शकुन्तला देवी जैन द्वारा
जन सेवा के लिए निर्मित इस सत्संग भवन में
एक विशाल प्रार्थना हाल एवं १८ आवास कक्ष
सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से युक्त है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

महेन्द्र कुमार शकुन्तला देवी जैन

सुन्दर सत्संग भवन [illegible]

हाथरस

शुभ कामनाएं शुभ कामनाएं

जैन जगत के क्रांतद्रष्टा मनीषी

धर्म एवं संस्कृति के संस्कर्ता

उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

के

मंगलमय दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

पावन प्रसंग पर हम

हार्दिक अभिनन्दन करते हैं

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ट्रस्ट

मानपाड़ा, आगरा

मंत्री—छोटेलाल जैन	सेठ अचलसिंह एम० पी०	श्रीचन्द सोनी
सहमंत्री—वीरेन्द्रसिंह सकलेचा	(अध्यक्ष)	(कोषाध्यक्ष)
सेठ दलपतसिंह बोहरा	धनपतिसिंह सकलेचा	कस्तूरीलाल जैन
पदम चन्द जैन	मदनसिंह नाहर	फकीर चन्द जैन

शुभ कामनाएं शुभ कामनाएं

मानवता के त्राण ! तुम्हारा ,
धन्य धरा पर जीवन !
दीक्षा-स्वर्ण-जयंती पर हम ,
करते हैं अभिनन्दन !
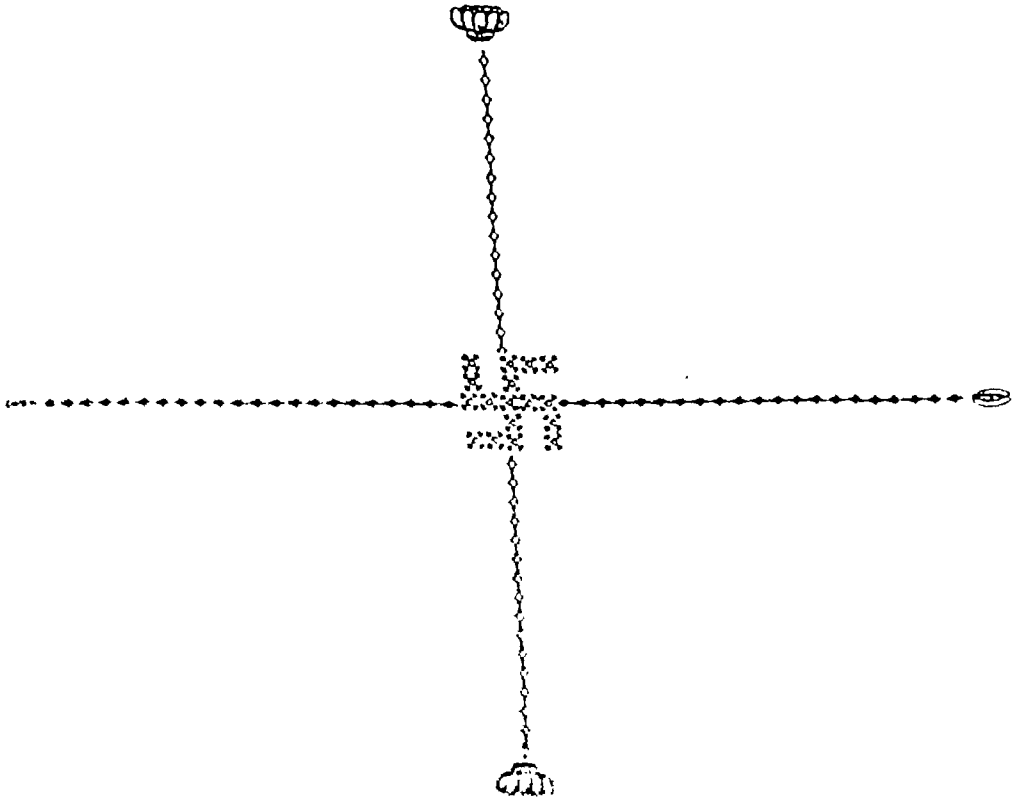
Phone : 228194

PARJAN BROTHERS

Specialists in BUTTONS AND TAILORING GOODS

[illegible] Sadar Bazar DELHI-[illegible]

चिरयुग करते रहो धरा पर,
जिन - वाणी का विमलोद्योत।
और बहादो इस धरती पर,
आध्यात्मिकता का नव स्रोत!

कविश्री जी
की
दीक्षा स्वर्ण जयंती
पर
हार्दिक अभिनन्दन

सरूपचन्दजी चोरड़िया परिवार

सोंथलीवालों का रास्ता
चौड़ा रास्ता
जयपुर

With Most Respect Regards

to

A True Devotee, A Deep Thinker

Kaviratna Upadhyaya

Shri Amarchandji Maharaja

On the Eve of

His 50th Consecration Celebration

Sha Agurchand Manmull

Prop. MOHAN MULL CHORDIA

103, Mint Street, MADRAS-1

प्रखर तत्व चिन्तक, विशद विचारक

श्रद्धेय कवि

श्री अमरचन्दजी महाराज

के

पावन दीक्षा दिवस पर

हार्दिक अभिनन्दन

PHONE : 73768, 75173

BANKER : STATE BANK OF BIKANER & JAIPUR
S. M. S HIGHWAY
BANK OF BARODA JAIPUR

Sardarmal Umraomal Dhadda

MANUFACTURING

Jewellers and Precious Stone Dealers

Sonthaliwal-Ki-Gali, Chaura Rasta,

JAIPUR CITY.

विश्वास
विश्वास जीवन की सबसे बड़ी संपत्ति है। विश्वास का बल ही मनुष्य को संकटों से पार पहुँचाता है। जिसका विश्वास अमर है, वह कभी हारता नहीं।....
—अमर डायरी
उपाध्याय
श्री
अमरचन्दजी
महाराज
की
दीक्षा स्वर्ण जयंती
के
अवसर पर
हार्दिक अभिनन्दन
Gems Trading Corporation
Telephone : 74028
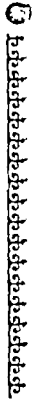
With Deep Devotion
&
Sincere Love
to
Reverd Kaviratna Upadhyay

Shri Amarchandji Maharaja

A Great Religious Philosopher
On the Sacred Occasion
of
His 50th Initiation Celebration

Exclusive

MEN'S WEAR STORE

Bachoomal Rajendrasingh

H. O. : KINARI BAZAR ◎ Branch : SADAR BAZAR

AGRA

RESI. 76256 ☎ 73509 OFFICE.
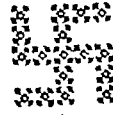
With Most Respectful Regards

to

A True Devotee, A Deep Thinker

&

A Sincere Social Guide

Kaviratna Upadhyaya Shri Amarchandji Maharaja

On the Eve of

His 50th Consecration Celebration

[illegible]

Echjay Industries Pvt. Ltd.

Kanjur Village Road, Bhandup,

BOMBAY-78 NB.

प्रज्ञा-श्रुत-सेवा की मूर्ति
कविवर ! तुम को वन्दन है !
मंगल स्वर्ण जयंती अवसर
हम सब का अभिनन्दन है !

नेमीचन्द बैद एवं समस्त परिवार

पीतलियों का चौक
जौहरी बाजार, जयपुर
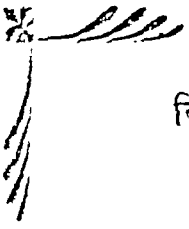
विमल तुम्हारी जीवन दृष्टि
विमलाचार विचार !
जन जीवन को विमल विशद तम
देते नव संस्कार !

कविश्री जी के चरणों में

हार्दिक शुभ कामनाएं
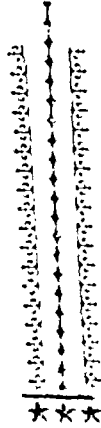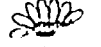
टेलीफोन { ऑफिस–72963
घर–61897

सोलामल जालमसिंह जैन

(स्टेनलेस स्टील व तांबा पीतल के हर प्रकार के बर्तनों के विक्रेता)

कसेरट बाजार, आगरा

शुभ कामनाएं

संत मनीषी, प्राज्ञ पुरुष हे!
लो हार्दिक अभिनन्दन!
युग-युग ज्योतित करो धरा को
चरणों में शत शत वन्दन!

फोन : 75348

फूलचन्द भागचन्द लोढा

ज्वैलर्स

जौहरी बाजार, जयपुर

लक्ष्मी उसी के पास आती है, जो निष्ठा
पूर्वक श्रम एवं उद्योग करता है।

—अमर डायरी

शुभ

नव संस्कृति के स्वर गायक ! तुम,
किया क्रान्ति का नव उद्घोष !
पुलक उठी अलसी धार्मिकता,
मिला मनुज को बौद्धिक तोष !

श्रद्धेय कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

हम सब के लिए
नई प्रेरणा
नया चिन्तन
एवं
नई दिशा
देने वाली हो

Cable : DIAMOND

Phone { Office : 73396
Resi : 6[illegible]431

ROOPCHAND LODHA

शुभ कामनाएं

संत मनीषी, प्राज्ञ पुरुष हे!
लो हार्दिक अभिनन्दन!
युग-युग ज्योतित करो धरा को
चरणों में शत शत वन्दन!

फोन : 75348

फूलचन्द भागचन्द लोढा

ज्वैलर्स

जौहरी बाजार, जयपुर

लक्ष्मी उसी के पास आती है, जो निष्ठा पूर्वक श्रम एवं उद्योग करता है।

—अमर डायरी

शुभ कामनाएं

नव संस्कृति के स्वर गायक ! तुम,
किया क्रान्ति का नव उद्घोष !
पुलक उठी अलसी धार्मिकता,
मिला मनुज को बौद्धिक तोष !

श्रद्धेय कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

हम सब के लिए
नई प्रेरणा
नया चिन्तन
एवं
नई दिशा
देने वाली हो

Phone { Office : 73396
Resi : 61431

ROOPCHAND LODHA

समय समय का सदुपयोग हो,
क्षण-क्षण सफल बनाएं।
समय अमोलक धन है ऐसा,
कवि श्री जी फरमाएं।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

समय की बचत कैसे हो ?
सवाल का उत्तर...

अनिल फोन

आपकी समस्या का एकमात्र हल है।

(२ लाइन से ४८ लाइन तक उपलब्ध)
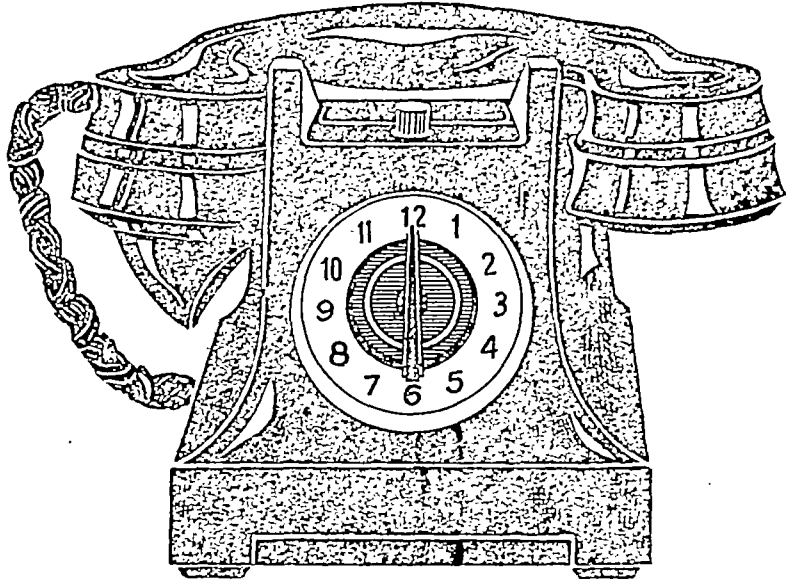
अनिल **'इन्टरकम्यूनिकेशन-टेलीफून'** समस्त भारत में अपनी सर्वोत्तम कारीगरी तथा उपयोगिता के लिए प्रसिद्ध है !

विशेषज्ञ—**प्राईवेट-टेलीफोन, अन्य टेलीफोन, स्टैण्ड, डायल-लोक, फोनो-रेस्ट, तथा टेलीफोन पार्ट्स—इत्यादि !**

हैड आफिस—**अनिल-इन्डस्ट्रीज**, कसेरट-बाजार आगरा-३ (फोन ७४८७९)

ब्रांच आफिस—**अनिल-इन्डस्ट्रीज**, बम्बई-२६ (फोन ३५२३२९)

वितरक—मैसर्स—
१. **बरडिया एण्ड कम्पनी**, अहमदाबाद (फोन २००६८)
२. **कोठारी-इन्जीनियरिंग कम्पनी**, राजकोट (फोन २४७८५)
३. **श्री नरसिंह इलैक्ट्रीकल्स**, जयपुर (फोन ७२६८५)
४. **ऐलाइड-बिजनिस सिस्टम्स**, कानपुर (फोन ६८८७०)
५. **अरिहन्त कामर्सियल कारपोरेशन**, पटना-८
६. **क्वीक-फ्रिजर सर्विसेस**, मारगाओ (गोआ)
७. **ऐसको इन्डिया रजि०**, श्रीनगर (कश्मीर) (फोन ५०२४)

With best compliments
on the auspicious occassion of the
"Diksha Swarna Jayanti"
of
UPADHAYA KAVI SHREE AMAR MUNIJI
a Great Sant
of the
Twenthinth Century

POPULAR Jewellers
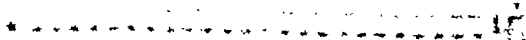
श्रद्धास्पद उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के प्रसंग पर

हार्दिक अभिनन्दन

BANKERS : THE BANK OF INDIA LTD.   PHONE : 62840

Hemchand Padamchand

PRECIOUS STONE DEALERS

Bardia House, Johari Bazar,

JAIPUR-3

धर्म की प्रक्रिया निर्माण मूलक है। व्यक्ति-व्यक्ति के श्रेष्ठ आचरण से, धर्म पालन से समाज की श्रेष्ठता का निर्माण होता है।

—अमर डायरी

With

best

complements
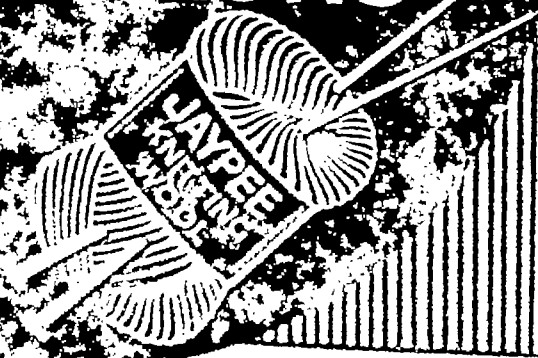
उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जंयती

पर

मंगल कामनाएं

धर्म हमारे जीवन का मधुर संगीत है, समता, सरलता एवं सेवानिष्ठा उसकी मधुर स्वर-व्यंजना है।
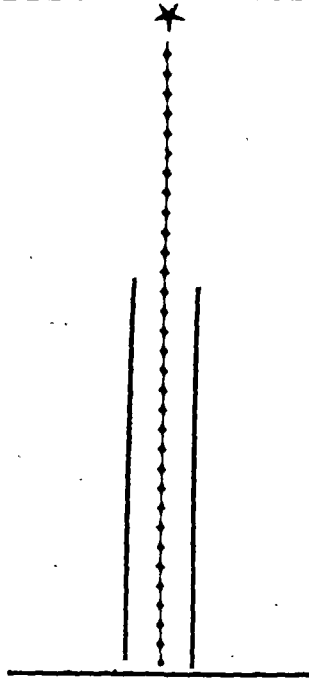
श्री विलेपारले
वर्धमान स्थानक वासी
जैन श्रावक संघ

श्रीमती कवड़ीबाई
शामजी वेलजी वीराणी
जैन धर्म स्थानक

४२, वल्लभभाई रोड, विलेपारले
मुम्बई-५६ (A. S.)

जिनके पावन जीवन में सत्य की अटल निष्ठा है,

मानवता के त्राण की अद्वितीय करुणा है

जीवन एवं जगत के प्रति अनन्त प्रेम है

उन

विचार क्रान्ति के अग्रणी

श्रद्धास्पद कविवर

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

प्रसंग पर

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

कोटि कोटि अभिनन्दन

उदयचन्द सुराना

सुभाषचन्द सुरेशचन्द [illegible] सुराना

सुराना ब्रदर्स गुलाबचन्द धन्नालाल आर. एस. सेक्रीन

जैन जगत के ज्योतिर्धर हे !
राष्ट्र-धर्म के हे नव प्राण !
तुमने ऊँचा किया निरन्तर
भारत - भूमि का अभिमान !

—चन्दन मुनि, बरनाला

हार्दिक शुभ क[illegible] के [illegible]
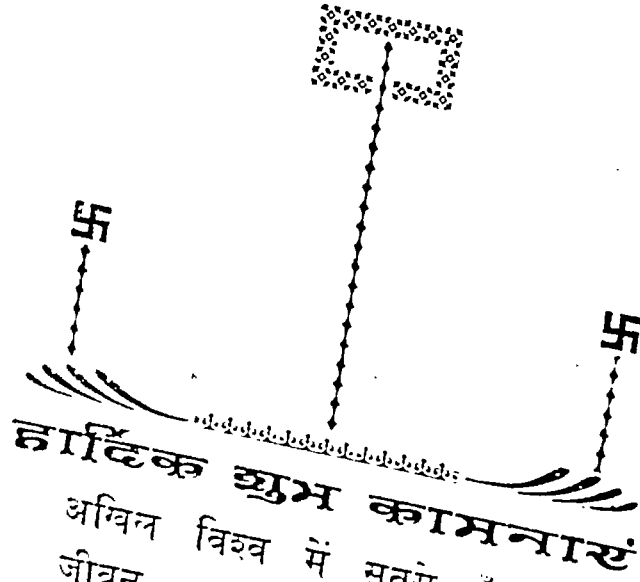
卐

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

प्रसंग पर

शत शत वन्दन

जीवनसिंहजी बोथरा परिवार

सौंथलीवालों का रास्ता

चौड़ा रास्ता

जयपुर

卐

Greetings

&

Best Wishes

From

BAPALAL & CO.,

Diamond Merchants & Manufacturing

JEWELLERS,

GOLDSHITHS & SILVERSMITHS

Rattan Bazar, MADRAS.

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती
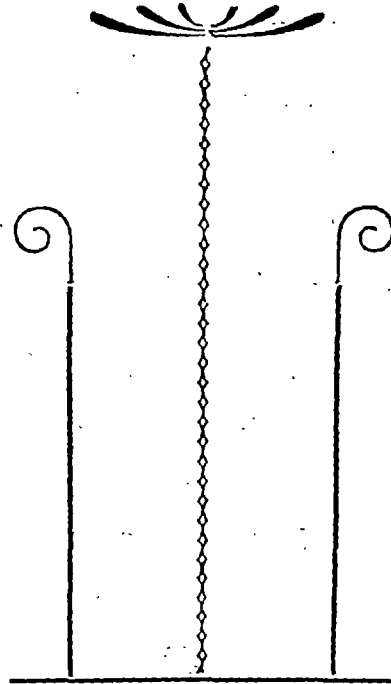
प्रसंग पर

शत शत वन्दन

जीवनसिंहजी बोथरा परिवार

सौंथलीवालों का रास्ता

चौड़ा रास्ता

जयपुर

Greetings

&

Best Wishes

From

BAPALAL & CO.,

Diamond Merchants & Manufacturing

JEWELLERS,

GOLDSMITHS & SILVERSMITHS

Rattan Bazar, MADRAS-3

जागरूक

साधक
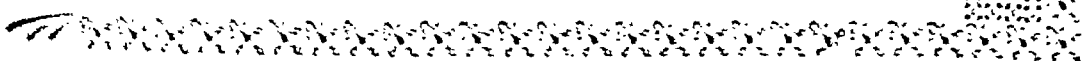
श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

के

अवसर पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

मोहनलाल जैन एण्ड सन्स

आयरन मर्चेन्ट

कुली बाजार, कानपुर

सौम्यता एवं दृढ़ता की प्रतिमूर्ति

कवि श्री अमर मुनि जी

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

पुनीत अवसर पर हम उनके

स्वास्थ्य लाभ एवं दीर्घ जीवन

की

मंगल कामना करते हैं

★

दुलेहचन्द जैन तुर्रेवाला

कपड़ा बाजार

जोधपुर

श्रद्धेय गुरुदेव
के
चरणों में
हार्दिक अभिनन्दन

भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बा० १०८, कचौड़ी गली
वाराणसी-१
(भारत)

अनेक मौलिक ग्रंथों के बाद प्रस्तुत करते हैं कुछ नये प्रकाशन और आशा करते हैं कि विद्वद्जन इन पुस्तकों को पढ़कर इसका पूरा लाभ उठायेंगे।

१. साहित्य और संस्कृति—पं० देवेन्द्र मुनि शास्त्री मूल्य : सजिल्द ८.००
अजिल्द ६.००
२. Saul Theory of the Buddhist —Th. Stcher batsky 10.00
३. Conception of Buddhist Nirvana —Th. Stcher batsky 30.00
४. Introduction to Madhyamaka Phieosophy—Jaideva Singh 3.00
५. Rudolf otto & Hinduism—S. P. Dubey 15.00
६. Advait vedant (Action and Contemplation) D. Prithipal 15·00

अमर पब्लिकेशन्स

सी० के० १३/२३, सत्ती चौतरा
वाराणसी-१
(भारत)

१. प्राकृत-चन्द्रिका (स्वोपज्ञ वृत्ति सहिता)—श्री प्रभाकर झा 12.00
२. अपभ्रंश व्याकरण—प्रो० शालिग्राम उपाध्याय 5.50
३. प्राकृत प्रवेशिका—कोमलचन्द्र जैन 4.00
४ Introduction to Prakrit—A. C. Woolner 15.00
५. An Introduction to pali Grammar—A. Barua 5.00

देश की बागडोर ईमानदार
एवं
कर्तव्यनिष्ठ हाथों में रहे
इसी शुभ कामना के साथ

आर० जी० पेपर एण्ड स्ट्राबोर्ड
रानी मिल, हाथरस

मतत साधना मय जीवन है
निर्मल हृदय, मधुर वाणी !
कविवर अमर मुनि की पावन
वाणी है, जन - कल्याणी

शुभ कामनाओं के साथ

CHENMAL MANGILAL SURANA
56, Elephant Gate Street.
Sowcarpet: MADRAS-1

अन्धकार में भटक रहे जन
तुम प्रकाश बन जाओ।
ठोकर खाते पथ-भ्रष्टों को,
सत्य मार्ग दिखलाओ॥

श्रद्धास्पद उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज
दीक्षा स्वर्ण जयंती के ऐतिहासिक प्रसंग पर
हार्दिक शुभ कामनाएं
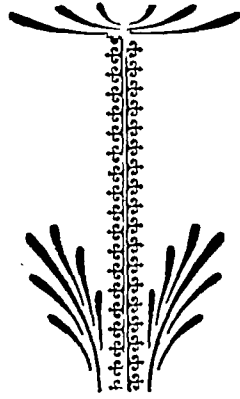
Sha Jabarchand Gelada
9, Periya Naicken Street,
SOWCARPET, MADRAS-1
Phone No. : 36416

भारतीय धर्म दर्शन एवं संस्कृति के

मूर्धन्य विद्वान मनीषी

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी

के प्रेरणाप्रद साहित्य से आप बौद्धिक समाधान एवं सही जीवन दृष्टि प्राप्त कर सकेंगे

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-2.

उपाध्याय पूज्य कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

शुभ अवसर पर

हम उनके दीर्घ जीवन की ईश्वर से मंगल कामना करते हैं और हमारी भावना है कि वे अपने धर्म-प्रवचनों एवं साहित्य द्वारा समस्त मानव जाति के जीवन-कल्याण करने में सहयोग दें ।

रतन प्रकाशन मन्दिर

(स्थापित १९४८)

प्रमुख पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

प्रधान कार्यालय—अस्पताल मार्ग,

आगरा-३

Tel. Office { 75686, 61713
Resi. 74894
Press 74322

Grams: **ARPYMANDIR**

शाखाएं

दिल्ली, गोरखपुर, इन्दौर, जयपुर, कानपुर, मेरठ, लखनऊ

सहयोगी संस्थाएं :

रतन बुक डिपो—पुस्तक विक्रेता, लाभचन्द मार्केट, आगरा-२

प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस— १/११ गान्धी मार्ग, आगरा-२

ओसवाल बुक सेन्टर—आयातक, थोक पुस्तक विक्रेता एवं लाइब्रेरी सप्लायर्स, अस्पताल मार्ग, आगरा-३

एन० एम० टाइप फाउण्ड्री—१/११ गांधी मार्ग, आगरा-२

जीवन श्रेष्ठ, वही जीवन है,
जिसकी परिणति निज-पर-हित में।
केवल निज अथवा केवल पर,
ग्राह्य नही है जीवन-पथ में॥

महान् साधक तपोधन

कवि श्री जी

के

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

पर

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

Grams : JAIJINENDER Phone : 35886

S. Ratanchand Chordia

FINANCIER

(RATAN BUILDING)

5. RAMANUJA IYER STREET, SOWCARPET,

MADRAS-1

गंगा की निर्मल धारा सम
जिनका पावन जीवन है।
महावीर के सच्चे सेवक
कविवर ! शत शत वन्दन है !

कोटि कोटि शुभ कामनाएं

Phone : 32123

BHAWARIMAL CHORDIA

FINANCIER

31-A, Veerappan Street, Sowcarpet

MADARS-1

जैन जगत के वहुश्रुत मनीषी

उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

के

५० वर्ष की संयम साधना

के

अवसर पर

सविनय वंदन पूर्वक अभिनन्दन !

मगनलाल हंसराज दोशी

रमणीकलाल मगनलाल दोशी

PRABHAT AGENCIES

MANUFACTURERS REPRESENTATIVES

B-109, Bagree Market 71, B.R.B.B. Road,

CALCUTTA-1

Phone : 34-7549 Gram : FARGOOD

BEST WISHES FROM—

AMARNATH PREMNATH

Rawatpara, AGRA-3.

Phones { Office : 72793
Resi : 62408

Naya Bazar, LASHKAR (Gwalior)
Phone : 1578

Distributors :

★ Ballarpur Paper & Strawboard Mills Ltd.
★ Hooghly Ink Company Limited

Dealers & Specialists In
Box Board, Newsprint, Printing Paper, Mill Board, Poster, Tissue Etc.

Our Associated Concerns :
VAISH MEDICAL HALL, Fountain, AGRA — Phone : 72793
GOPINATH SONS, 3/43, Kacharighat, AGRA — Phone : 62408

With best compliment

THE

Ahmedabad Laxmi Cotton Mills Co. Ltd.

Outside Raipur Gate,
AHMEDABAD-22

Telegram : "SAGARLAXMI" — Telephone No. 51125

OUR SPECIALITIES

1. Dyed and/or Printed Poplins, Bushshirt Cloth, Gadlapat, Coating, Tapestry, Bedsheets and Pillow Covers.
2. Shirtings, Pattas, Pyjama Cloth, Bedsheets and Pillow Covers.

With best complements

• DIAMOND SETS • NECKLACES • BRACLETS
• BANGLES • EARINGS • RINGS • CUFLINKS
• BROACHES (ALL SET WITH PRECIOUS STONES)
• PURSES & • SAREES.

जिनके जीवन में सत्य एवं समता साकार हुई हैं,
जिनकी वाणी में प्रेम एवं करुणा छलक रही है,

उन

श्रद्धेय उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

मंगल प्रसंग पर

हार्दिक अभिनन्दन
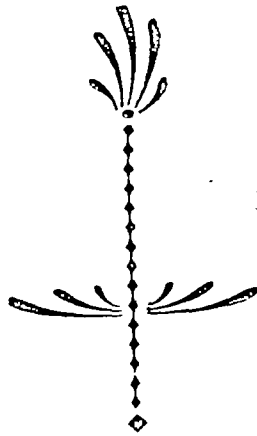
केसरीचन्दजी कोठारी परिवार

प्रेमप्रकाश भवन

जौहरी बाजार, जयपुर

सरल स्वभावी

शान्तमूर्ति

क्रान्त द्रष्टा

महान विचारक

पूज्य गुरुदेव कवि श्री जी

के

एकावनवें दीक्षा दिवस पर

हार्दिक वन्दन : अभिनन्दन

फोन { घर—38487
आफिस—36978

किसनलाल पवनकुमार जैन

मैन्यु फैक्चरर्स, आर्डर सप्लायर्स, डीलर्स

आयरन एण्ड स्टील

46/78, [illegible]

कानपुर

[illegible]

कोटि-कोटि जनता के श्रद्धास्पद

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती प्रसंग पर

अभिनन्दन के साथ शुभकामनाएं

फोन : 78 तार : सच्चाई

निहाल चन्द लीलम चन्द

जनरल मर्चेन्ट एण्ड कमीशन एजेन्ट

गाँधी चौक, हाथरस

सम्बन्धित फर्म :

फोन : 5811 तार : सच्चा हीरा

प्रताप दाल मिल

उच्चकोटि के दालों के निर्माता

एवं कमीशन एजेन्ट

२०, नवलखा मेन रोड, इन्दौर

फोन : 78 तार : अपना देश

प्रभात दाल मिल

उच्चकोटि के दालों के निर्माता

मुरसान गेट

हाथरस

उपाध्याय श्री अमर मुनि

दीक्षा स्वर्ण जंयती

के

पावन प्रसंग पर शुभ कामनाएं

मै० हरीकिशनदास फूलचन्द

क्लोथ मर्चेन्ट एण्ड कमीशन एजेन्ट

५५/११२ जनरल गंज, कानपुर

मै० शैलेषकुमार एण्ड क०

कानपुर

मै० वायल्स सेन्टर

कानपुर

युग-युग जीओ, हे युगाधार !
धर्म-संस्कृति के नव व्याख्याकार !
आलोक दिया तुमने नूतन,
करते हम कोटि-कोटि वन्दन !

गणपत लाल कोठारी

हल्दियों का रास्ता
जौहरी बाजार
जयपुर-३

२७३ बी, मुम्बादेवी रोड,
१, ला मुम्बादेवी मंदिर के सामने
बम्बई-२

धर्म-मनुष्य की मूल पवित्रता में विश्वास करता है।
धर्म-हमारे मनोबल एवं चरित्र बल को ऊँचा उठाता है।
—अमर डायरी

हार्दिक शुभ कामनायें
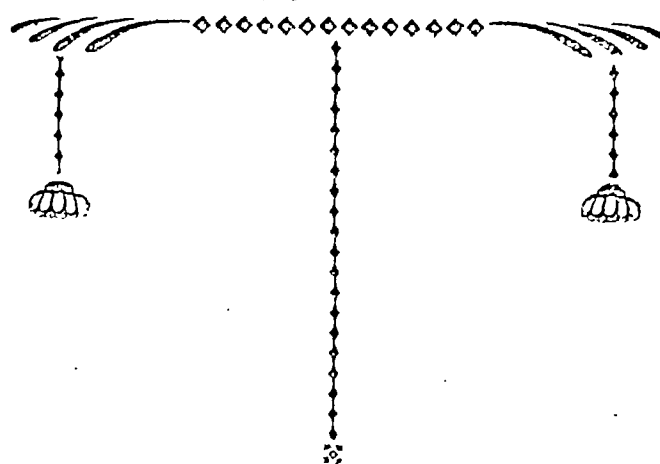
धर्म वही, जिससे जीवन में,
समता, शुचिता हो साकार।
हृदय शुद्धि के बिना समूचा,
क्रिया कर्म है केवल भार।

वी० एच० ज्वैलर्स

कालों का मोहल्ला
पो० बा० २६
जयपुर-३
दूरभाष : 4211

उभयमुखी जीवन साधना के प्रतीक

उभयमुखी दीपक की लौ है,
निज पर को प्रद्योतित करती।
ज्योतिर्मय जीवन की लौ भी,
निज-पर का हित साधन करती ॥

कवि श्री जी का हार्दिक अभिनन्दन

Phone 76325

C. L. LALWANI, B. COM.

ALL INDIA PRIZE WINNER & GOLD MEDALIST
WHOLE TIME LEADING AGENT
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

Residence
Kundigaron Ke Bhairon Ka Rasta
3RD. SQUARE, JAIPUR-3

संयोजक :
अ० भा० जैन सामयिक संघ, जयपुर

कविश्री जी दीर्घजीवी हो। ज्ञान तथा तपोबल की ज्योति जगमगाती रहे। मानवता उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करे। जिस समय विश्व में अस्त्र-शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा चल रही है, अणु तथा उदजन बम्ब बन रहे हैं, कविश्री जी की अमर वाणी शान्ति एवं परस्पर मित्रता का सन्देश प्रदान करें।

Grams : "MARYADA" Phone : 4614

K. G. KOTHARI & CO.,

MATHURA — Manufacturers of AIR MAIL BRAND — DIAMONDS

रंगूनी हीरे व रत्नों के व्यापारी

98, Mint Street Sowcarpet, MADRAS-1

पार्टनर्स—

भंवरलाल गोठी

छगनलाल गोठी

लाभचन्द कोठारी

प्रज्ञा एवं पुरुषार्थ की मूर्ति
उपाध्याय श्री अमर मुनि जी
को
दीक्षा स्वर्ण जयंती
जन जीवन में नई धार्मिक चेतना
का
संचार करे !
शतशः शुभ कामनाएं

जौहरीलाल संचैती

कपड़ा बाजार
जोधपुर

महान विचारक एवं विद्वान्
मुनि उपाध्याय श्रीअमरचन्दजी
महाराज की भागवती दीक्षा
के पचास वर्ष की सम्पन्नता
एवं एकावनवें मंगलमय वर्ष
में प्रवेश के पुनीत पर्व पर
हमारा हार्दिक अभिनन्दन

खींवराज संचैती
माणकचन्द संचैती B. COM.. LL. B A. C. A.
[illegible] मार्केट
जोधपुर

उपाध्याय कवि श्री अमर मुनि जी महाराज

के

चरणों में सविनय वन्दना के साथ

उनके

शतायु होने की हार्दिक मंगल कामना

प्रेमचन्द साकलचन्द

बनारसी साड़ी विक्रेता

चौक [illegible]

वाराणसी

[illegible] अहमदाबाद

कवि श्री अमर मुनि जी

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

Cable : JAIJUGCO Phones : 33-6663, 55-9010

JAICHANDRA JUGRAJ

25A, CROSS STREET, CALCUTTA-7

Bombay Office : 50/52, SHAMSETH STREET, BOMBAY-2 Phones : 320717, 537638

Delhi Office : 501, KATRA NEAL CHANDNI CHOWK, DELHI-6

सिल्क वाणिज्य :
जयचन्द्र जुगराज
कलकत्ता-दिल्ली-बम्बई

सिल्क उत्पादन :
उमेश सिल्क मिल्स
बम्बई

कविश्री जी के अत्यन्त श्रद्धालु धर्म प्रेमी

स्व: ला० सम्पतराम जी जैन 'वैरागी' परिवार

की ओर से

कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

अवसर पर

हार्दिक अभिनन्दन

फोन : 62765

फर्म : कन्हैयालाल सम्पतराम जैन

आयरन मर्चेन्ट

रजिस्टर्ड स्टोक होल्डर एप्रूव्ड फेवरीकेटर्स

लोहामण्डी आगरा-२ (उ० प्र०)

शाखा : ७६/५ कुली बाजार, कानपुर

ज्ञान-प्रदीप जलाकर तुमने,
हरा जगत का मिथ्या तम !
अमर मुनि के दीक्षा दिन पर
अभिनन्दन करते हैं हम !

ज्ञानचन्द जैन एण्ड ब्रादर्स

1623, दरीबाँकला

दिल्ली-6

With Best Complements

For All Your Requirements

Indian & Foreign Make

Machines for

- Printing.
- Paper Converting
- Paper Bags Making.
- Paper Cups Making.
- Box Making.
- Book Binding
- Waxing.
- Varnishing

and

Allied Materials

Please Contact—

Phone : 264307 Grams : INDOEUROPA

INDO EUROPA TRADING CO. P. LTD.

1390, Chandni Chowk,

DELHI-6.

Regd. Office—

4, Ganesh Chandra Ave.	9, Dalal Street,	21, Sunkurama Caetty St.
CALCUTTA-13	Fort, BOMBA-1.	MADRA-1.
Phone : 23-8467	Phone : 25-2124	Phone : 24467

जिनके जीवन में सत्य एवं समता साकार हुए हैं,
जिनकी वाणी में प्रेम एवं करुणा छलक रही है।

उन

श्रद्धास्पद कवि श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

मंगल प्रसंग पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

नन्हूमल-चन्द्रकला जैन

फर्म—नन्हूमल जैन एण्ड सन्स

ज्वैलर्स

दरीबांकलां, देहली

जैन जगत के उज्ज्वल नक्षत्र ज्योतिर्धर संत

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जंयती

प्रसंग पर

कोटि कोटि अभिनन्दन

अतरचन्द-सूरजकला जैन

ग्रीन वेज

20 E, कनाट प्लेस,

नई देहली

卐

जल की तरह सहज निर्मल एवं सतत गतिशील

जीवन-कला के

सच्चे कलाकार

उपाध्याय श्री अमर मुनि

का

हार्दिक अभिनन्दन !

मैसर्स हिन्दुस्तान वाटर मीटर इन्डस्ट्रीज

'जलकल' वाटर मीटर के निर्माता

रामपुरा बाजार

कोटा (राजस्थान)

सोने की परीक्षा अग्नि में होती है
किन्तु संत की परीक्षा निन्दा-प्रशंसा
के क्षणों में होती है।
श्री अमर मुनि जी ने निन्दा एवं प्रशंसा
का समान भाव से स्वागत कर
सहस्र-सहस्र जनों की
श्रद्धा प्राप्त की है।
परम संत को हार्दिक वन्दन !

सोहनलाल हेमचन्द नाहर

नोघरा, किनारी बाजार
देहली-६

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

की

पावन दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक अभिनन्दन

लाला रतनलालजी पारख परिवार

१०२०, मालीवाड़ा
चाँदनी चौक, देहली-६

उपाध्याय श्री अमर मुनि के एक-एक वचन
आकार में छोटे होते हुए भी अर्थ की
असीम गंभीरता लिए होते हैं—जैसे कि बहुमूल्य हीरा !
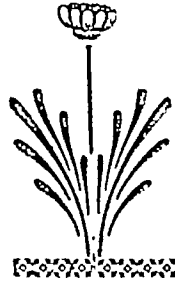
हजारीलाल वंशीलाल वैद जौहरी

१८८५, नौघरा, किनारी बाजार

देहली-६

कवि श्री अमरचन्दजी महाराज
का
जीवन सचमुच बहुमूल्य रत्न
के समान है, जिनकी निर्मल
आभा से संपूर्ण मावन जानि
गौरवान्वित है।

शतीशचन्द सिंगवी

ज्वैलर्स

५८०३, गली जोगीवाड़ा, नई सड़क

देहली-६

भगवान महावीर की वाणी के अनुसार

जिनका जीवन

अक्कोहणे—क्षमाशील

एवं

सच्चरए—सत्यनिष्ठ

तथा

पोम जलेजायं—जल में कमल की भाँति

आदर्श है

उन

श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

प्रसंग पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

पन्नालाल हजलाणी

मै० माणकचन्द पन्नालाल

979, भोजपुरा, मालीवाड़ा

देहली-6
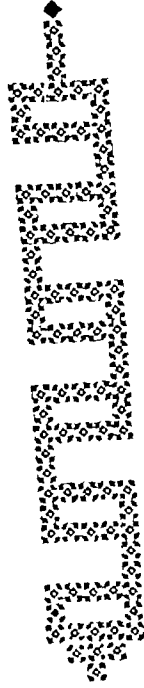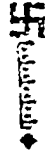
अनेक शुभ कामनाओं के साथ

Phone : 73102

JAIN TRADING CO.

ALL KINDS OF ACIDS & CHEMICAL SUPPLIERS

जैन ट्रेडिंग कम्पनी

Raja Mandi K. P. Bridgs
AGRA-2
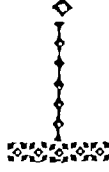
भारत के हे संत तुम्हारा
जीवन है जग में आदर्श !
पापी, पावन हुए तुम्हारे
चरण-मणि का पाकर स्पर्श !
कपूरचन्द बोथरा एण्ड सन्स
४१४४, नई सड़क,
देहली-६
ज्ञान एवं चरित्र के सघन समन्वय
कवि श्री अमर मुनि
को
श्रद्धायुत वन्दन !
शुभ कामनाओं के साथ
मैसर्स —
उत्तमचन्द ज्ञानचन्द चौरड़िया

भारत के हे संत तुम्हारा
जीवन है जग में आदर्श !
पापी, पावन हुए तुम्हारे
चरण-मणि का पाकर स्पर्श !

कपूरचन्द बोथरा एण्ड सन्स

४१४४, नई सड़क,

देहली-६

卐

ज्ञान एवं चरित्र के सबल समन्वय

कवि श्री अमर मुनि

को

श्रद्धायुत वन्दन !

शुभ कामनाओं के साथ

मैसर्स —

उत्तमचन्द ज्ञानचन्द चौरड़िया

६४४, मालीवाड़ा

चाँदनी चौक, देहली-६

जिनके जीवन संगीत में—

रघुकुल रीति सदा चलि आई,
प्राण जाय पर प्रण नहीं जाई।
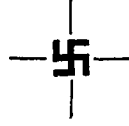
प्रति क्षण यह ध्वनि मुखरित हो रही है

उन

निर्भीक साधक, दृढ़ निश्चयी, तपस्वी

श्री अमर मुनि जी

को

कोटि कोटि वन्दन !

रघुवीरसिंह लोढा जैन

1007, गली लड़ेवाली, मालीवाड़ा

देहली-6

जैन जगत् के महामनीषी क्रांतिकारी युग-द्रष्टा कविवर्य

उपाध्याय श्री अमरमुनिजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती शुभावसर पर

कृतज्ञता पूर्ण हार्दिक अभिनन्दन

हरकचन्द, जालमसिंह, पदमसिंह, फतेहसिंह,
पारसमल, डा० सुरेश, रिखवचन्द, रमेशचन्द,
निर्मल, नरेन्द्र, राजेन्द्र तथा बवलू मेड़तवाल

केकड़ी तथा ब्यावर (राज०)

फोन : ८६६

बहुश्रुत मनीषी

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

का

हार्दिक अभिनन्दन !

फोन : P.P 262601

गंगाराम गूगनमल

कपड़े के व्यापारी

कटरा धूलिया, चाँदनी चौक

देहली-6

BEST WISHES FROM :

MUNSHIRAM MANOHARLAL

ORIENTAL AND FOREIGN BOOKSELLERS AND PUBLISHERS

Post Box 1165, 54, Rani Jhansi Road, New DELHI-55

Sales Counter : 4416 Nai Sarak, Delhi-6

Tabakat-I-Nasiri. A general Histroy of the Muhammadan Dynastics of Asia including Hindustan by Maulana Minhaj-ud-Din, translated from Persian into English by *Major H. G. Raverty*, Demy 8vo, pp lxiv+1296+ii+274, in 2 volumes, rep., bound, 1970 Rs. 150.00†

History of Bihar. 1740-1772 by *Dr. Shree Govind Mishra*, Demy 8vo, pp. xvi+192, bound, 1970. Rs 22.00

Twilight of the Moghuls by *T G. Percival Spear*, Demy 8vo. pp. x+270, with one map, rep., bound, 1970 Rs. 26.00†

Press and Politics in India 1885-1905 by *Dr. Prem Narain*, Demy 8vo, pp. xii+321, bound, 1970. Rs. 35.00

The Philosophy of Sentence and its Parts by *Dr. Veluri Subba Rao*, Demy 8vo, pp. xx+270, bound, 1970. Rs. 30 00

The Republican Trends in Ancient India by *Dr. Shobha Mukerji*, Demy 8vo, pp. xvi+220, bound, 1969. Rs. 26.00

Sociology of Non-Violence and Peace. Some Behavioural and Attiutdinal Dimensions by *T. K. Unnithan* and *Yogendra Singh*, Royal 8vo, pp. x+188+xviii, bound, 1969. Rs 25.00†

Buddhist Records of the Western World (si-yu-ki), by *Samucl Beal*, translated from the Chinese of Hiuen Tsiang (AD 629), Demy 8vo, pp. cviii+242+v+1370, bound, 1969. Rs. 50.00°†

Introduction to Indian art by *Dr. Ananda K Coomara-swamy*, revised edition, Royal 8vo, pp. xii+104, with 44 halftone illustrations bound, 1969. Rs. 40.00

The Cave Temples of India by *James Burgess* and *James Fergusson*, 8vo, pp xx+536, with 98 line and halftone drawings, rep., bound. 1969. Rs. 125.00†

Bengal under Akbar and Jahangir. An Introductory Study in Social history by *Dr. Tapan Ray Chauphuri*, Demy 8vo, pp. x×368, bound, 1969. Rs. 32.00

India's National Writing by *Saraswati Saran*, Demy 8vo, pp. xx+160 bound, 1969. Rs. 21.00

Classical Indian Dance in Literature and the Arts by *Dr. Kapila Vatsyayan* with 155 half-tone illustrations, Crown 4to pp. xviv +431, 1969. Rs. 60.00†

Indian Folk Musical Instruments, by *K S. Kothari*, with 59 half-tone illustrations, Crown 4to, pp. 99, bound, 1969. Rs. 20.00†

The Civilisation of India by *Rene Grousset*, Royal 8vo, pp. x+404, with 249 half-tone illustrations. bound, 1969- Rs. 40.00

The Study of The Self Concept of Sankhya Yoga Philosophy by *Dr. Francis V. Catalina*, Demy 8vo, pp. xvi+163, bound, 1968. Rs. 15.00

The Popular Religion and Folklore of Northern India by *William Croke*, new edition, revsied and illustrated with 24 half-tone. photographs, Demy 8vo, pp. viii+294 and viii+359, in 2 volumes, bound, 1968. Rs. 50.00

Indian Theism, from the Vedic to the Muhammadan period by *Nicol Macnicol*, Demy 8vo, pp. xvi+292, bound, 1968. Rs. 20.00

Hobson Jobson. A Glossary of Colloquial Anglo Indian Words and Phrases, and of Kindred Terms, Etymological, Historical, Geographical and Discursive, by *Col. Henry Yule* and *A. C. Burnell*, new edition by *William Crooke*, Demy 8vo, pp. xlviii +1021, bound, 1968 Rs. 75 00

The Katha Sarit Sagara or Ocean of The Streams of Story, translated from Sanskrit by *C. H. Tawney*, Demy 8vo, pp xx+578 and xx+681, in 2 volumes bound, 1968. Rs. 75 00

Origin and Development of Vaisnavism by *Dr. Suvira Jaiswal*, Demy 8vo, pp. xv+276, one map, bounp, 1967. Rs. 25.00

American Missionaries and Hinduism. A study of the contacts from 1813 to 1910 by *Dr. Sushil Madhav Pathak*, Demy 8vo, pp. xv +285, bound, 1967. Rs 25 00

Modern Religious Movements in India by *J. N. Farquhar* with 24 illustrations, Demy 8vo, pp xvi—+471, bound, 1967. Rs. 35.00*

The Philosophy of Vallabhacharya, by *Dr. Mradula I. Marfatia*, Demy 8vo, pp. xvii-343, bound, 1967. Rs. 25.00

A Record of the Buddhist Religion as Practised in India and the Malay Archipelago AD 671-695 by *I-Tsing*. translated by *J. Takakusu*. with a map, Demy 8vo, pp lxiv+240, bound, 1966. Rs. 25.00*

The Concept of Dharma in Valmiki Ramayana by *Dr. Benjamin Khan*. Demy 8vo, pp. xvi+373, bound, 1965. Rs. 20.00

Contemporary Indian Philosophy by *Rama Shanker Srivastava*. Demy 8vo, pp. xvi+398, bound, 1955. Rs 20.00

On YuanChwang's Travels in India A D. 629 645 by *Thomas Watters*, edited after his death by T. W. Rhys Davids and S. W. Bushell with 2 maps and an itinerary by Vincent A. Smith, Demy 8vo, pp. x+461+357, bound, 1961. Rs [illegible]

History of Indian Epistemology by *Dr. [illegible]*, Demy [illegible]

[illegible]

With Most Respectfull Regards
to
A True Devotee, A Deep Thinker
Kaviratna Upadhyaya
SHRI AMARCHANDJI MAHARAJA
on the Eve of
His 50th Consecration Celebration

Phone {Office 148 / Resi 588} Telegram : STAR

M/s RAMLAL LUNIA

Sole Distributers of :
Shree Vallabh Glass Works Ltd., ANAND (Gujrat)
NAYA BAZAR
AJMER

Phone (Office 265852, 261896 (Resi 223196 Telegram : LUNIA

M/s RAMLAL LUNIA

1397, Chandni Chowk,
DELHI-6

LUNIA ENGINEERING CO.

Escort Tractor & Rajdoot Motor Cycle or Agricultural Imp.
Prithviraj Marg,
AJMER

मानवता के त्राण तुम्हारा
धन्य धरा पर जीवन !
दीक्षा स्वर्ण जयंती पर हम
करते हैं अभिनन्दन !

फोन : [illegible]

सितारा देवी जैन

१६५३, कटरा खुशहालराय, चाँदनी चौक,
देहली-६

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

सज्जन कुमार जैन

टेलीग्राम : जैन मोटर्स　　　　　　　　　　फोन : 27

मै० जैन मोटर्स

राबर्ट्स गंज, जि० मिर्जापुर (यू० पी०)

——**—**—**—**—**—**—**—**—**—**—**—**

With best compliments

We Manufacturers :—

Water Carrier Bottles, Polythene Contianers, Polythen Baby Feeders (Deluxe-Kohinoor, Basant) Metalyed Plastic Jewellery (Hair clip, Bali, Tops, Pandent etc.) Name Plates, Letters & its meterial, Scientific Goods, Polythene Pachkari Rakhi (Raksha Bandhan) Goods. Metalyed Statue & Election Symbol Badges—(all-parties)

Visit or Ring :—

Office :—　　　　　　　　　　Phone : 566643

Basant Plastic Works (Regd)

5438, Basti Harphool Singh, Sadar Thana Road
DELHI-6

Factory :—
C-167, Mayapuri Industaril area, **New DELHI-18**

With Deep Devotion

&

Sincere Lave

to

Reverd Kaviratna Upadhyaya

SHRI AMAR CHANDRAJI MAHARAJA

A Great Religious Philosopher

On the Secred occasion

of

HIS 50th INITIATION CELEBRATION
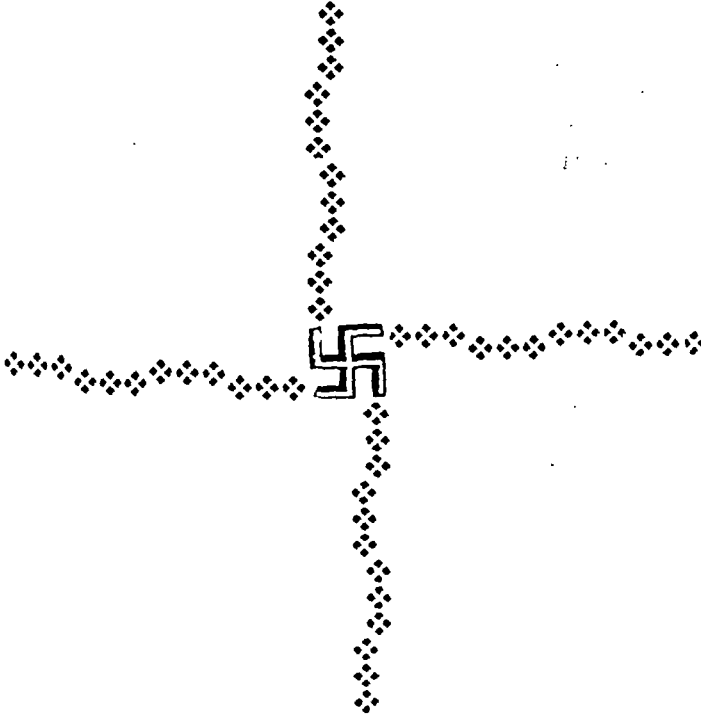
Jain Synthetics Agencies

3808, PAHARI DHIRAZ

DELHi-6

सच्ची साधना में वह
चमत्कार है, जिसके सम्मुख
बड़े-बड़े सम्राट भी सिर
झुकाते हैं।

सच्चे-साधक

श्री अमर मुनि जी

का

हार्दिक वन्दन

के साथ

अभिनन्दन !

BY APPONITMENT TO

DR. S. RADHAKRISHNAN, EX-PRESIDENT OF INDIA.

PHONE : SIMLA : 2312, 2212 & 2512
NEW DELHI : 47951 & 48979
CHANDIGARH : 198 & 298

D. L. 16 (58) / 20 & 16 (58) / 21
DATED 1-7-62

GAINDA MULL HEM RAJ

Sector 17 E
CHANDIGARH, (C)

67/68, The Mall
SIMLA

11, Regal Buildings
NEW DELHI-6

Dispensing Chemists, Purveyors, Wine & General Merchants

11, Regal Building Parliament Street, NEW DELHI-1

कष्ट उठा, जग का हित करते,
संत, सुजन, सरिता औ चन्दन!
जग उपकारी, अमर संत के,
चरणों में श्रद्धायुत वन्दन!

चन्दनमल चंपालाल लूणिया

धर्म एवं संस्कृति के नव व्याख्याकार

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

अवसर पर

हम उनकी गौरवमय हीरक जयंती

मनाने की मंगल कामना

के साथ

हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

शादीलाल कुन्दनलाल पारख

८४४, मालीवाड़ा, देहली-६

गंगा की निर्मल धारा सम
जिनका पावन जीवन है।
महावीर के सच्चे सेवक
कविवर ! शत शत वन्दन है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

Phone No. 264627 Grams : CHAWALWAEA

Sanehi Ram Ram Narain

RICE & FOOD GRAIN DEALERS

Naya Bazar, DELHI-6

Concerns :

Sanehi Ram Ratan Lal Jain
Julana Mandi (Haryana)
Phone : 26

Shri Mahabir Trading Corporation
Park Road, Gorakh Pur
Phone : 526

Haryana Construction Company
2734, Naya Bazar, DELHI-6

छतरी जिस प्रकार धूप एवं वर्षा से बचाती है,
उसी प्रकार सद्विचार एवं सद्विवेक की
छतरी विकार एवं दुर्भावनाओं की धूप तथा वर्षा
से हमारी रक्षा करती है।

—अमर मुनि

उपाध्याय श्री अमर मुनि

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक शुभ कामनायें

★

Phones { Office : 223116
Resi : 220190

Grams : ADREENAWOL

A. D. RAJ KUMAR & CO.

IMPORTERS & EXPORTERS

MANUFACTURERS OF KNITTING WOOLS & UMBRELLAS.

4988 89, Rui Mandi, Sadar Bazar.

DELHI-6

Branch Office :
[illegible]chand Jaswantmal Jaini,
[illegible] Darbar, AMRITSAR.

Factory :
Adreena Industries
FARIDABAD

कवि श्री अमर मुनि को शत शत वन्दन

के० डी० रामलाल एण्ड कं०

सदर बाजार, देहली

युग-युग जीओ, हे युगावतार !

हे युगाधार !

तुमको पाकर मानवता का

खिल उठा शृंगार !

उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

की

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

सबके लिए मंगलमय हो !

Telegram : 'ONETWONINE'

Telephone : 22-8940
Residence : 22-2067

K. C. Madan Lal & Co.

Importers, Toilet & General Merchants

129, Sadar Baxar, DELHI-6.

Agent & Distributors for :

Akirdandan Chemical Works Private Ltd. Allahabad

Ayurved Sevashram Private Ltd., Udaipur.

Sarin Chemical Laboratory., Agra.

युग-युग जीओ, हे युगावतार !
हे युगाधार !
तुमको पाकर मानवता का
खिल उठा शृंगार !

उपाध्याय श्री अमर मुनि जी
की
दीक्षा स्वर्ण जयन्ती
सबके लिए मंगलमय हो !

Telegram : 'ONETWONINE'

Telephone : 22-8940
Residence : 22-2067

K. C. Madan Lal & Co.

Importers, Toilet & General Merchants

129, Sadar Baxar, DELHI-6.

Agent & Distributors for :

Akirdandan Chemical Works Private Ltd. Allahabad
Ayurved Sevashram Private Ltd., Udaipur.
Sarin Chemical Laboratory., Agra.

सर्दी से बचने के लिए कंबल है, किन्तु उसका उपयोग करने पर ही वह सर्दी से बचायेगा। धर्म मनुष्य को बुराइयों से बचाता है, पर कब? जब धर्म का आचरण किया जाये। पुस्तक में रखा धर्म और घर में रखा कंबल एक समान है!

—अमर डायरी

कवि श्री अमर मुनि को शत शत वन्दन

के० डी० रामलाल एण्ड कं०

सदर बाजार, देहली

भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के उद्भट विद्वान

श्रद्धास्पद श्री अमर मुनि जी

के

दीक्षा के पचास वर्ष की संपूर्ति

के

अवसर पर

हार्दिक अभिनन्दन !

Phone : 46184

GAINDA MULL WALYTI RAM

CHEMIST, PROVISION & GENERAL MERCHANTS

51-G, Connaught Circus,

NEW DELHI-1

महान तत्त्वचिन्तक

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

KOTA AGGROW SALES & SERVICE

Dealers in Tractors & Agriculturel implements.

NAYAPURA KOTA (Rajasthan)

卐

With

the

best

Compliments

of

Phone No. 35031

M/s.

CHORDIA
FANCY
STORES,

No. 60,
Elephant Gate Street,
Sowcarpet,
MADRAS-1

नव संस्कृति के स्वर गायक तुम
किया क्रांति का नव उद्घोष !
पुलक उठी अलसी धार्मिकता
मिला मनुज को बौद्धिक तोष !

शुभ कामनाओं के साथ

बृजलाल जैन एण्ड सन्स
बर्मा शेल डीलर्स
रोशनआरा रोड,
दिल्ली

नेमचन्द ताराचन्द जैन
बर्मा शेल डीलर्स
जी० टी० [illegible]
दिल्ली

फूल-सा कोमल हृदय,
वज्र-सा अडिग संकल्प
उपाध्याय श्री अमर मुनि जी
के जीवन का
सच्चा परिचय है !
हार्दिक शुभ कामनाएं

नगीनचन्द एन० विस्लौरिया

कटरा नगीनचन्द
चाँदनी चौक
देहली-6

With Best Complements

Please Visit For

- **Lunch & Dinner (Vegetarian)**
- **Cold & Hot Drinks**
- **Espresso Coffee**
- **Snacks**
- **Ice Cream**
- **Sweets**

Prepared with Pure Ghee

LIGHT MUSIC
&
LIGHT ELECTRIC

VEER RESTAURANT

49, Taj Road, AGRA CANTT.

FULLY AIR CONDITIONED
COMFORT & HOMELY

Phone : 75168

शुद्ध शाकाहारी भोजन स्वस्थ जीवन का मुख्य आधार है।

सत्य एवं समन्वय के सूत्रधार

कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

खूबचन्द जैन

एवं

समस्त तातेड़ परिवार

फोन : 263332

खूबचन्द जैन

(कम्बल विशेषज्ञ)

कटरा प्यारेलाल, चाँदनी चौक,

देहली-6

जैन जगत के महामनीषी विचारक कविवर्य

उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

का

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

के

शुभावसर पर

कांकरिया परिवार, ब्यावर

हार्दिक अभिनंदन

करता है

कांकरिया परिवार से सम्बन्धित व्यापार-संस्थान—

१—मैसर्स पन्नालाल कांकरिया एण्ड सन्स

ब्यावर, अहमदाबाद, इन्दौर

२— ,, प्रकाश फाईनेन्स कम्पनी

जयपुर, इन्दौर, ब्यावर

३— ,, सुरेन्द्र फार्म प्रोडक्ट्स कम्पनी

हैदराबाद (आं० प्र०)

With Compliments

From

Phone : 63964

Surana Trading Corporation

JEWELLERS

GHEE WALON KA RASTA

JAIPUR-3

जिन्दगी के हर क्षण को
जिन्होंने खेल की तरह खेला है,
सुख-दुःख में सदा मुस्कराते रहे उन

श्री अमर मुनि जी

की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर
हार्दिक शुभ कामनाएं

Phone : 77468 P.P.

Jaipur Gem House

JEWELLERS & ART DEALEAR

G-9 Hauz Khas, NEW DELHI-6 (India)

Dealers in :

Real Ivory.
Enamelled Brass
Sandal Wood
And Other Articles.

Gift Specialist in :

All Kinds of Beads Necklaces.
Enamelled Setting Ornaments.
Star Stones.
And Real Pearls.

आभार प्रकाशन :

श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

शुभ अवसर पर

श्री अमर भारती

के

विचार क्रांति विशेषांक

के

सम्पादन एवं प्रकाशन में जिन महानुभावों—लेखकों, शुभ कामना, अभिनन्दन एवं संदेशदाताओं तथा सम्पादकों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही जिन सज्जनों ने शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक सहयोग प्रदान कर इस महान् कार्य में हमारी सहायता की है, हम उन सबों के प्रति कृतज्ञ हैं।

विशेषांक लम्बी अवधि के परिश्रम के बाद अब प्रकाशित हो चुका है। इसे पृथक् डाक से आपकी सेवा में भेजा जा रहा है। प्राप्त होने पर आप अपनी सम्मति एवं समीचीन सुझाव देकर अनुगृहित करें।

हमें आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी आप श्रद्धालु जनों का हार्दिक सहयोग हमें प्राप्त होगा। धन्यवाद !

भवदीय :
मंत्री,
सन्मति ज्ञानपीठ,
लोहामण्डी, आगरा-२

सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा-२, की ओर से मंत्री सोनाराम जैन द्वारा प्रकाशित।

विद्या, विनय एवं विवेक की साकार प्रतिमा,
मानव चेतना के महान उद्घोषक

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक अभिनन्दन

प्रबंधक :
रतनलाल जैन

प्रधानाचार्या :
द्रोपदी शर्मा

कार्य कारिणी के सदस्य गण, अध्यापिका वर्ग एवं
समस्त विद्यालय परिवार

श्री रत्नमुनि जैन गर्ल्स इंटर कालेज

रत्नमुनि मार्ग, लोहामण्डी
आगरा-२

हार्दिक अभिनन्दन

सत्य

और

श्री के सबल प्रेरक

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी

के

प्रेरणाप्रद अमर साहित्य से

मानवमन आलोकित होता रहे

मां भारती से

यही मंगल-कामना है ।

गोवर्धन वर्मा

अजन्ता आर्ट्स

डिजाइनर एण्ड आर्टिस्ट

गणेश मार्केट, गुड़ की मण्डी

आगरा-२

दिव्य देह धर धर्म हुआ है
जैसे पृथ्वी पर साकार !
सत्य, स्नेह, समता शुचिता का
लहराता ज्यों पारावार !
फौलादी संकल्प तुम्हारे
फूलों-सा मन है सुकुमार !
अमर यशस्वी, अमर संत का
अभिनन्दन हो शत-शत वार !

लछमनदास पारसदास जैन
लोहामण्डी, आगरा-२
फोन 74861

सोनाराम जैन कम्पनी

लोहामण्डी	भूलीरोड	सोनापट्टी
आगरा-२	धनबाद	कलकत्ता-७
फोन 74861	3740	

जिज्ञासुओं से— **एक निवेदन** श्रद्धालुओं से—

सन्मति ज्ञानपीठ की सेवाओं से आप पूर्व-परिचित हैं। यह सन् १९४५ से भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हाथ बंटाकर भारतीय संस्कृति के उत्थान में अपना अमूल्य योगदान देती आ रही है। उदाहरण स्वरूप—

१. इसने **दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक** विभिन्न विषयों को विश्लेषित एवं विवेचित करने वाली **सवासौ से भी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित की हैं।**

२. इसके द्वारा **'श्री अमर भारती'** नामक एक मासिक पत्रिका का नियमित ढंग से प्रकाशन होता है, जो परम्परागत रूढ़ियों से ऊपर उठकर धर्मगत अथवा सम्प्रदायगत मतभेदों के समन्वयात्मक दृष्टिकोण तथा मानव जीवन के लिए धर्म एवं विज्ञान की समान अनिवार्यता के क्रान्तिकारी विचार का प्रतिपादन एवं प्रसार करती है।

३. इसके पास प्रायः दस हजार प्राचीन एवं नवीन पुस्तकों से सम्पन्न एक पुस्तकालय भी है, जिससे देश-विदेश के अनेक शोधकर्त्ता लाभान्वित होते आ रहे हैं।

अति प्रसन्नता की बात यह है कि **इसने अब औपचारिक ढंग से एक शोध संस्थान का रूप ले लिया है, जिसमें जैन विद्या संबंधी सभी क्षेत्रों में शोध कार्य सम्पन्न होंगे।** प्रामाणिकता के दृष्टिकोण से इसे मान्यता दिलाने के लिए इसके अधिकारीगण, प्रयत्नशील हैं और ऐसी आशा है कि बहुत ही जल्द किसी न किसी विश्वविद्यालय से इसे मान्यता प्राप्त हो जाएगी।

अतएव विद्यानुरागियों, ज्ञान-साधकों एवं जिज्ञासुओं से अनुरोध है कि इस विद्या मन्दिर की नई सुव्यवस्था से यथोचित लाभ उठाकर अपने ज्ञान भण्डार की वृद्धि तथा इसके संरक्षकों एवं सहयोगियों को उत्साहित करें।

साथ ही उन उदारमना, समाजसेवी तथा श्रद्धालु महानुभावों से भी प्रार्थना है, जो समाज के हित के लिए अपना तन, मन एवं धन न्योछावर करने को सर्वदा तत्पर रहते हैं, कि वे इसे आर्थिक बल प्रदान कर इसकी नींव को सुदृढ़ता और कंगूरे को समुचित ऊँचाई से सम्पन्न होने का हार्दिक वरदान दें।

विनीत—
डा. बशिष्ठ नारायण सिन्हा
निदेशक,
सन्मति ज्ञानपीठ,
(जैन विद्या का शोध संस्थान)
लोहामण्डी, आगरा-२

जिनके मंजुल सूक्त होते महिमा-गरिमा युक्त

उन

श्रद्धास्पद उपाध्याय श्री अमर मुनिजी

का

शत शत अभिनन्दन

Phone : 223289
Resi : 564587

Tele : LACEPATTI

K. Gian Chand Jain & Co.

MANUFACTURERS REPRESENTATIVES WHOLESALE DEALERS OF :

Laces, Ribbons, Embroidery Goods,

Saree Falls & Saree Borders.

231, Sadar Bazar.

DELHI-6

Selling Agent :

SOVRIN KNIT WORK

Hindustan Embroidery Mills (P) Ltd.

With
Compliments
From
कोटि-कोटि
शुभकामनाएं
Jagannath Hemchand
JEWELLERS
Head Office :
1421, Chandni Chowk
DELHI-6
Phone : 262972
Show Room :
Hotel Vikram
Lajpat Nagar
NEW DELHI
Phone : 625639/94

Amar Dyeing Works

Specialist in Nylon & Wool dyeing &

Bagh Shambu Dayal

NEW DELHI

With Most Respectfull Regards

to

A True Devotee, A Deep Thinker

Kaviratna Upadhyaya

SHRI AMARCHANDRAJI MAHARAJA

on the Eve of

His 50th Consecration Celebration

Gram : 'JINVARAM' Phone : 227184

Bombay Trading Co.

Importers, General Merchants & Commission Agents

Dealers in :

Buttons, Plastic & Fancy Novelties,

Zip Fastners Etc. Etc.

Gali Matke Wali, Sadar Bazar,

DELHI-6

श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर

हार्दिक अभिनन्दन

हार्दिक शुभचिन्तन

फोन : 268174

धर्मचन्द लधामल जैन

साबुन तेल मर्चेण्टस

खारी बावली

देहली-6

धर्म, दर्शन

एवं

संस्कृति के उद्भट विद्वान्

श्रद्धास्पद कवि

श्री अमरचन्दजी महाराज

का

हार्दिक अभिनंदन

पन्नालाल हरवंशलाल जैन

जैन नीटिंग वर्क्स

लुधियाना

उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द्रजी महाराज

के

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के अवसर पर

सादर-हार्दिक-वन्दन

गिल्लोदेवी—धर्मपत्नी स्व० श्री फूलचन्दजी लोढ़ा

गुलाबचन्द जैन (लोढ़ा) श्री कुमारी गुलाबचन्द जैन पदमचन्द जैन
अशोक जैन अरुण जैन ज्ञानेश्वरी जैन अजित जैन अतुल्य जैन

फूलचन्द गुलाबचन्द जैन (लोढ़ा)

१७४९/१७९८, कुन्दयान गली,

मालीवाड़ा, देहली-६

फोन नं० २६२५००

दीक्षा स्वर्ण जयंती

प्रसंग पर

श्रद्धेय गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनिजी

का

हार्दिक अभिनन्दन

शान्ति प्रसाद जैन ऋषभ कुमार जैन राकेश कुमार जैन
राजेन्द्र कुमार जैन रवीन्द्र कुमार जैन अनिल कुमार जैन
नवीन जैन प्रवीन जैन मनोज जैन

जैन आयरन ट्रेडिंग कं०

आयरन मर्चेण्ट

लोहामण्डी, आगरा-२

ऋषभ कुमार जैन

आयरन मर्चेण्ट एण्ड आर्डर सप्लायर्स

लोहामण्डी, आगरा-२
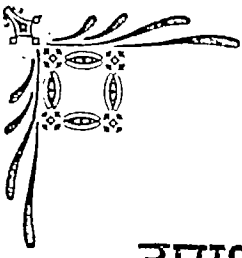
प्रखर तत्त्व चिन्तक

उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

का

हार्दिक अभिनन्दन !

एल० यु० नवलखा

भवानी पेठ,

पूना

उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

का

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

के
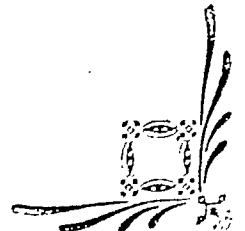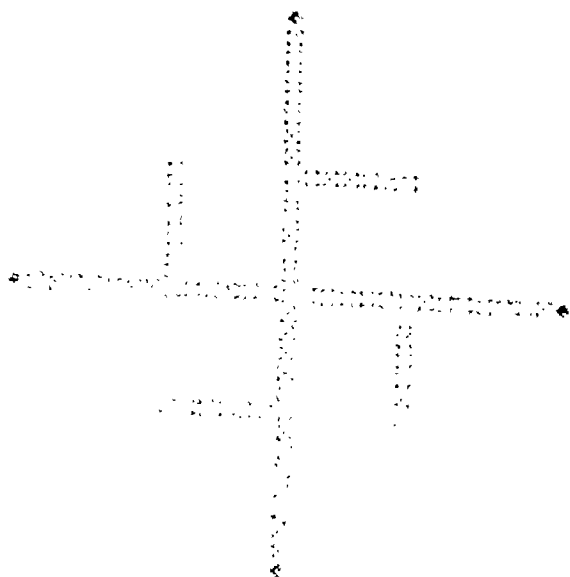
शुभावसर पर

With Deep Devotion
&
Sincere Love
to
Reverd Kaviratna Upadhyaya

SHRI AMAR CHANDRAJI MAHARAJA

A Great Religious Philosopher
On the Sacred occasion
of

HIS 50th INITIATION CELEBRATION

PHONE : 26-7100
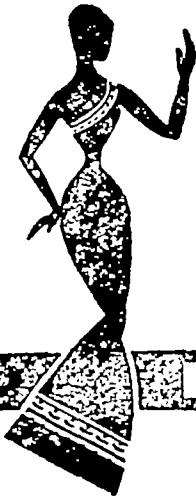
YORK'S

EMBROIDERS

862, First Flour, Nai Sarak
DELHI

अभिनन्दन

श्री शीतलदास एण्ड सन्स

ज्वैलर्स

are डीलर्स 6F कनाट प्लेस

नई दिल्ली-१

कविश्रीजी

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

महान् अवसर पर

सन्मति ज्ञानपीठ भेंट करता है

कविश्रीजी का नवीनतम अमोल ग्रन्थ

"चिन्तन की मनोभमि"

जैन जगत् के महान् तपस्वी विचारक मनीषी

उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

पर हमारा

हार्दिक अभिनन्दन

अनूपचन्द सिरैमल बम्ब
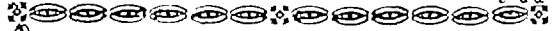
पीतलियों का चौक

जौहरी बाजार

जयपुर
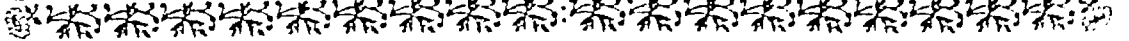
सत्य-समन्वय-समता जिनके

जीवन का है दर्शन !

[illegible] श्री अमर मुनि का

करते हम अभिनन्दन !

सिरीलाल हस्तीमल दगड़

आभार प्रकाशन :

श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

की

दीक्षा स्वर्ण जयंती

के

शुभ अवसर पर

श्री अमर भारती

के

विचार क्रांति विशेषांक

के

सम्पादन एवं प्रकाशन में जिन महानुभावों—लेखकों, शुभ कामना, अभिनन्दन एवं संदेशदाताओं तथा सम्पादकों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही जिन सज्जनों ने शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक सहयोग प्रदान कर इस महान् कार्य में हमारी सहायता की है, हम उन सबों के प्रति कृतज्ञ हैं।

विशेषांक लम्बी अवधि के परिश्रम के बाद अब प्रकाशित हो चुका है। इसे पृथक् डाक से आपकी सेवा में भेजा जा रहा है। प्राप्त होने पर आप अपनी सम्मति एवं समीचीन सुझाव देकर अनुगृहित करें।

हमें आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी आप श्रद्धालु जनों का हार्दिक सहयोग हमें प्राप्त होगा। धन्यवाद !

भवदीय :

मंत्री,

सन्मति ज्ञानपीठ,

लोहामण्डी, आगरा-२

सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा-२, की ओर से मंत्री सोनाराम जैन द्वारा प्रकाशित।

सत्य एवं समता के साधक

विचार क्रान्ति के सजग वाहक

भारतीय दर्शन शास्त्र के मर्मज्ञ

परम मनीषी

एवं

बहुश्रुत विद्वान्

कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज

के

भागवती दीक्षा के गौरव-मण्डित पचास वर्ष की सम्पूर्ति

के अवसर पर उनके

स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की मंगल कामनाएँ

अमर चन्द विलायती राम जैन